

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180432

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—901—26-3-70—5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. *7183/G 895* Accession No. *H-3161*

Author *शुक्ल प्रकाश*

Title *21155*

This book should be returned on or before the date last marked below.

अपने पाठकों के नाम

शोले

(उपन्यास)

भैरवप्रसाद गुप्त

साहित्य संगम बुधियाना

	म प्रकाशित... ..	४५,०००
१९५०—	„ „ पुस्तक रूप में प्रकाशित.... .	५,०००
१९५२—	द्वितीय संस्करण.....	३,०००
१९५६—	तृतीय „.....	१२५०

Checked 1965

प्रकाशक

साहित्य मगम, क्लाक टावर

लुधियाना

मुद्रक

लाहौर आर्ट प्रेस, कालेज रोड

लुधियाना

मूल्य ३)

कापीराइट लेखक के अधीन

‘आधुनिक शिक्षा’ पत्रिका (राजकमल प्रकाशन)
द्वारा संचालित मतदान के अनुसार प्रेमचन्द
के बाद १९५२ तक प्रकाशित हिन्दी के सभी
उपन्यासों में ‘शोले’ सर्वाधिक लोकप्रिय घोषित ।

आज से मान माल पहले 'शोले' लेकर मैंने उपन्यास-क्षेत्र में प्रवेश किया था। मुझे यह आशा न थी कि उपन्यास के पाठक इसे इतना प्यार देंगे। 'मनोहर कहानियाँ' में इसके पूरा प्रकाशित होते ही हर क्षेत्र, हर वर्ग के पाठको और पाठिकाओं के इतने प्रशंसापूर्ण चित्र मेरे पास आये कि मैं स्वयं दंग रह गया। मुझे उस समय तक यह ज्ञान न था कि 'शोले' इस तरह पाठको के दिल में अपनी जगह बना चुका है। 'शोले' की लोकप्रियता ने मुझे बल दिया, मेरे उपन्यासकार को एक मजबूत नींव पर खड़ा किया। मेरे जीवन में इस उपन्यास का सदा एक महत्वपूर्ण स्थान रहेगा।

भैरवप्रसाद गुप्तः जन्म, ७ जुलाई, १९१८, सीवान कलां, बलिया, उत्तर प्रदेश । अब तक १२७ कहानियाँ, २३ एकाकी, ५ उपन्यास, कितने ही अनुवाद । उपन्यास, शोले, मशाल, इन्सान, गंगा मैया और जजीरे और नया आदमी (दो भाग) । काली-नागः मजिल, बिगड़े हुए दिमाग, फरिश्ता, मुहब्बत की राहें, सितार के तार, लपटे और मुखड़ा क्या देखे दरपन में (यन्त्रस्थ) । एकाकी-संग्रह, कसौटी । अनुवाद हिजएक्सलेसी (दास्तवम्की) । भूतपूर्व सम्पादक, माया, मनोहर कहानियाँ तथा मनोरमा । अब सम्पादक, कहानी तथा उपन्यास ।

शोले

जिस तरह कादम्बरी के शात्मलि वृक्ष पर सन्ध्या होते ही भांति-भांति के पंखी दशों दिशाओं से जुड़ कर आकाश को अपनी तरह तरह की बोलियों से कोलाहलमय कर देते होंगे, उसी तरह बाबा बरनदास की बैठक में भी साफ होते ही चारों ओर से तरह-तरह के लोग आ जुड़ते, और कभी-कभी उनकी बात-चीत का शोर इतना उठ जाता, इतना तीखा हो जाता, मुहल्ले में इस तरह गूँज उठता, कि घरों के अन्दर रमोई-पानी में बभी वहुय भी द्वारों पर आ आँख फाड़-फाड़ कर झांकने लगती, और घरों के बाहर बैठी बूढ़ी स्त्रियाँ माथे पर हाथ मार मार उस मुँह बरनदास को श्राप देने लगती, जो इस तरह शहर के लखैरो को भगवान की बेला में इकट्ठा कर, आसमान को सिर पर उठा, उनके थके दिमाग की शान्ति हर लेता है ।

उस बैठकी में शामिल होने वालों में करीब-करीब हर तरह के लोग होते । दिन भर बैठे-बैठे मक्खी मारने वाले बेकार, दुर्बल बूढ़े, दफ़्तरो में आठ-आठ घण्टे चक्की पीसने वाले नीरस, बेआब बाबू लोग, तेली के बेल की तरह एक ही दायरे में रात-दिन चक्कर काटने वाले ऊबे, उदास मास्टर, चौबीसो घंटे किसी न किसी को बेवकूफ बनाने की धुन में रहने वाले चतुर, धूर्त वकील, डिप्रियाँ ले-ले काम की खोज में भटकने वाले पस्तहिम्मत, परेशान नौजवान, बेकार रहते-रहते आवारा बन जाने वाले बेशर्म, दार्शनिक लखैरे तथा और भी तरह-तरह के लोग वहाँ चन्द घंटे खुश-गप्पियों में बिताने की गरज से जमा हो जाते ।

बरन बाबू तीस-पैंतीस बरस की आयु में ही, पता नहीं क्यों, वीतराग हो, बरनदास बन गये हैं । ईश्वर की कृपा से उन्हें धन की कमी नहीं है । इसलिये पेट से निश्चिन्त हो आठों पहर भगवद्-भजन और

भगवान के बच्चों की सेवा की धुन में लगे रहते हैं। खाने वाला अपना कोई नहीं है, इसलिये दूसरों को ही खिला कर आत्म-सन्तोष प्राप्त कर लेते हैं। सन्ध्या की बैठक उनके यहां उसी तरह प्रतिदिन की बात हो गई है, जिस तरह उनकी ठाकुर की पूजा। हुक्का, पान, सिग्रेट, बीडी सब चीजों का प्रबन्ध उनकी तरफ से होता है। व्रत-व्याहार के दिन प्रसाद भी प्रचुर मात्रा में बंटता है। दिन भर अकेले रहते-रहते ऊब जाने पर सन्ध्या को जो यह तरह-तरह के लोगों की जमघट उनके यहां लग जाती है, तो जैसे उनका सूना, निर्जीव हृदय एक जीते-जागते कोलाहल से भर प्रसन्न हो उठता है। उस समय उनका मन कह उठता है, कि कितना अच्छा हो, अगर यह कोलाहल रात-दिन उनके घर में होता रहे, उनके प्राणों के तार-तार में सदा भंकारता रहे।

संसार में अकेले हो कर अब वह हर आदमी को अपनी ओर खींचने का प्रयास करते हैं। अपने घर में किसी भी आदमी की उपस्थिति, चाहे वह जो भी हो, जैसा भी हो, उनको बड़ी अच्छी लगती है। वह चाहते हैं, कि उनका घर कभी भी खाली न रहे, वह कभी भी अकेले न रहे। बरामदे की चौकी पर हाथ में माला लिये बैठे-बैठे वह सामने से गुजरने वाली सड़क की ओर ताका करते हैं, और उधर से जो भी गुजरता है, उसे प्रेम से बुला कर अपने पास बैठाने की चेष्टा करते हैं। कोई मुसाफिर, साधु-संत भटकता-फिरता किसी ठौर-ठिकाने की खोज में उनकी ओर आ बिकलता है, तो वह उसका वैसे ही स्वागत करते हैं, जैसे कोई अपने मेहमान का।

कुछ दिन पहले वह अकेली देह लेकर जब इस मुहल्ले में आ बसे, तो जो भी उनसे मिलता, उनके सामने प्रश्नों की झड़ी लगा देता, आप कौन हैं, क्या करते हैं, कहां के रहने वाले हैं, यहां कैसे आये, बाल-बच्चे कब आयेंगे, आदि-आदि। इन प्रश्नों का सीधा उत्तर न दे, बरनदास एक दार्शनिक की तरह उत्तर देते, 'बच्चा, भगवान के दास का क्या परिचय ? भगवद्-भजन के सिवा उसका कर्म ही क्या है ? उसके लिये तो

सारा संसार ही उसका घर है और संसार के सारे प्राणी ही उसके बन्धु-बान्धव हैं।' सांसारिक लोग यह उत्तर सुन उनका मुह ताकने लगते, पर उनके चेहरे पर निरीहता का भाव और आंखों में स्नेह की आद्रता देख, अपने मन में उठे विस्मय को मन में ही दबा, 'अच्छा-अच्छा' कह उनके पास से ऐसे खिसक जाते, जैसे उनके लिये वे एक निरर्थक, बेमतलब के जीव हो।

पर थोड़े दिनों में ही जब उनके घर में एक खासे मन्दिर का रूप धारण कर लिया, और बिना कष्ट उठाये ही जब घर-घर अच्छ-अच्छे और पर्याप्त मात्रा में प्रसाद पहुँचने लगे, तो लोगों को उनके विषय में अपनी राय बदलनी पड़ी कि नहीं, नहीं, वह वैसा निरर्थक, बेमतलब का जीव नहीं है !

धीरे-धीरे बच्चों से शुरू होकर बड़े लोगों की भी भीड़ ठाकुर के दर्शन के बहाने बढ़ने लगी। और जब उन लोगो ने देखा, कि वहाँ केवल प्रसाद ही नहीं, सिग्रेट-पान, बैठने-उठने के उचित स्थान, आदर-सत्कार का भी प्रबन्ध है, तब तो उन्हें मानना ही पड़ा, कि बरनदास मुहल्ले के ऐसे उपयोगी जीव हैं, जिनके प्रति सब को कृतज्ञ होना चाहिये।

धीरे-धीरे बड़े लोगो की यह भीड़ एक संगठित रूप धारण करने लगी। सुबह के वक्त चूँकि लोगों को अपने-अपने कामों पर जाने की जल्दी होती है, इसलिये शाम को यह भीड़ संगठित रूप से बैठकी में परिवर्तित होने लगी। और अब तो साभ्र हुई नहीं कि एक-एक कर लोग वहाँ वैसे ही प्रगट होने लगते हैं, जैसे आसमान में तारे।

इतना होते भी मुहल्ले की औरतों को उनके घर से कोई दिलचस्पी न थी। इसका पहला कारण यह था, कि उनके घर में कोई औरत न थी, दूसरा यह कि घर में ठाकुर की मूर्ति स्थापित होने पर भी वह खले रूप में मन्दिर न था, और तीसरा यह कि बरनदास की वेब-भूषा एक पुजारी की न हो, गृहस्थ की थी। बूढ़ी औरतों के उनसे जलने का एक

विशेष कारण यह भी था, कि मर्दों के लिये जहां वे इतना कर रहे थे, उनके लिये कुछ नहीं ।

इस तरह देखने पर बरनदास आपको एक विचित्र आदमी लगेंगे । आप न जाने वैसे आदमी के विषय में क्या सोच । पर उनसे मिलने वालों या उनकी बठकी में शामिल होने वालों में से एक ने भी कभी उनके विषय में कुछ सोचने-समझने की आवश्यकता न समझी । उनमें से बहुत-से उन्हें निरा बुद्धू समझते थे, जो इस तरह बिना किसी मतलब के अपना समय और पैसा बरबाद कर रहा था । उन्हें केवल आम खाने से मतलब था, पेड़ गिनने से नहीं ।

बरनदास बैठकी की बात-चीत या गप्प या कथा-कहानों में कभी हिस्सा न लेते, न किसी से कोई विशेष बात ही करते । वे उनके आदर सत्कार में ही अपने को इतना व्यस्त रखते, कि उनके पास बैठ कर उनकी बातें सुनने या अपनी दो बातें कहने की उन्हें दो मिनट की भी फुरसत न मिलती । लोग उनसे बैठने को आग्रह करते, तो वह ही-ही कर कहते, 'अच्छा-अच्छा, जरा आप लोगों के लिये पान...' और वहां से उन्हें कुछ और कहने का अवसर न दे खिसक जाते, तो दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह मिनट के बाद कुछ न कुछ हाथ में लिये आते और देकर कहते, 'अब जरा सिग्रेट...या और कुछ ।'

बैठकी वाले उनकी इस तरह की बातों से मन ही मन मजा लेते । कहने को तो वे उनसे बैठने को कहते, पर चाहते यही कि वह न बैठें क्योंकि ऐसा होने से चीजों का आना ठप हो जाता । उनके यहाँ और कोई तो था नहीं । लोगों को वे नहीं, उनकी चीजे प्रिय थी । बैठकी में मजा भी तभी आता है, जब किसी न किसी चीज के दौर का क्रम बधा रहे, बातचीत और खानपान का सिलसिला साथ साथ चलता रहे । और इसके लिये कोई अपना अक्षय भंडार ही खोल दे, तब बैठने वाले उठने का नाम क्यों ले । यही कारण था, कि यह बैठकी रात के दस-दस ग्यारह-ग्यारह बजे तक पूरे जोश में चलती रहती । बरनदास तो चाहते

थे, कि यह सिलसिला उस वक्त तक चलता रहे, जब तक सुबह न हो जाय, अंधेरा न खत्म हो जाय, रात की नीरवता दिन के शोर में न बह जाय । पर ऐसा होना कैसे सम्भव था ।

और इतना करने पर भी यही असम्भव बात थी, जो उनको बुरी तरह खल जाती । दिन का अकेलापन वे किसी-न-किसी तरह कितनों को कुछ क्षण-क्षण के लिये अपने पास बुला कर या कुछ नहीं तो सामने आते-जाने लोगों को ही देख-देख कर काट लेते, पर रात का अकेलापन ! उफ, उनके लिये यह इतना दुखदायी, इतना पीडक, इतना परेशान कर देने वाला होता, कि करीब करीब वह पागल से हो जाते । उस वक्त वह अपने दिल और दिमाग में उठने वाली बातों को टाले रहने के लिये अपने पूरे घर में चक्कर लगाते रहते, हर चीज को बेमतलब छू-छूकर जो जी में आता, बकते, जैसे वैसा करने से वह चीज एक जानदार की तरह बोल उठेगी, और उनके अकेलेपन की नीरवता भग हो जायगी ।

इस तरह काफी देर तक चक्कर लगाने और बकने के बाद जब वह पूरी तरह थक जाते, और मस्तिष्क में उठे बवण्डर और हृदय में उभरे तूफान को किसी तरह भी सहने में असमर्थ हो जाते, तो ठाकुर के चरणों पर सिर पटक वह फूट-फूट कर बोल पड़ते—“ठाकुर, ठाकुर, तुम्ही कुछ बोलो !”

पर वह पत्थर की मूर्ति क्या बोलती । वह कुछ देर तक मूर्ति की ओर व्यथा-भरी आँखों में आशा भरे देखते कि मूर्ति अब बोनी, अब बोली । पर जब उससे निराश हो जाते, तो हृदय की उफनती पीड़ा के आवेश में फिर ठाकुर के चरणों पर सिर पटक, ऐंठते हृदय को दोनों हाथों से मसलते, जोर-जोर से, व्यथा-विह्वल हो रो पड़ते । तप्त आँसुओं की धाराय धीरे-धीरे जैसे उनके हृदय की पीड़ाओं के दशों की यातना की लहर को चूस-चूस कर आँखों द्वारा बाहर निकालने लगती । धीरे-धीरे रुदन का जोर कम होता । फिर आहो-कराहो का सिलसिला चलता । फिर

भीगी हुई गरम सासो में लिपटी हुई हिचकिया लेंते-लेंते बेकरार को करार आ जाता। वह वही, उसी अवस्था में ऐसे सो जाते जैसे कोई गहरी नींद में बेहोश हो सो जाता है।

बरनदास की अकेलेपन की इस छटपटाहट, हृदय की इस घातक पीड़ा और लोगो के साथ इस विचित्र व्यवहार के पीछे एक बहुत बड़ा रहस्य था।

२

उस समय बरन का बचपन जवानी से गले मिल खुश-खुश विदा हो रहा था।

बी० ए० की अन्तिम परीक्षा दे बरन जब शहर से घर लौटा, तो वृद्ध, विश्वासपात्र मुख्तारआम ने उससे अकेले में मिल निवेदन किया— “सरकार, अब मैं वृद्ध हो चला और आप जवान। इन्ही दिनों को देखने के लिये पन्द्रह वर्षों से मेरी आखें एक क्षण को भी बन्द न-हुईं। आज आपको इस अवस्था में देख कर मेरा हृदय फूला नहीं समाता। आज अगर बड़े सरकार और मानकिन होनी, तो...तो...” वाक्य पूरा न कर वे एक बच्चे की तरह फफक-फफक कर रो पड़े।

बरन के सामने जब भी वे आते हैं, उसे देख कर बेहद भावुक हो उठते हैं। उनका हृदय भर उठता है। वह इसी तरह रो उठते हैं। बरन को अपनी मा की याद बिल्कुल नहीं आती। पिता की भी याद बहुत धुधली-धुधली सी आती है। इसलिये वृद्ध मुख्तारआम की व्यथा को वह नहीं समझ पाता। फिर भी जिन्होंने उसे यह कभी अनुभव न करने दिया हो, कि वह बेमा-बाप का है, उनके प्रति उसकी भावना, बेसी ही है, जैसे एक बेटे की अपने मा-बाप के प्रति होती है। उन्हें वह पिता की ही तरह मानता है, उनसे श्रद्धा करता है, उनकी आज्ञाओं का पालन करता है। उन्हें रोते देख उसकी समझ में नहीं आता, कि

वह उन्हें कैसे सान्त्वना दे, कैसे उनके आंसू पोंछे । पुत्र पिता को सम-भाये, सान्त्वना दे, तो कैसे, वह उसकी समझ के बाहर की बात है । वह तो यही समझता है, कि जो-कुछ है, उन्हीं का है; वह स्वयं भी उन्हीं की सेवा, साधना और परिश्रम का परिणाम है । उसने उनसे कितनी ही बार कहा है, कि वह उसे 'सरकार' न कह बेटा कहा करे । पर बचपन में ही उसे सरकार कहते आने से अब उसे वह बेटा नहीं कह पाते । पिता बन कर भी पिता के दर्जे के हिसाब पर वह बैठना नहीं चाहते । निरपेक्ष रह, अपने कर्तव्यों का पालन, सचाई का पालन करना ही जैसे उन्हें अच्छा लगता है, जैसे अपने कर्तव्यों के प्रति भी उन्हें कोई मोह नहीं ।

दुनिया को उन्होंने एक दृढ़ तक समझा है । वह जानते हैं, कि तनिक भी चूक हुई नहीं कि लोग आसमान से उठा कर ज़मीन पर दे पटकते हैं । उगली उठते देर ही कितनी लगती है । और इसी से अपने प्राँत वह आवश्यकता से अधिक कठोर रहते हैं । सब-कुछ के मालिक बन कर भी एक क्षण के लिये भी उनके मस्तिष्क में यह बात नहीं उठी कि उसका एक तिनका भी उनका अपना है । उन्होंने तो सदा उस सब का अपने को रक्षक ही समझा है । कभी-कभी उनकी यह बात भी बरन को बहुत खल जाती । वह उनसे उसी तरह रहने को कहता है, जिस तरह उसके पिता होते, तो रहते । पर वह ऐसा कैसे कर सकते हैं, जिसकी थाती की रक्षा उन्होंने इतने दिनों तक की है, अब थाती वाले के कहने पर भी उसके वह अधिकारी बनना कैसे चाह सकते हैं ?

बरन अब पढ़-लिख कर जवान हो गया है । मुल्तारग्राम के परीक्षा के दिन अब खत्म हो गये हैं । वह चाहते हैं, कि उसका सब-कुछ उसे सौंप, उसे समझा-बुझा कर वह अब राम-भजन में बाकी दिन काट द । यही बात कहने के लिये वह आज बरन के सामने आये थे ।

बरन ने सदा की तरह उनको रोते देख उदास हो, अपना सिर नीचे कर लिया ।

आखे पोछ उन्होंने भीगी आंखें भुकाये ही फिर कहा—“सरकार, आपको देख कर वे पुरानी बातें बरबस याद हो जाती हैं। उन्हें याद कर मेरा हृदय अपने बस में नहीं रहता।” तनिक रुक कर, एक ठंडी सांस लेकर, आखें ऊपर उठा उन्होंने फिर कहा—“पर आज मैं खुश हूँ, सरकार, बहुत खुश। आज आपको देख कर लगता है, कि मेरे बड़े सरकार ही मेरे सामने उसी दिन की तरह बैठे हैं, जिस दिन पहले-पहल मैं उनकी सेवा में उपस्थित हुआ था। वह उस समय आप ही की उम्र के, बिल्कुल आप ही की तरह थे, सरकार। पर आज मैं वह नहीं हूँ, जो उस समय था। अब मैं बृद्ध हो चला। बड़े सरकार ने आप ही की उम्र से अपने ताल्लुके को सभाला था। अब आप भी इस ओर ध्यान दीजिये। घर बसा कर एक बार फिर वही दिन मेरी आखों को दिखा दीजिए, जो ये बड़े सरकार के जमाने में देख चुकी है। बस, यही एक लालसा रह गई है इस बूढ़े को। मैंने आप के लिये अपने जीवन में कुछ भी उठा न रखा। अब आप मेरी यह आखिरी साध पूरी कर मुझे राम-भजन की आज्ञा दीजिये !”

“दादा !” बरन जैसे एक-व-एक अपने सिर पर एक पहाड़-सा गिरता अनुभव कर चीख पड़ा—“दादा, ऐसी बात न करो ! जो भी तुम कहोगे, मैं करूँगा। पर मुझे अकेले छोड़ने की बात न करो ! नहीं तो मैं कुछ भी न कर पाऊँगा दादा, कुछ भी नहीं !”

दादा ने बढ कर, उठ कर खड़े हुए बरन का सिर अपनी छाती से सटा, उसके सिर पर हाथ फेरते कहा—“नहीं, नहीं, सरकार ! आपको अकेले छोड़ मैं कैसे कही जा सकता हूँ ? जिसे पन्द्रह वर्ष से हृदय के टुकड़े की तरह प्राणों का सारा प्यार देकर पाला है, उसे इस संसार में मैं अकेले छोड़ दूँगा, यह आपने कैसे सोचा, सरकार ? जिस तरह उगली पकड़ा कर मैंने आपको चलना सिखाया, उसी तरह आपका हाथ पकड़ मैं, जीवन की राह पर चलना सिखाऊँगा। आप इस तरह घबराइये नहीं।

यह बूढ़ा अपने खून की आखिरी बूद तक आपकी सेवा में दे देगा, सरकार...”

“नहीं, नहीं, दादा ! अब मुझे तुम सरकार न कहा करो !” बरन ने एक बच्चे की तरह मचल कर, दादा की आंखों में अपनी श्रद्धा-भरी आंखों को डाल कर कहा—“अब तो ऐसा न करो, दादा ! अब तो तुम मुझे बेटा कह कर पुकारो ! कभी किसी ने मुझे बेटा कह कर पुकारा था, मुझे याद नहीं । जब से होश सभाला, तुम्ही को पिता समझा । पर तुम मुझे बेटा समझ कर भी कभी...दादा !” कह कर उसने प्यार-भरी आंखों की याचना को छलकाते दादा की आंखों में अपनी दृष्टि गड़ा दी । दादा ने विह्वल हो उसे कलेजे से लगाया लिया और जीवन में पहली बार भरे हृदय के उमड़ते प्यार को आंखों में छलकते हुए छोड़ रुद्ध-कंठ से अस्फुट स्वर में कहा—“बे...टा”

३

“बस, दादा, आज इतना ही,” खेत की ओर से आँखें हटा बरन ने दादा की ओर देख कर कहा ।

“अरे, अभी तो एक गांव भी पूरा न हुआ !” लगाम के इशारे से अपने घोड़े को बरन के पास ले जा दादा ने पुचकार-भरे स्वर में कहा—‘इस गांव की तो पड़ताल पूरी कर लो, बेटा ! मैं तो सोचता था कि आज कम-से-कम पाँच गांवों से तुम्हारा परिचय करा दूंगा । पर तुम तो...बढ़ाओ, बढ़ाओ घोड़ा । बस, थोड़ा ही और रह गया है, बेटा !’ कह कर उन्होंने बाग मोड़ी ।

पर बरन का मन आगे बढ़ने को न हो रहा था । उसने फिर अपनी आँखें खेत की ओर घुमा दी और एक टक उस ग्रामीण छोकरी को देखने लगा, जो एक अजीब अदा से खड़ी-खड़ी अपने सरकार की ओर न जाने कैसी आँखों से देख रही थी ।

बरन को आगे बढ़ता न पा दादा ने मुड़ कर उसकी ओर देखा, तो लगा, जैसे वह कुछ देखने में मही हो। उसके दृष्टि-पथ का अनुसरण कर दादा ने चाहा, कि वह जान जायं, कि बरन इस तरह क्या देख रहा है, कि तभी एक झटके से सिर घुमा बरन न जाने किन भावों में उलझा हुआ बोल पड़ा—“नहीं, दादा नहीं। आज बस करो। चलो लौट चले। न जाने जी कैसा हो रहा है।”

व्यस्त-से हो घोड़े को उसके पास ला वह उतावले-से बोले—क्यों, बेटा, जी को क्या हुआ ?”

“कुछ...कुछ नहीं, दादा !” कहते-कहते एक अजीब-सी हल्की मुस्कान उसके होठों पर आते-आते ऐसे रुक गयी, उसकी चमकती आँखों में एक कोमल भावना उभरते-उभरते ऐसे दब गयी, जैसे वह कुछ छिपाने का प्रयत्न कर रहा हो। उसने दादा की ओर निगाहे नीची किये ही वाग मोड़ दी। और घोड़े को ऐसी एड़ लगाई, कि वह उछल कर भाग पड़ा।

“अजीब है यह लडका !” कुछ न समझ, होठों में बुदबुदाते दादा ने भी उसके पीछे घोड़ा चला दिया।

बरन आज वैसे ही हैरान था, जैसे एक बच्चा कोई नयी चीज देख कर हो जाता है। रह-रह कर वही मासूम चेहरा, वही खुशी से चमकती, चंचल आँखें उसकी आँखों के सामने नाच-नाच जाती, और वह हैरान हो-हो रह जाता। उसके होठों पर एक अर्द्ध-जागृत, अर्द्ध-निद्रित, दबी-दबी-सी मुस्कान, उभर-उभर कर मिट-मिट जाती। चमकती आँखों में एक अनजान-सा, अबूझ-सा वातावरण अर्द्ध-ज्ञान और अर्द्ध-अज्ञान के तानों-बानों से बुन-बुन कर उधड़-उधड़ जाता। कभी लगता, जैसे वह किसी अनजाने-से ख्याल में खो-सा गया है। कभी लगता, जैसे कुछ रहस्य-सा उसकी आँखों के सामने खुलते-खुलते और भी रहस्यमय हो उठा है। अजीब हैरानी थी, अजीब परेशानी थी। कुछ समझ में आकर भी जैसे कुछ भी समझ में न आता था।

जो भी हो, अलक्ष रूप से एक अस्पष्ट परिवर्तन तो बरन में उस दिन आ ही गया था। उस ने सब काम बदस्तूर किये, किन्तु जैसे उसके मन का, ध्यान का एक सूक्ष्माति-सूक्ष्म अंश कहीं और अटका रहा। अज्ञात रूप से इसका ज्ञान भी कुछ-कुछ उसे हुआ। और जब-जब ऐसा हुआ, वही मुखड़ा, वही आंखें उसकी आंखों के सामने नाच गयीं, वह वैसे ही हैरान रह गया, परेशान रह गया, उसके होंठों पर वैसे ही मुस्कान उभर कर मिट गई, उसकी आंखों में वही बातावरण बुन कर उधड़ गया।

दादा उसके सामने कागजात खोले बैठे हुए थे। वे बता रहे थे ताल्लुके के हिसाब-किताब; कितने गांव उसके ताल्लुके में हैं, उन गांवों के नाम क्या हैं, किसमें कितने की जमींदारी है, कहां से कितना लगान वसूल होता है, कितना भ्रष्टकारी लगान उसे देना पड़ता है, आदि-आदि।

बरन पूरे मनोयोग से उनकी बातें समझने की कोशिश कर रहा था, कागजात की बातों को हृदयङ्गम करने की चेष्टा कर रहा था। अनजान होते हुए भी उसकी उपचेतना में जैसे एक भय का सूक्ष्म अकुर उग आया था, कि कहीं तनिक भी ध्यान बँटा नहीं, कि दादा कुछ ताड़ लेंगे। इसीलिये बरबस वह अपने मन को पूर्ण रूप से केन्द्रित कर दादा की बातें सुन रहा था, कागजात की बातों को समझने की चेष्टा कर रहा था। फिर भी उसे लग रहा था, कि उसका मन, एक क्षण के क्षतांश भाग के लिये ही क्यों न हो, कभी-कभी कहीं अटक जा रहा है। उसे जब कई बार ऐसा लगा, तो मन को केन्द्रित करने में जैसे उसे एक सूक्ष्म कण्ट का अनुभव होने लगा। परोक्ष रूप से उसके मन में यह भी उठा, कि क्यों न अब दादा से काम बन्द करने को कह दे। पर ऐसा कहने से वह कुछ और न समझ बैठे, इसीलिये उसने वैसे कहने का साहस न किया।

बरन की कुशाग्र बुद्धि से दादा बहुत प्रभावित हुए। उनका किसी उतने पढ़े-लिखे युवक से कभी साबिका न पड़ा था, कि वह पहले ही से

यह समझते कि ज़मींदारी की बातें समझना बरन-जैसे एक युवक के लिये कोई मुश्किल बात नहीं। उन्हें उम्मीद बँधी कि लड़का बहुत जल्द सब-कुछ समझ-बूझ कर काम सँभाल लेगा। उन्होंने प्रसन्न हो, बरन की पीठ थपथपाने के लिये उस पर हाथ रखा ही था कि बरन चौंक-सा उठा। उसे लगा कि कहीं दादा ने कुछ लक्ष तो नहीं कर लिया। पर दादा उसकी पीठ थपथपाने लगे, तो वह जैसे स्वयं कुछ भेप-सा गया।

खुश-खुश वहाँ से दादा जब जाने लगे, तो पता नहीं क्यों, बरन उनकी ओर आँखें नीचे किये ही उनके कोनो से एक चुराई हुई नज़र फेक रहा था।

रात में उसे नींद न आयी हो, ऐसी बात नहीं। पर नींद में जैसे उसने कभी-कभी यह अनुभव किया, कि जैसे उसके मस्तिष्क में कोई बाल की तरह बारीक चीज़ रंग-रंग जाती है।

सुबह पड़ताल पर जाने के लिये घोड़ा तैयार था। हृदय में बिना किसी बात के उठे ही बड़ी फुर्ती से पहले दिन की अपेक्षा अच्छे कपड़े पहन, जल्दी-जल्दी जलपान कर बरन घोड़ा आने के पहले ही तैयार बैठा था। दादा ने आवाज़ दी, तो वह बाहर आया। दादा ने पूछा—“किधर चले ? उसी गांव का बाकी हिस्सा पूरा कर ले, या किसी दूसरे गांव को शुरू करें ?”

“किसी दूसरे गांव को, दादा,” बरन ने जैसे कुछ घबरा कर जल्दी ही उत्तर दिया, और लपक कर घोड़े पर जा बैठा।

दादा ने नौकर को सहेज कर घोड़ा आगे बढ़ाया।

आज दूसरे गांव की पड़ताल करते समय बरन का मन रह-रह कर उच्चट जाता। लगता, जैसे उसे कुछ उसी गांव की ओर खींच रहा है। उसकी आँखें उसी मुखड़े को, उन्ही आँखों को एक बार और देखने को उत्सुक हो-हो जातीं। कभी-कभी उसे इसके लिये तनिक बेकली भी मालूम होती। मन-ही-मन वह अपनी कमज़ोरी पर पछताता भी कि नाहक ही

उसने दादा से दूसरे गाँव चलने के लिये कहा । पर दूसरे ही क्षण उसे यह भी ख्याल आता, कि नही-नही, कही दादा...

शाम के धुधलके में आगे-आगे बरन और पीछे दादा अपना घोड़ा सरपट भगाते दूसरी राह से लौट रहे थे । दादा को इस राह में किसी से मिलना था ।

पगडंडियाँ सूनी पड़ रही थी । इधर-उधर इक्के दुक्के किसान या किसानिनें पके नाज के डठलो के बोझ सिर पर लिये, सध्या के धुधलके की पृष्ठि-भूमि में काले छाया-चित्रों से चलते जात हो रहे थे । कटे खेतों के बीच-बीच अकटे खेत दूर से ऐसे मालूम हो रहे थे, जैसे धुधलके की विस्तृत चादर में जा-बजा गहरे काले रंग की क्यारियों के ठप्पे पड़े हो । दूर के बाग-बगीचे ऐसे दीख रहे थे, जैसे काले बादल के बड़े-बड़े टुकड़े आसमान से उतर कर जमीन पर आ खड़े हो । कभी कोई राह से भटकी चिड़िया उनके सिर से बेकली में पख फड़फड़ाती निकल जाती ।

सहसा बरन के आगे एक छोकरी पीछे घोड़ी की टापों की आवाज़ सिर पर आयी जान, गबराहट में सिर का बोझ वही फँके एक ओर को भयातुर-सी, हाँफती खड़ी हो गयी । बरन का घोड़ा बिचक कर ठिठक गया और आगे के दोनों पैरों को उठा हिनहिना उठा । बरन ने घोड़े को संभालते उस छोकरी की ओर देखा, जो अपनी चंचल आँखों में भय भरे, अजीब घबराहट में, अजीब तरह से उसी की ओर देख रही थी । धुधलके में जैसे बरन के सामने प्रकाश की रेखाओं में एक चित्र की बाह्य रेखाएं उभर आयी । उसकी आँखें चमक उठी । मन में बेआवाज़ स्वर में किसी ने कहा, 'अरे, यह तो वही है !' और उसे लगा, जैसे उसका हृदय धक से कर गया हो ।

व्यस्त-से हो दादा ने उसकी बगल में आ उसके घोड़े के नथुने के पास की लगाम पकड़ ली । तब जा कर उसे होश हुआ, कि वह तो घोड़े को संभालना भूल ही गया था ।

उसके बाद उसे ज्ञात न था, कि उसके घोड़े के पैर ज़मीन पर पड़ रहे हैं या हवा में, वह घोड़े पर बैठा है, या ऐसे बादल पर, जिसे हवा उड़ाये ले जा रही हो ।

४

चार-पांच दिन मीठे-मीठे घुलने के बाद एक दिन बरन ने दादा से कहा—“दादा, पड़ताल में तुम्हें बड़ी परेशानी उठानी पड़ती है । तुम्हें इस बुढ़ी में मैं अब अधिक कष्ट देना नहीं चाहता । अब तुम न जाया करो । तुमने पड़ताल का ढग मुझे बता ही दिया । अब मैं अकेले जाया करूंगा । मुझे कोई कठिनाई न होगी ।”

“पर, बेटा, लोगो से भी तो मिलना होता है । उनसे तुम्हारा परिचय भी तो ज़रूरी है । कौन हमारा मदाह है, कौन कैसा है, यह भी तो तुम्हारे लिये जानना ज़रूरी है । इस बूढ़े शरीर को न देखो, बेटा । ये पुरानी हड्डियाँ हैं, जितनी ही बूढ़ी होती जाती हैं, पक कर शीशम की तरह उतनी ही मजबूत होती जाती है !” उसकी पीठ थपथपाते, कह कर वह हो-हो कर हंस पड़े ।

बरन को उनकी हंसी तनिक शक्ति कर उठती । इन दिनों उसकी आखें अपने चारों ओर ज़रा सन्देह की दृष्टि से देखने लगी थी, जैसे वह हमेशा इस फिक्र में हो, कि कहीं उसके मन की बात किसी तरह कोई लक्ष न कर ले । पर दादा ने जब खुश हो कर कहा कि उसे उनकी तकलीफ की चिन्ता बिल्कुल न करनी चाहिये, तो वह आश्चर्य हो बोला—“दादा उनसे मेरा परिचय तो तुम यहा बैठे-बैठाये भी करा सकते हो । रोज़ कुछ लोगों को यहा बुला लिया करो ।”

गाँवों में नये सरकार को जो पहली सलामी मिल रही थी, उस ओर लक्ष कर दादा ने कहा—“गाँवों में मिलने की बात और है, बेटा !”,

“नहीं, दादा, वह सब मुझे अच्छा नहीं लगता । जिसे जो देना होगा, यही आकर दे जायगा । इसके लिये मैं अपने बूढ़े दादा को गांव-गांव घसीटना पसन्द नहीं करता । बोनो, दादा,” उनका हाथ पकड़ बच्चे की तरह मचल कर उसने कहा—“होगा न अब ऐसा ही ?”

ऐसे अवसरों पर दादा उसका मन रखने को विवश हो जाते हैं । वह नहीं चाहते, कि उसके मन को तनिक भी चोट किसी प्रकार पहुँचे ।

अब बरन अकेले ही गाँवों में जाने लगा । बेमन-सा इधर-उधर घूम कर वह दिन में किसी-न-किसी समय एक बार अवश्य उस गांव की पगडंडियों पर घोड़ा दौड़ाता नजर आता । दिन में एक बार जब तक वह उस छोकरी को क्षण भर देख न लेता, उसे चैन न मिलता । चौबीसों घंटे जैसे वह उस एक क्षण की विन्ता में घुला करता । उसके जीवन के दिन-रात में जैसे वह एक क्षण ही सार्थक हो, बाकी सब निरर्थक, व्यर्थ, बेचैन करने वाले ।

धीरे-धीरे उसे मालूम हो गया था, कि वह कब अपने घर के दरवाज़े पर खड़ी मिलती है, कब पगडंडी पर चलती और खेत या खलिहान में काम करती । उसके पास, जाने क्यों, वह एक क्षण को भी रुकता नहीं । दूर से ही देख कर उसका कलेजा धक से करके रह जाता । फिर किस तरह उसका घोड़ा उसकी बगल में तीर की तरह निकल जाता, उसे मालूम न होता । काफी दूर निकल जाने के बाद, जब घोड़ा दम लेने के लिये अपनी चाल धीमी करता, तो वह अपने को पसीने से तर पाता । उसकी साँस धौंकनी की तरह चलती रहती और हृदय धक-धक करता रहता । धीरे-धीरे स्वस्थ होने के बाद उसके होंठों पर एक मुस्कान उभर जाती । उस समय वह प्रयत्न करता, उस अस्पष्ट-सी, भागती झलक को अपने ख्यालो में बाँधने का, कि जिस क्षण उसका घोड़ा उसकी बगल से निकला, उसने क्या देखा, उसका मुखड़ा या आँखें ? पर उसे जान न पड़ता, कि सचमुच उसने क्या देखा । उस वक्त उसे अपने पर भुझला-

हट होती, कि वह उस तरह उसके सामने पड़ते ही घोड़ा क्यों तेज कर देता है ? क्यों नहीं एक क्षण रुक उसे एक बार भर-आँख देख लेता ? उसके जी में आता, कि घोड़ा फिर उसी राह लौटा दे । पर वह वैसा न कर पाता । उसे जैसे उस छोकरी से डर लगता, जैसे दूर से भी उससे आँखें मिलाने की कल्पना करने का भी साहस वह अपने में न पाता । इस ख्याल पर उसकी आँखों में एक भोली मुस्कान खिल जाती । वह खोया-खोया ही-सा होठों में बुदबुदा उठता, 'सच, उस छोकरी से शायद मैं कभी आँखें न मिला सकूँगा, उस छोकरी से जिसका मासूम चेहरा मेरी आँखों के सामने हमेशा बना रहता है, जिसकी चंचल, खुशी से चमकती आँखें मेरी आँखों में थिरकती रहती हैं, जिसके बारे में रात-दिन न जाने क्या-क्या मैं सोचा करता हूँ । फिर भी, फिर भी...' और घोड़े की लगाम वह इस तरह ढीली कर देता, कि जैसे चाहता हो, कि घोड़ा उड़ने लगे, इतनी तेजी से, इतनी ऊँचाई से उड़ने लगे, जितनी खुशी से भरा हुआ उसका दिल उड़ रहा है ।

खुश-खुश जब वह कोठी पर लौटता, और दादा से नजरे मिलतीं, तो उसे लगता, कि वह उस छोकरी से ही नहीं, दादा से भी डर रहा है । जैसे दादा से भी वह अब पहले की तरह बेझिझक आँखें नहीं मिला पा रहा है । जैसे एक चोर-सा घुस आया है उसके दिल में ।

अब वह अकेलापन ज्यादा पसन्द करता है । काम में चाहते हुए भी तबीयत नहीं लगती । थोड़ी देर में ही वह ऊब जाता है । यह सब जैसे एक बोझ मालूम होता है उसके दिल पर, उसके दिमाग पर । इससे मुक्त हो, वह अकेलापन चाहने लगता है । वह अकेले बैठे कर, लेट कर कुछ सोचना चाहता है, कुछ अपने बारे में कुछ उस छोकरी के बारे में, फिर एक साथ उसके और अपने, दोनों के बारे में । उसे सदा भय लगा रहता है, कि कहीं उसके मन में उठने वाली बे-आवाज बातों को भी कोई सुन न ले । इसलिये वह अपने कमरे के दरवाजे बन्द

रखता है। अकेले सोचने में उसे लुप्त आता है। उस छोकरी के केन्द्र से बंध कर जब उसके दिल और दिमाग ख्यालों की दुनिया में भटकने लगते हैं, तो उसमें वह खो जाता है। खोये-खोये सहसा घबरा उठता है। घबरा कर वह फिर अपने केन्द्र पर भाग आता है। वहां पहुंच कर वह आराम की सांस लेता है। उसे लगता है, कि वह केन्द्र ही एक ऐसा स्थान है, जहां आकर उसके थके दिल और दिमाग को आराम मिलता है, चैन मिलता है। पर वहां वह बहुत देर तक नहीं रुक पाता। उसके दिल और दिमाग फिर भटकने लगते हैं। फिर वही चक्कर और यही सिलसिला चलता रहता है, तब तक चलता रहता है, जब तक बेहद घबरा कर, एक घुटन-सी महसूस कर दरवाजे नहीं खोल देता है।

रात को नींद में भी खलल पड़ने लगा है। करवटे बदलता रहता है। करवटों के साथ-साथ ख्याल भी करवटे लेते हैं। कभी कुछ, कभी कुछ। ख्यालों की एक परिधि से दूसरी परिधि में जाने पर उसे एक आराम मिलता है। आराम और बेचैनी के भूलें पर घंटों भूलते-भूलते उसे नींद आती है। और नींद के सपनों में कभी वह किसी गुलजार बाग की सैर करता है, कभी परियों की रानी के साथ सिंहासन पर बैठ कर परियों का नाच देखता है, कभी राधा-कृष्ण के प्रेमोद्गार के दृश्य देखता है, कभी गोप-गोपियों के साथ आँख-मिचीनी के खेल खेलता है, और कभी अचानक उस छोकरी का मुस्कराता चेहरा देख अकचका कर आँखें खोल देता है। उसे भय लगता है, कि कहीं उस छोकरी ने उसे उस रानी के साथ, उन गोपियों के साथ देख तो नहीं लिया? फिर सपने की बात सोच वह मुस्करा देता है। तब एक कोमल, मधुर, सुन्दर भावना उसके हृदय पर छा जाती है। वह कुनमुना कर करवट बदलता है। ऊपर के पैर को पाटी पर फेंक देता है मुलायम तकिये को गाल के नीचे खींच लेता है।

जहर को असर करते देर ही कितनी लगती है। और वह भावना,

जो उसके अन्दर अब जाग उठी है, जहर से कुछ कम नहीं। भीनती जा रही है वह, नस-नस में, रग-रग में, रोम-रोम में। अब वह अपने घोड़े पर दूर से ही पगडंडी पर आती उस छोकरी को देखता है, तो कभी-कभी उसके जी में उठता है, कि वह उसे उसी तरह अपने घोड़े पर बिठा भाग चले, जिस तरह पृथ्वीराज संयोगिता को लेकर भागा था। इस ख्याल से उसे एक सिहरन-सी होने लगती है। पर दूसरे ही क्षण उसे ख्याल आता है, कि वह पृथ्वीराज हो सकता है, पर वह छोकरी? वह उसकी संयोगिता बन सकती है? कौन जाने उसके दिल की। उस वक्त उसके जी में आता है, कि क्यों न एक बार साहस कर वह उससे पूछ ले यह। उसकी ओर देखकर उसकी आंखें चमक तो जाती हैं। फिर... फिर... पर जब घोड़ा उसके पास पहुंचता, तो वह तीर बन जाता। बरन पर एक बेहोशी-सी तारी हो जाती उस वक्त। उसे कुछ भी दिखायी न देता। जैसे उस क्षण के लिये उसका दिल-दिमाग शून्य-सा हो जाता है।

उस दिन भी वह उसी तरह उसकी बगल से गुजर रहा था, कि सहसा उसे लगा, जैसे एक बिजली-सी उसकी आंखों के सामने खड़ी उस छोकरी की आंखों में कौंध गयी है, और वह उसके दिल पर ऐसे गिरी है, कि उसकी धड़कन बन्द हो गई है, और वह वहीं लुढ़क गया है। फिर जैसे चारों ओर एक अन्धकार छा गया है।

छोकरी के मुह से एक चीख निकल गयी। घोड़ा वहीं खड़ा, हकब-काया-सा अपनी आंखें फाड़े अपने मालिक की ओर देख रहा था। ऐसी अप्रत्याशित घटना के सामने देख छोकरी के जैसे होश ही उड़ गये। उसे छोटे सरकार को उठाने तक का ख्याल न रहा।

क्षणों में ही पास-पड़ोस के खेत-खलिहानों से लोग दौड़े आये और छोटे सरकार को फूल की तरह उठा, पास की भोंपड़ी में ले जा, मुख्तार-आम को खबर देने के लिये आदमी दौड़ा दिया।

पानी के छोटो से धीरे-धीरे उसकी आंखें खुली। खोया-खोया ही सा उसने चारों ओर ऐसे निहारा, जैसे नींद से उठ कर कोई अपने प्यारे

सपने की चीज को अपने चारों ओर ढूँढे। उसकी आँखें शायद उन्हीं घटा-सी काली आँखों को ढूँढ रही थी, जिस में वह बिजली चमकी थी।

५

बरन एक ऐसा घायल था, जिसे कही चोट न लगी थी। विस्तर पर पड़ा हुआ चुपचाप वह उस क्षण को याद किया करता। रह-रह कर वह अपने दिल में एक मधुर टीस का अनुभव करता। उसके दिल पर एक चोट लगी थी, जिसके दुखने में भी, (बल्कि में ही) एक मधुर सुख, लज्जत मिलती है। वह चाहता, कि वह चोट बराबर दृष्टा करे, और वह उस सुख, उस लज्जत का बराबर मजा लिया करे-

दादा परेशान हो-हो पूछते—“क्यों, बेटा, तबीयत तो ठीक है न ? डाक्टर कहता था, कि तुम्हें चोट नहीं आयी है। फिर भी मैंने दवा मगा ली है। शायद कही चोट आयी हो। बेटा, कभी-कभी यह चोट घटना के कई-कई दिन बाद उभरती है। तुम पूरे तौर पर आराम करो। मुझे पहले ही भय था, कि कही तुम्हें... इसीलिये अकेले नहीं जाने देता था। पर तुम्हारी ज़िद...” कह कर वह उसका माथा सहलाने लगते। उनकी उँगलियों में कितना प्यार, कितना स्नेह रहता, इसका अन्दाज़ा भावुक बरन को होता था। उस वक्त उसके सिर में उठता, कि अगर वह दादा के सामने अपने दिल की चोट खोल कर रख दे, तो क्या दादा... पर वह छोकरी ? कौन जाने उसके आँखों में वह बिजली कैसे-कौंधी थी ? या यह उसका ख्याल ही था ? ओह, कितने दिनों के बाद एक बार तो अनजाने ही उससे उसने आँखें मिलाने की कोशिश की थी, पर... नहीं, नहीं, वह ऐसी कोशिश करने का साहस अब कभी न करेगा ! पर... पर...

“बेटा !” उसका मुँह तकते दादा बोल उठते—“बोलते क्यों नहीं कुछ ? यों चुप क्यों रहा करते हो ?”

बरन के ख्याल की कड़ी टूट जाती। वह घबरा कर बोल पड़ता—
 “कुछ नहीं, दादा, कुछ नहीं। मैं ठीक हूँ, दादा। तुम चिन्ता न करो।”
 और होठों पर एक मुस्कान लाने की चेष्टा करने लगता।

पर दादा को उसकी बातें सच न लगती। उन्हें लगता, कि वह उनसे कुछ छिपा रहा है। कोई बात जरूर है, कि वह यों चुप रहता है। धीरे-धीरे बरन के व्यवहार, बात-चीत, चाल-ढाल में ज़रा-ज़रा परिवर्तन आते-आते अब वह ऐसा रूप धारण कर चुका था, कि सहज ही लक्ष किया जा सकता था। फिर दादा की उन आखों से वह कैसे अलक्ष रह सकता था, जो हर घड़ी बरन की ओर ही उठी रहती थी। वह गुलाब-सा खिला, सदा हंसता चेहरा क्यों कुम्हलाया-कुम्हलाया सा दीखता है, उसके चंचल स्वभाव पर क्यों एक गम्भीरता का आवरण पड़ गया है, वह क्यों यों खोया-खोया-सा रहता है, आदि प्रश्न उनके मस्तिष्क में उठते थे, पर यह सोच कर कि शायद घोड़े से गिरने से उसकी यह अवस्था हो गयी है, वह उन बातों के लिये अधिक चिन्तित न होते। पर उस बात को गुज़रे जब कई दिन हो गये, फिर भी बरन में वह पहली बातें न आयी, बल्कि वह और भी उदास और गम्भीर दीखने लगा, तो वह व्याकुल हो उठे। वह किसी दशा में बरन का मुखड़ा उदास होते न देख सकते थे। उन्होंने बड़े स्नेह, बड़ी आजिजी से उससे पूछा—“क्यों, बेटा, तुम्हें क्या तकलीफ है, जो यों उदास रहते हो?”

बरन उन्हें इसका क्या जवाब देता? उसने कहा—“दादा, तुम तो नाहक ही चिन्तित हो उठते हो। मैं तो अब बिल्कुल अच्छा हो गया हूँ। कल से फिर पड़ताल का काम शुरू कर दूंगा।”

“नहीं, नहीं, बेटा! अब वह काम फिर कभी होगा। इस वक्त तो जब तक तुम पहले ही की तरह न हो जाओगे, मैं तुम्हें एक क्षण को भी अपनी आखों से ओझल न होने दूंगा।” उन्होंने कहा।

दूसरे दिन से बरन अपने पर ज़ोर दे पहले ही की तरह स्वाभाविक रूप से रहने का प्रयत्न करने लगा। वह जानता था, कि बिना यह किये

उसके बूढ़े दादा उसका पिंड छोड़ने वाले नहीं। उसने ज़रा भी उदासी दिखायी नहीं, कि वह उसे बिस्तर पर लिटा, डाक्टर को बुलवा भेजेंगे। उसने यह भी देखा, कि दादा अब कभी-कभी उसकी ओर ऐसी निगाहों से देखते हैं, जैसे वह उसके बाहरी आवरण को छेद कुछ अन्दर का भी देखने का प्रयत्न कर रहे हो। उसे यह पता न था, कि उसके व्यवहार में अलक्ष रूप से जो हर कदम पर एक कृत्रिमता झलक उठती है, उसी कारण वह उसे वैसे देखा करते थे।

इधर दादा उससे कोई काम न ले रहे थे। वह जानता था, कि अब वह उसे पड़ताल पर अकेले हरगिज न जाने देंगे। इसलिये उसने सैर-सपाटा कर दिल बहलाने की बात उनसे कह, उन्हें पटा लिया। घोड़ा बदल दिया गया। दादा ने हिदायत भी दी कि घोड़े को तेज़ न दौड़ाया करे।

सुबह का सुहावना वक्त था। रात भर ऊमस रहने के कारण सुबह की धीमी-धीमी हवा बड़ी भली लग रही थी। पगडंडी पर बरन अपना घोड़ा दुलकी चाल से धीरे-धीरे चलाते जा रहा था। दोनों ओर खेतों के कट जाने से, जिनमें छोटी-छोटी चिड़िया फुदक-फुदक कर बिखरे दाने चुग रही थी, दूर-दूर तक सपाट मैदान-ही-मैदान दिखाई दे रहे थे। उनके बीच-बीच बागों की हरियाली ऐसी दिखायी देती थी, जैसे धरती की बिखरी सुषमा सिमट-सिमट कर जा-बजा इकत्रित हो गयी हो। धीमी-धीमी हवा से उनके वृक्षों की पत्तियाँ ऐसे हिल-डुल रही थी, जैसे किसी के निद्रित रोम सिहर-सिहर कर उठ-बैठ जाते हैं। क्षितिज के पास के वृक्षों की पत्तियों की आड़ से कोमल किरणें ऐसे झाँक रही थी, जैसे घूँघट की आड़ से किसी सुन्दरी की नज़रें

मुग्ध-सा बरन पूर्वी आकाश के सुनहले दृश्य देखता जा रहा था। उसके चेहरे और आँखों में सुनहली आभा चमक रही थी। सफेद घोड़े पर जैसे सुनहला झूल पड़ गया था। खेतों पर जैसे सुनहरी चादर बिछ

रही थी। दूर से उसे उस तरह जाते कोई देखता, तो लगता, जैसे स्वर्ण-पथ पर स्वर्ण-अश्व पर आसीन स्वर्ण-देश का कोई राजकुमार जा रहा हो।

सहसा उसकी नजर आगे पड़ी, तो देखा कि कोई युवती आगे-आगे दो बैलों के पीछे चलते-चलते मुड़ कर उसी की ओर देख रही है। उसकी पलके झपक-सी गयी। दिल ने जैसे धडक कर कहा, 'अरे, यह तो वही है!' उसने घबराकर चाहा, कि घोड़ा लौटा दे, या वहीं रोक ले। पर जब तक कुछ निश्चित करे कि घोड़ा रुकते-रुकते उसके पास आ गया। वह पहिले ही से बैलों को पगडंडी के नीचे कर, बगल में खड़ी हो गयी थी।

"उस...दिन...उस..." बरन के कानों को जैसे कुछ सुनायी दिया। घोड़ा रुक गया। बरन के कांपते हुए कानों ने यह कापती हुई आवाज सुनी—"उस...दिन...आप...आप गिर पड़े। चोट तो नहीं आयी!"

सूखे गले से जैसे बड़ी मुश्किल से आवाज फूटी—"जी...न...ही।"

"मे...तो...बड़ी सोच में थी, कि कहीं..." जैसे कई पदों से छन कर बारीक, धरधरती आवाज आयी।

गले के सूखे तारों में जैसे कुछ भनभनाहट हुई, पर कोई स्वर न निकला।

"मे...मे...रोज आपको ताका करती थी, कि आप मिलें, तो पूछू। और किसी से कैसे पूछती? लोग न जाने कौसी नज़रों से उस दिन मेरी ओर घूर रहे थे। आप इतने दिन..." ऐसी आवाज आयी, जैसे किसी के कापते-होंठों से निकल, ज़मीन से टकरा, ऊपर को उठ रही हो।

"अब...मे रोका आऊँगा," इस तरह आवाज आयी, जैसे किसी के सटे होंठों की दरार से निकल, आगे जा, पीछे को मुड़ी हो।

"अच्छा, अब आप जाइये, कहीं कोई..." एक हसरत-भरी सांसों में लिपटा हुई आवाज निकली।

इतनी देर में पहिली बार सामने की आँखें मुड़ीं, और नीचे की आँखें ऊपर उठी। और क्षण में ही जैसे दो बोलती प्रतिमाओं के शरीर ऐसे शून्य हो गये, जैसे उनके शरीर के सारे प्राण खिंच कर उनकी आँखों में ही आ गये हों।

६

अब तक व्यर्थ ही डरता रहा वह उससे। ओह, कितनी भली, कितनी अच्छी है वह! अपने बन्द कमरे में दोनों हाथ पीछे किये टहल रहा था बरन। उसकी खुशी का ठिकाना न था आज। आँखें खुशी से चमक रही थी, चेहरा खुशी से खिलखिला रहा था, रोम-रोम खुशी से पुलकित हो रहा। उसका ठिकाना न था आज!

टहलते-टहलते मेज के किनारे पर दोनों हाथ रख आगे को झुक गया। आगे, मेज के पीछे, आदमकद आईना था। अपना प्रतिबिम्ब उसमें वह निहारने लगा। सहसा उसके हृदय की उत्फुल्लता होठों से फूट पड़ी—“उस...दिन...आप गिर पड़े। चोट तो नहीं आयी?”

प्रतिबिम्ब के सामने शरारत से सिर हिला उसने आँखें चमका कहा—“जी...न...ही।

“मे...तो...बड़ी सोच में थी, कि कहीं...”

उसी तरह उसने निचला होठ अन्दर को मोड़ आगे को सिर हिलाया।

“मे...मे...रोज आपको ताका करती थी, कि आप मिले तो पूछूँ। और किसी से कैसे पूछती। लोग न जाने कंसी नज़रो से उस दिन मुझे घूर रहे थे। आप इतने दिन...”

“अब...मे रोज़ आऊंगा!”

“अच्छा, अब आप जाइये, कहीं...कोई...”

“अरे, बेटा बरन !” दादा ने दरवाजे पर दस्तक दै कहा ।

पकड़ा गया अब । ओह, दादा ने सुन तो नहीं लिया यह सब ! घबरा उठा वह । पर दूसरे क्षण सूझ गया कुछ । उसने एक किताब उठा, उसके बीच के पन्नों में उंगली लगा, दौड़ कर दरवाजा खोल दिया ।

दादा ने अकचका कर कहा—“क्यों, बेटा, तुम यहा किससे बातें कर रहे थे ?” और इधर-उधर कमरे में देखने लगे, जैसे किसी को ढूँढ रहे हों ।

बरन अट्टहास कर उठा । दादा कुछ न समझ और भी भौचक-से गये । हंसते हुए ही बरन ने कहा—“मैं यह किताब पढ़ रहा था, दादा !” कह कर उसने उंगली की जगह खोल कर उन्हें दिखा दिया ।

जैसे किसी पहेली में उलझे-से दादा बोले—“तो क्या इसमें भी कोई घोड़े से गिर गया था ?”

क्या जवाब दे बरन ? सोचने के लिये कुछ वक्त चाहिये । उसने हंसते हुए ही दादा के दोनों हाथ पकड़ उन्हें कुर्सी पर बैठा दिया । फिर बोला—“हां, दादा सुनोगँ वह कहानी ?” और उनके सामने खड़े हो किताब खोल ली ।

अजब लड़का है । कुछ समझ में नहीं आता । कल जितना उदास था, आज उतना ही खुश है । खैर, सुन लो इसकी कहानी भी । उन्होंने सिर हिला दिया ।

सकपका गया बरन । क्या सुनाये उनको ? पर सुनाना तो पड़ेगा ही कुछ । उसने वैसे ही शुरू किया, जैसे उसके बचपन में उसके दादा शुरू किया करते थे—

“एक था राजकुमार । कहो, दादा, हूँ !”

दादा ने ‘हूँ’ कहा, उसकी ओर एक अजीब दृष्टि से देखते हुए ।

“वह रोज़ गुलहजारा बाग की सँर करने को जाया करता । रास्ते में रोज़ उसे एक राजकुमारी दिखायी देती । कहो, दादा, हूँ !”

“हूँ ।”

“वह राजकुमारी बड़ी सुन्दर थी । राजकुमार उसे मन-ही-मन प्यार करने लगा । पर उसकी ओर देखने, या उससे बात करने का साहस उसमें न था । वह रोज उसे देख कर मन मसोस कर रह जाता ।”

“हूँ ।” दादा को जैसे कहानी में कुछ दिलचस्पी होने लगी ।

“एक दिन सहसा उसे लगा, कि राजकुमारी की आँखों से कोई बिजली निकल उसके दिल पर गिर पड़ी है । वह घायल होकर घोड़े से गिर पड़ा । राजकुमारी चीख उठी । आस-पास से दौड़ कर लोग आये और बेहोश राजकुमार को उठा कर ले गये ।

“इसके बाद ?”

किताब में देखते कहा बरन ने—“इसके बाद...इसके बाद...हाँ कई दिन तक राजकुमार बिस्तर पर पड़ा राजकुमारी के बारे में सोचता रहा । फिर एक दिन सुबह वह अपनी सँर को निकला । रास्ते में राजकुमारी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी । उसने राजकुमार को पास से गुजरते देखा, तो कहा—‘उस...दिन...आप...आप गिर पड़े । चोट तो नहीं आयी ?’”

“‘जी, नहीं,’ राजकुमार ने कहा ।

“‘मैं...तो...बड़ी सोच में थी, कि कहीं...’ राजकुमारी ने कहा । राजकुमार कुछ बोल न सका ।

“राजकुमारी ने फिर कहा—‘मैं...मैं रोज आपको ताका करती थी, कि आप मिलें, तो पूछूँ । और किसी से कैसे पूछती । लोग न जाने कैसे नजारों से उस दिन मुझे घूर रहे थे । आप इतने दिन...’”

“‘अब मैं रोज आऊँगा,’ राजकुमार ने कहा ।

“‘अच्छा, अब आप जाइये, कहीं कोई...’” कह कर बरन चुप हो गया ।

“फिर ?” दादा ने उत्सुक हो पूछा ।

किताब चटाक से बन्द करते बरन ने कहा—“अभी यही तक पढ़ा है, दादा ।”

और ज़रा देर बाद किताब मेज पर रख, दादा पर झुक, उनके दोनो कन्धों को हाथों से पकड़ वह बोला—“दादा, क्या होगा, इस राजकुमार और राजकुमारी का ?”

“मैं क्या जानूँ, बेटा !”

“नहीं, दादा, बताओ !” मचल कर बरन ने पूछा ।

कुछ सोच कर, हँस, कर दादा बोले—“मेरे देखने में बड़ी-बड़ी तकलीफें उठानी पड़ेगी राजकुमार और राजकुमारी को । पर अन्त में दोनों का प्रेम सफल होगा । दोनों ब्याह कर, राजा-रानी बन, राज-पाट करेंगे ।”

“सच, दादा ?” खुशी से उछल कर बरन बोल पड़ा ।

“हा, बेटा, ऐसा ही तो होता है ।”

खुशी से पागल हो बरन बच्चे की तरह जोर-जोर से हँस पड़ा । दादा भी उसकी खुशी में सहयोग दिये बिना न रह सके । कई क्षण तक उनकी हँसी कमरे के अन्दर गूँजती रह गयी ।

७

बूढ़े दादा पुराने ज़माने के आदमी थे । बरन चाहे जितना बड़ा हो गया हो, उसे वह बच्चा ही समझते थे । उसे ज़रा भी उदास देखते, वो दुनिया की चिन्ता उनके सिर पर चढ़ जाती थी । उसी तरह उसे खुश देखते, तो दुनिया का दुख-दर्द भूल जाते । इतने दिनों उसे उदास रहते देख एक चिन्ता का भय जो उसके हृदय पर बना रहता था, अब उसे खुश देख, वह हट गया । यही उनके लिये सब-कुछ था । इससे अधिक कुछ जानने-समझने की उन्होंने कोशिश न की, कि आखिर तब बरन उदास क्यों था और अब वह खुश क्यों रहता है ।

उसकी ओर से तो अब बरन का भ्रम दूर ही हो गया था। उसने आज यह भी देख लिया कि, कैसी आसानी से वह दादा को भी बहला सकता है। इस तरह निश्चिन्त हो अब वह खुज कर खेलने लगा। दिलो की एक नयी दुनिया आबाद होने लगी। कल्पना की क्यारियो में रोज-रोज नये नये फूल खिलने लगे। प्रेम का बाग गुलजार हो मस्ती में भूमने लगा।

शुरू जवानी के प्रेम के दिन भी क्या अजीब होते हैं ! भोले-भाले, अनुभवहीन हृदय, अपरिपक्व, कच्ची मिट्टी की तरह कोई भी चिन्ह अपने पर उतार लेने वाले मस्तिष्क, न दीन की खबर, न दुनिया का फिक्र, न सुख की परवाह, न दुख की चिन्ता, न वर्तमान का ज्ञान, न भविष्य की आशंका ! आँखों में हर घड़ी एक गहरा नशा-सा छाया हुआ, दिल में किसी प्यारी चीज़ की तस्वीर लिये हर घड़ी मस्ती में भूमते रहना, होठों से कोई मधुर-मधुर प्रेम-गीत गुनगनाते रहना !

बरन की भी अब करीब-करीब यही हालत थी। हर घड़ी जैसे अब वह पिये-सा रहता था। न किसी बात की सुध, न किसी बात की बुध। जैसे इस दुनिया में उसके लिए उस छोकरी को छोड़ कर कोई दूसरा हो ही नहीं, जैसे उसमें वह स्वयं को भी खो चुका हो।

दादा को उसका यह तीसरा रग बिल्कुल ही अनोखा लगा। काम-धाम से तो उन्होंने स्वयं ही उसे आजाद कर दिया था। अब देखा, तो वह अपने को आराम से भी आजाद कर चुका था। दिन में जो घूमता-फिरता था, वह तो था ही। अब रात-बिरात भी गायब हो जाता है। और जब लौटता है, तो जैसे बूत होकर। चेहरा सूखा-सूखा, आँखें लाल लाल। न किसी से बातचीत, न खाने-पीने की चिन्ता। यह क्या हो गया है बरन को ? उनका माथा ठनका, कि कहीं...

कभी न पीने वालों का यह पहला नशा था। पहले पगडंडी पर ही एकाध क्षण को मिल मन को समझा लेते। पर अब आग धधक गयी थी। किसी पहलू भी अब चैन मिलता असम्भव हो गया था दोनों के लिये।

मुलाकातों के क्षण बढ़ने लगे। फिर घड़ियों की ज़रूरत महसूस हुई, तो रात की अंधेरी, खामोश गोद ने उन्हें अपनी ओर आने का संकेत किया। दीवानों ने उधर पग बढ़ाया। हाथ से हाथ मिले। तारों ने फलकें झपकायीं। मीठे-मीठे, प्यारे-प्यारे, पास-पास की साँसों में लिपटे हुए स्वर निकले। हवा ने खामोश हो कानों पर उंगली धर ली। झपकी-झपकी में वक्त ने खामोशी से घटो की राह तय कर ली। अंधेरे ने गाढ़ा हो चुपके से कहा, 'मे अब चला। चाँद आ रहा है।' चार आँखों में सहसा चार तारे चमक गये। दो छायायेँ उठीं। बढ़े हुए दो हाथ इधर, दो उधर। उंगलियों में उंगलियाँ उलझी हुईं। विदा! ठण्डी-ठण्डी, भीगी-भीगी साँसें। कल के लिये होंठो-होंठों में वादे। उंगलियों की उलझने ढीली हो सरकी, फिर पोरों पर आ उलझ गयीं। दिलों में कसमसाहटे। उंगलियाँ अलग नहीं हो रही। जैसे अलग हुई नहीं, कि जादू टूटा, प्यार का जादू, मोह का जादू, आनन्द का जादू। वह नहीं चाहते कि वह जादू एक क्षण को भी टूटे। पर अधिक विलम्ब अब... उँगलियाँ अलग हो गयीं। हाथ गिर गये। छायायेँ काँपी। फिर दो दिशाओं में पैर उठने-गिरने लगे, ऐसे, जैसे नशे में भी पैरों को बला का होश हो, जैसे ज़मीन को भी मालूम न हो, कि उस पर किसी के पैर पड़ रहे हों।

यह वह प्यास नहीं, जो पिये से बुझ जाय। जितना पियो, उतनी ही बढ़ती जाती है। और तब तक बढ़ती जाती है, जब तक सर्वाङ्ग प्यास न बन जाय, या सर्वाङ्ग शराब न बन जाय। बीच में यह रुक नहीं सकती, रोकी नहीं जा सकती। बरन इसी ओर तेज़ी से बढ़ रहा था। उसे किसी बात का होश न था। और जो होश था, उसमें दादा कभी के गायब हो चुके थे। वह अब यह भी देखने की परवाह न करता कि दादा किसी नजरों से उसकी ओर ताका करते हैं। उसकी ये बातें देख कर दादा स्वयं डरने लगे थे। उन्हें उसे किसी प्रकार भी छोड़ते भय मालूम होता था, कि पता नहीं वह क्या कह दे, क्या कर बैठे। छिपे-छिपे उसके बारे

म कुछ जानने की उन्होंने ज़रूर कोशिश की, पर कुछ पता न लग सका। रात को उसके पीछे लगने की या किसी को लगाने की बात भी कई बार उनके मन में उठी, पर वह इससे आशंकित हो उठते, कि ऐसा करने से कहीं कुछ ऐसा न दिखायी दे जाय कि उनका दिल सदा के लिये एक बार कड़क कर टूट जाय। वह पिता से भी अधिक बरन को प्यार करते थे। इस स्थिति में उनके हृदय की क्या अवस्था थी, वह कोई भी आसानी से नहीं समझ सकता, एक मदहोश जवान की बात कौन कहे ?

दादा छटपटा-छटपटा कर रह जाते। कभी-कभी उनके जी में आता कि वह जाकर बरन से पूछें, कि वह क्यों ऐसा हो रहा है, और क्या चाहता है, वह कैसे अच्छी तरह खुश रह सकता है ? और जब उन्हें मालूम हो जाय कि फर्क बात हो जाने से वह ठीक हो जायगा, तो वह जैसे भी हो, उसे पूरा कर उसे खुश कर दे। पर बरन का यह मुखड़ा, वह आख, वह रवइया देखकर उनकी हिम्मत टूट जाती। उसका वह रूप उनसे न देखा जाता। वह आखें हाथों से मूढ़ फूट-फूट कर रो पड़ते। बरन को अपने ही से कहा फुरसत थी, जो वह दादा की ओर ताकता।

दादा बीमार पड़ गये। नौकर ने सहमे-सहमे यह खबर जब बरन को दी, तो उसे लगा, जैसे फूलों की क्यारियों की सैर करते-करते सहसा उसके पैर में एक काँटा चुभ गया हो। उसे कुछ होश हुआ। ओह, दादा से बात किये कितने दिन बीत गये ! वह भागा-भागा उनके पास पहुँचा। दादा पलंग पर लेटे, आँखें खोले जैसे उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उनका माथा छू बरन बोला—“क्या हुआ, दादा ?”

दादा की आँखों से आंसू ढुलकने लगे। उनके आंसू देख कर बरन की आत्मा की नींव तक कांप गयी। वह अनियन्त्रित हो चीख पड़ा—
“दादा !”

दादा के कांपते होंठों पर एक व्यथा-भरी, कहरण मुस्कान उभर आयी। आंसू-भरी आँखों को उसकी ओर उठा कर बोले—“बेटा, एक बार फिर कहो। कितने दिन हो गये तुम्हारे मुँह से यह शब्द सुने !”

“दादा, यह क्या हो गया तुम्हें ?” बरन ने उनके मुह पर झुक कर आतुरता से कहा ।

“मुझे सिर्फ तुम्हारा रोग है, बेटा । अब की यह बड़ा कठिन मालूम होता है !” दादा ने उसके दोनों कंधों को अपने हाथों से थाम ऐसे कहा, जैसे उनके हृदय में कोई व्यथा-टीस उठी हो ।

“तुमसे कितनी बार कहा, दादा, कि तुम मेरी चिन्ता न किया करो, पर तुम ...”

“बेटा”, दादा बीच ही में बोल पड़े—“जिसके कारण मैंने कभी अपने जीवन, अपने शरीर की चिन्ता न की, आज तुम कह रहे हो, कि मैं उसकी चिन्ता न करूँ ? और मेरा कौन है, बेटा ?”

“दादा, यह कहते वक्त तुम यह क्यों भूल जाते हो कि तुम्हारे बेटे का भी तुम्हारे सिवा और कौन है । कही तुम्हें कुछ हो गया, तो तुम्हारा बेटा ...”

उसके मुंह पर हाथ रख कर दादा करीब-करीब चीख पड़े—“नहीं, नहीं, बेटा, ऐसा न कहो ! नहीं तो मेरे जीवन की सारी साधना व्यर्थ हो जायगी, मर कर भी मेरी आत्मा को चैन न मिलेगा !” तनिक रुक कर वह फिर बोले—“बेटा, दादा तुमसे कुछ नहीं चाहता । वह सिर्फ तुम्हें खुश देखना चाहता है । इधर पता नहीं तुम्हें क्या हो गया है, कि दादा क्या तुमने अपने को भी भुला दिया है । यह तुम्हारा मुखड़ा क्या वही मुखड़ा है, वह तुम्हारी आंखें क्या वही आंखें हैं ?” उसके चेहरे पर हाथ फेरते वह फिर रो पड़े । तनिक देर बाद फिर बोले—“यह सब मुझसे देखा नहीं जाता, बेटा । मेरी यह साध ही रह गयी, कि कभी तुम अपने मन की बात मुझसे कहते, कभी मचल कर कहते, ‘दादा, मुझे यह चाहिये ।’ आखिर तुम्हें क्या दुख है, बेटा ? तू अपने दादा से क्यों नहीं कहता ? क्या तुझे विश्वास नहीं, कि तेरा दादा सर्वस्व होम कर भी तेरी इच्छा पूरी करेगा, तेरे होंठों की मुस्कान के लिये वह अपनी जान तक

न्यूछावर कर देगा ?” कह कर उन्होंने एक प्रश्नसूचक दृष्टि से बरन की ओर देखा ।

दादा के ममतामय हृदय की निकली इन प्यार-भरी बातों के नीचे बरन दब-सा गया । ओह, कितनी तकलीफ दी है उसने दादा को ! कैसे वह भूल गया, कैसे वह गलत समझ बैठा अपने स्नेहमय दादा को ! क्यों नहीं उसने सब-कुछ...

वह सिर झुका कर एक अपराधी बालक की तरह उनकी ओर मुंह कर सिरहाने बैठ गया ।

“बोलो, बेटा !” उसकी ठुड्डी ऊपर उठाते दादा ने स्नेह-सने स्वर में कहा ।

बरन के चेहरे पर एक शर्मीली मुस्कान की आभा बिखर गयी । उसने आंखें झुकाये ही कहा—“वह कहानी सुनोगे, दादा ?”

“कहानी ?” एक बड़ी गम्भीर घात की कल्पना करते रहे दादा उसकी यह बच्चो-सी बात सुन कर भौचक-से हो बोल पड़े—“कैसी कहानी, बेटा ?”

“वही राजकुमार और राजकुमारी की ।” उस बार उसने दादा को बहलाने के लिये वह कहानी कही थी, पर इस बार उसने संकेत में ही अपनी बात कहने की गरज से कहा ।

“राजकुमार-राजकुमारी की नहीं, मैं तुम्हारे मन की सुनना चाहता हूं, बेटा ! इस तरह तुम मुझे कब तक बहलाते रहोगे, कब तक तुम यों अपने को और मुझे धुलाते रहोगे, बेटा ?” दादा ने उसकी आंखों में अपनी आंखें डाल कहा ।

“नहीं, दादा, आज मैं सच ही कह रहा हूं”, बरन ऐसे बोला, जैसे वह अपने हृदय की गहराइयों में डूब कर बोल रहा हो—“हां, तो, दादा, उस दिन से उन दोनों का प्रेम क्षण-क्षण बढ़ने लगा । अब वह एक दूसरे से बातें करने को बेचैन रहने लगे । आखिर दुनिया की नजरों को बचा कर

रात के अँधेरे में अपने दिल का प्यार एक-दूसरे पर लुटाने का निश्चय किया। नियत स्थान पर वे छिप-छिप कर पहुँच जाते और खामोशी की गोद में बैठ कर खामोश-खामोश, प्यार-भरी बातों में घंटों बिता देते। राजकुमार पर धीरे-धीरे प्रेम का यह नशा चढते-चढते इतना चढ़ बैठा, कि वह सब-कुछ भूल एक दीवाने की तरह रहने लगा। वह राजा का इकलौता बेटा था। वह उसे बहुत प्यार करता था। राजा ने उसकी ऐसी दशा देखी, तो वह चिन्तित हो उठा। पर राजकुमार को अब जैसे अपने पिता की भी चिन्ता न रह गयी थी।

“प्रेम-बन्धन में बँधने के लिये अब दोनों छटपटा रहे थे, पर उनकी समझ में न आता था, कि वे कैसे यह बात अपने पिता से कहें। आखिर एक दिन ऐसा हुआ, कि अपने बेटे की चिन्ता में राजा बीमार पड़ गया। राजकुमार को जब यह मालूम हुआ, तो वह दौड़ा-दौड़ा अपने पिता के पास पहुँचा। पिता ने रोकर उससे उसकी इस हालत का कारण पूछा। पिता के दुख से विह्वल हो राजकुमार ने राजकुमारी से अपने प्रेम की कहानी सुना दी।” कह कर बरन ने भय से अपनी कॉपती आँखों को दादा की ओर घुमाया।

दादा अत्यधिक गम्भीर हो, उसी का मुँह तक रहे थे। यह मौका वह हाथ से जाने देना नहीं चाहता था। वह अपनी सारी हिम्मत बटोर कर आँखें मूँद कर कह गया—“बन्नाओ, दादा, इस पर राजा ने क्या कहा?”

“राजा ने?” अकचका कर गम्भीरता के समुद्र में डूबे दादा ने जैसे सिर ऊपर उठा कर कहा।

“हाँ, दादा, भला राजा ने कहा क्या?” अत्यधिक उत्सुक हो हृदय की धड़कनों को सँभालता बरन बोला।

दादा उठ कर बैठ गये। हाथों से पोंछ कर आँखों को साफ किया। फिर कुछ सोच कर सामने दीवार की ओर देखते कहा—“राजा ने राजकुमार से पूछा, वह कहाँ की राजकुमारी है?”

“राजकुमार ने बताया, ‘महतो के टोले की पूर्वी सीमा पर, जहाँ से

खेतों को पगडंडी चली गयी है, उसी महल में वह राजकुमारी रहती है।”

“महतो का टोला, महल, राजकुमारी, यह क्या कहते हो, बेटा ?” दादा जैसे आसमान से ज़मीन पर गिर आँखें फाड़ बोले।

“हां, दादा, वह राजकुमारी, जिसमें उस राजकुमार के प्राण बसते थे, बही रहती थी।” बरन ऐसे बोला, जैसे उसका कलेजा मुंह को आ रहा हो।

“लेकिन...लेकिन...” बरन का अत्यधिक परेशान चेहरा देख, दादा घबरा कर, जैसे शीघ्रता से अपने पर सीमा से अधिक जोर देकर निश्चय पर पहुँच जाना चाहते हुए बोले—“पर...पर...कहां वह राजकुमार और कहां...नहीं, नहीं, बेटा, वह राजकुमार के हृदय की राजकुमारी... हाँ, हाँ, बेटा...”

“दादा !” बरन को लगा, जैसे उसका कलेजा फट जायगा। वह बेहद बोखला कर बोला—“बोलो, दादा ! राजा ने क्या कहा ? क्या कहा, दादा ?” कह कर वह दादा से लिपट गया। और उनकी छाती में सिर रगड़ता फूट-फूट कर रो पड़ा। उसका हृदय जैसे ऐंठा जा रहा था।

उसकी पीठ थपथपाते-थपथपाते दादा ने अपने सब स्वप्नों को, सब साधो को अपने आँसुओं की धारा में बहा दिया। किस काम के वे, जब बेटा एक भोपड़ी की भिखारिन को ही अपने हृदय के सिंहासन पर बैठा चुका है। अपनी साधो को पूरा करने के लिये किस हृदय से वह उसका दिल तोड़ कर टुकड़े-टुकड़े कर दे ? नहीं-नहीं, जिसमें वह खुश, उसी में सब खुशी। वह अपने को संभाल बहुत जोर डाल कर स्वर स्वाभाविक करते बोले—“बेटा, सुनो ! राजा ने राजकुमार से कहा कि वह जल्द उनका घोड़ा तैयार कराये। वह अभी उसकी राजकुमारी को लाने जायेंगे।” कह कर उन्होंने अपना मुँह एक ओर फेर लिया।

बरन के घुटते प्राणों पर जैसे अमृत की बूँदें टपक पड़ीं। उसका बिकृत मुखड़ा इस तरह खिल गया, जैसे जादू से कोई मुरझाया गुलाब

का फूल ताज्जा हो खिल उठे । उसने पूरे जोर से दादा को हृदय से भीच लिया । उसकी हर्ष-विह्वलता जैसे दादा पर अपने को न्यूँझावर कर देना चाहती हो । उसे क्या मालूम कि दादा की फिरी आँखों के आंसुओं में कितने अरमानों का खून लिपटा था ।

८

दादा जा रहे थे । कभी इस यात्रा की उन्होंने कल्पना की थी, कि क्या शान होगी, क्या खुशी होगी ! पर आज ? जैसे उनका सिर गड़ा जा रहा हो, जैसे आत्म-ग्लानि, लज्जा और सन्ताप से उनकी आत्मा रो रही हो । क्या उन्होंने कभी यह सोचा था, कि बरन के लिये उन्हें स्वयं एक साधारण किसान से भीख मागनी होगी ? क्या कितने सम्बन्धों को वह इसी दिन के लिये टाल चुके थे ? पर वह क्या करें ? एक ओर बरन, दूसरी ओर यह कुल-प्रतिष्ठा ? किस पलड़े को वह भुकता देखे ? उनके लिये तो...और अज्ञात रूप से जैसे उनकी उपचेतना में जाने कहा से यह ख्याल उठ आया, कि क्या अच्छा हो, कि ऐसा कुछ हो जाय, कि वह किसी भी पलड़े को भुकता इन आँखों से न देखें । यह एक असम्भव ख्याल था, पर जैसे दादा को इस आधार से कुछ सन्तोष हुआ । वह मन-ही-मन भगवान से विनय करते आगे बढ़े, कि हे भगवान, तू जैसे भी हो इस कलंक के भँवर से निकाल दे !

और जैसा वह चाहते थे, वैसा ही जब हो गया, तो उन्हें उस वक्त यही मालूम हुआ, कि भगवान ने उनकी प्रार्थना सुन ली । अब उन्हें खुश होना चाहिये था, पर अब बरन का ख्याल, कि यह खबर सुन उसकी क्या दशा होगी, उन्हें परेशान करने लगा । यह पहलू पहले उनके सामने आया ही न था । अब ?

और, तो घोड़े की लगाम षकड़े सिर भुकाये पैदल ही चल रहे थे । उनके सामने बरन का चेहरा षग-षग पर जैसे खौफनाक, और खौफनाक

होता जा रहा था। कंसे वह यह खबर उसे दे सकेंगे ? उसे सुन कर उसकी क्या दशा होगी ? ओह, ओह, अब क्या होगा, भगवान ?

बरन बड़ी बेचैनी से उनके लौटने का इन्तज़ार कर रहा था। जैसे-जैसे देर होती जा रही थी, उसकी बेचैनी बढ़ती जा रही थी। कोठी के बाहर दोनों हाथ पीछे बांधे वह बड़ी तेज़ी से टहल रहा था। जैसे वैसा करने से अन्दर की बेचैनी दब जायगी, जैसे उतनी ही तेज़ी से दादा दनदनाते हुए आ पहुँचेंगे। उसकी आँखें उधर से आने वाले रास्ते पर ही बिछी थी। कान इस प्रतीक्षा में थे, कि दादा के घोड़े की टापो की आवाज़ अब सुनायी दी, अब सुनायी दी।

धीरे-धीरे शाम का धुधलका उतरने लगा। रास्ते पर अन्धकार की चादर बिछने लगी। सिर पर से कभी-कभी कौए पंख फड़फड़ाते का-का करते निकल जाते। बरन की हैरानी, परेशानी की कोई सीमा न थी। आखिर दादा क्यों नहीं लौटे अभी तक ? क्या बात हुई वहाँ ? कभी कुछ सोच कर उसकी आँखों में खुशी खिल उठती, कभी कुछ सोच कर उसके चेहरे पर निराशा का रंग पुत जाता। अजीब हालत थी उसकी। न रोते बनता, न हँसते।

टहलते-टहलते उसके पैर शिथिल हो गये, सोचते-सोचते उसका दिमाग थक गया, तो वह अपने कमरे में आ आरामकुर्सी पर लेट गया। नौकर टेबुल-लैम्प जला गया था। उसकी थकी आँखों को वह रोशनी अच्छी न लगी। उसने उठ कर उसे मद्धिम कर दिया। रोशनी सिमट कर मेज़ पर ही जैसे ऊँघने लगी। अँधेरे में ही ताकते-ताकते जैसे बरन की आँखें झपक गयीं। पता नहीं कितनी देर तक वह योही पड़ा रहा। सहसा उसे लगा, कि किसी ने चीख कर उसे पुकारा है। घबरा कर उसने आँखें खोल दीं और उठ कर पुकार उठा—“दादा ! दादा !”

दरवाज़े पर नौकर हाथ में थाल लिये खड़ा था। सरकार की चीख सुन वह सहम गया। दरवाज़े पर लपक कर उसे देख बरन ने पूछा—“दादा आ गये ? मुझे किसी ने अभी पुकारा था ?”

“नहीं, सरकार, दादा जी अभी नहीं आये। मैंने भोजन के लिये पूछा था।” डरते-डरते नौकर ने कहा।

“ओह ! ओह !” माथे और सिर पर हाथ फेरते उसने बाहर फँले अन्धकार की ओर देखा। महसा उसे कुछ याद आ गया। शायद देर हो गयी है। कहीं ‘उसने’ तो नहीं पुकारा ?—“जल्दी घोड़ा लाने को कहो !” कह कर वह जल्दी-जल्दी में कपड़े बदलने लगा।

पेड़ के तने से घोड़ा बाँध वह नियत स्थान की ओर बढ़ा। वह सोचता था, कि वह कब की बैठी उसका इन्तज़ार कर रही होगी। वह सोच रहा था, कि कैसे वह देर होने की उससे माफी मागेगा। फिर इशारो-इशारो में पूछेगा कि...पर वहाँ पहुँच कर उसने देखा, वहाँ कोई नहीं था। आँखें फाड़-फाड़ कर चारों ओर ताका, पर कहीं कोई न था। देर होने से निराश हो वह लौट तो नहीं गयी? इस प्रश्न के उत्तर में उसने अपने को उसके स्थान पर रख दिया, “नहीं, भला ऐसा कैसे हो सकता है ?” वह वहीं बैठ गया। रात के अँधेरे में इधर-उधर घूरता वह काफी देर तक बैठा रहा। कभी उसे लगता कि कोई काली छाया उसकी ओर बढ़ती आ रही है, कभी किसी के हल्के पदचाप उसके कानों को सुनायी पड़ते, पर दूसरे ही क्षण वहाँ अन्धकार और खामोशी के सिवा कुछ न बचता। परेशानी पर परेशानी। घंटों दादा का इन्तज़ार, घंटों उसका इन्तज़ार। ओह, इन्तज़ार भी क्या बला है ? उसे लगा, कि उसने उसके सारे आराम, सारी आशाओं का खून पी कर उसे मुर्दा बना कर छोड़ दिया है। उसकी समझ में कुछ न आ रहा था। दादा कहाँ रह गये ? वह क्यों न आयी ? ओह, कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है।

प्रतीक्षा के विलम्ब ने जब आशा का गला घोट दिया, तो बरन वहाँ से वैसे ही चल पड़ा, जैसे रोशनी में चलते-चलते कोई सहसा अन्धकार में पड़ चलता है। रात के अन्धकार की ही तरह इस समय उसके दिल और दिमाग पर भी गहरा अन्धकार छाया था। ऐसे अन्धकार का अनु-

भव उसने आज तक न किया था। दादा नहीं लौटे, वह नहीं आयी। क्या मतलब है इसका? कहीं... और उसे लगा कि कहीं यह अन्धकार उसके जीवन का अन्धकार न बन जाय। पर नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता, ऐसा वह हरगिज न होने देगा!

दादा अपने कमरे के बरामदे में टहलते व्यथित-से सोच रहे थे, कि वह जब बरन से मिलेगी, तो बरन को सब मालूम हो जायगा। उससे स्वयं सब कहने का साहस उन्हें न था। इसलिये वह देर से लौटे थे। हां, इसका अन्दाज उन्हें जरूर कुछ था, कि सब जान कर बरन किस दशा में रात को लौटेगा। उस समय भी उसके सामने खड़े रह, उसकी हालत देखने की उनमें ताब न थी। यही दुश्चिन्ता उनको सब से अधिक पीड़ा पहुंचा रही थी, कि बरन कैसे यह भेलेगा, उमका कोमल हृदय क्या टुकड़े-टुकड़े न हो जायगा, वह कैसे संभालेगे?

सहसा आंगन में झपटता आता बरन चीख पड़ा —“दादा!”

दादा ने लपक कर, आशंकित हो, उसे अपनी छाती से लिपटा लिया।

“तुम कहां रह गये थे, दादा? क्या हुआ वहां?” असीम उत्सुकता की पीड़ा से छटपटाता वह सिर पीछे कर बोल पड़ा।

दादा ने उसे संभाल कर कमरे के अन्दर बिस्तर पर बैठा दिया। और स्वयं उसके पास ही बैठ कर सहमे-से बोले—“उस लड़की ने तुम्हें नहीं बताया?”

“नहीं, दादा, वह आज मही मिली!” तड़पती-सी आंखें उठा उसने कहा।

दादा का दिल धक से कर गया। जिस बात से छुटकारा पाने के लिये उन्होंने यह सब किया, वह व्यर्थ ही हुआ। अब? ओह, कैसे कहें उससे वह सब बातें? उन्होंने सिर झुका लिया।

दादा को चुप देख जैसे एक मर्मन्तिक शूल-सा बरन की छाती में चुभ गया। तो क्या... वह व्यथा-विह्वल-सा दादा के कंधों को दोनों हाथों

में ले जोर से हिलाता चीख-सा पड़ा—“दादा, दादा ! बताते क्यों नहीं, दादा, क्या हुआ ?”

दादा ने सारी हिम्मत को बटोर, सिर उठाया + उनकी बादल-भरी आंखों, कांपते होठों, थरथराती भौंहों और चेहरे की झुर्रियों पर व्यथा की रेखाओं की करवटें देख बरन के प्राण सूख गये। असह्य पीड़ा से सुन्न-सा हो उसने अनियंत्रित-सा अपना सिर उनकी गोद में पटक दिया। उसकी बोटी-बोटी ऐसे छटपटा रही थी, जैसे सैकड़ों बछ्छों से कोई बेदर्दी से उसे खोभ रहा हो।

बुत-से बने दादा के हाथ उसकी पीठ पर चल रहे थे। उनकी आंखों के बादल टप-टप बूंदें चूला रहे थे। और उनके होठ ऐसे हिल रहे थे, जैसे उन्हीं पर उनके प्राण आ छटपटा रहे हो, और उनसे यह अस्फुट स्वर निकल रहे हो—“वह तुम्हारे राज-महल में नहीं आ सकती, बेटा। जब पांच वर्ष की ही वह थी, तभी उसकी मगनी हो गयी थी। आज उसके ब्याह की लगन भी पड़ गयी है।”

“दादा ! दादा !”...व्यथा के अछोर सागर में शूलों की लहरें उठ रही थी, आहों-कराहों के स्वर में गरज रही थी, हृदय के किनारों से टकरा-टकरा सिर धुन रही थी।

दादा के कांपते हाथ उसके माथे पर घूम रहे थे।

६

नशे की प्रतिक्रिया शुरू हुई। जिस नशे ने अपनी संजीवनी से जितनी जीवन-शक्ति पीने वाले में भर दी थी, जब वह उतरा, तो उसके पहले की जीवन-शक्ति का भी कितना भाग अपने साथ खींचता गया, इसका कोई हिसाब नहीं। बरन में जो कुछ बच गया था, शायद उसमें उतनी ही जीवन-शक्ति बच गयी थी, जितनी एक जीवित लाश में उसकी कल्पना की जा सकती है। उसका चेहरा अब भी सूखा ही था, किन्तु

पहले की तरह उसके नीचे न वह जीवनमय कोमलता रह गयी थी, न वह अन्तर्पथ से सतत प्रवाहिनी प्रेम की अमृत-धारा, जिससे उसके प्राण हर क्षण सींचे जा कर हरे होते रहते थे। अब तो वह ऐसे सूख गया था, जैसे जड़ के अशक्त होने पर पेड़ के पत्ते सूख जाते हैं, जिनके हरे होने की कभी कोई आशा ही नहीं की जा सकती। उसकी आंखें पहले ही की तरह लाल थीं, किन्तु उनके डोरों में वह पहले का प्रेम का उन्मादक रंग न था। अब तो वे ऐसे लाल थी, जैसे वे प्रेम की सारी मधुर भावनाओं, आत्मा के सारे प्यारे अरमानों के खून के साथ लिपटे हुए आंसुओं के रंग में रंगी हुई हों। वह पहले ही की तरह अपने से, दुनिया से लापरवाह था, किन्तु उसकी लापरवाही में वह पहले की बदमस्ती, बेहोशी न थी। अब तो वह ऐसे लापरवाह हो गया था, जैसे जिन्दगी से हमेशा-हमेशा के लिये बेजार हो गया हो, उसकी दीवानगी पहले ही की तरह कायम थी, पर उसमें वह पहले की प्रेम-विह्वलता की आत्म-विस्मृति की असीमता का आवेश न था। अब तो वह केवल मस्तिष्क की विकृति का परिचायक मात्र रह गयी थी। उस नशे की प्रतिक्रिया भी एक नशा ही थी, किन्तु जहाँ उसमें असीम उल्लास की उन्मत्तता की लहरो पर उन्मुक्त जीवन लहरा रहा था, वहाँ इसमें अनन्त व्यथा की मर्मन्तक पीड़ाओं के चुभते शूलों में बिंधा जीवन वैसे ही फड़फड़ा रहा था, जैसे कांटों के जाल में फंसा हुआ मरणासन्न पंछी फड़फड़ाता है।

उसकी यह दशा देख, दादा की वही दशा हो गयी थी, जो हरिणी की अपने बच्चों को तीर खा गिरते देखकर होती है। बेचारी हरिणी की मूक व्यथा, मूक रोदन का अन्दाजा कौन लगा सकता है? काश, उसके वश में होता, कि अपनी जान दे कर भी वह बच्चे का तीर निकाल, उसे पीड़ा-मुक्त कर पाती !

दादा आज महतो के टोले की ओर वैसे ही जा रहे थे, जैसे बाजार उठ जाने पर कोई सौदा खरीदने चले। कल जब उस काम के हो जाने की सम्भावना थी, तो मन-ही-मन उन्होंने ईश्वर से प्रार्थना की थी, कि

ऐसा कुछ हो जाय, कि वह न हो। किन्तु आज जब उसकी सम्भावना सदा के लिये समाप्त हो गयी थी, तो मन-ही-मन भगवान् से प्रार्थना कर रहे थे, कि ऐसा कुछ हो जाय, कि वह सम्भव हो जाय। कल जो बात उनके मन में उठी थी, उसी कारण वैसा न हुआ था। फिर भी उनका मन उस बात के उठने के कारण अपने को घोर अपराधी समझता था। उन्हें इसके लिये आज बड़ा पश्चात्ताप हो रहा था। उन्हें लग रहा था, कि बरन की इस असफलता में परोक्ष रूप से उनका हाथ भी था। वह ख्याल उनके दुखों को और भी बढ़ा रहा था। आज उसी का प्रायश्चित्त वह, जैसे भी सम्भव हो, करने वहाँ जा रहे थे। कल उस बात का पता दूसरों से ही लग जाने के कारण वह उसके बाप से मिलना बेकार समझ लौट आये थे। आज अनजान बन वह उससे बात करना चाहते थे।

उन्होंने बात छेड़ी ही थी कि उसके बाप ने कहा—“दादाजी, कल उसकी लगन पड़ गयी। पन्द्रहवें दिन बारात आयेगी।”

“क्या यह रिश्ता किसी तरह टूट नहीं सकता? हाँ, क्या नाम है... मुम्हारी लड़की का रिश्ता मैं एक बड़ी जगह लगाने की बात सोच रहा था।” दादा ने उसे भांपने की गरज से कहा।

“भला यह कैसे हो सकता है, दादा जी? शायद आपको मालूम नहीं कि शोभिया की मंगनी बारह-तेरह साल पहले ही मैं कर चुका था। इसका ब्याह भी कभी का हो गया होता, पर क्या बताऊँ कि एक-न-एक कारण से वह टलता गया। अब की सोचा, कि जैसे भी हो, इसको पार लगा दूँ। सयानी लड़की अपने घर चली जाय, तो मेरे कंधे का भार हल्का हो जाय।” उसने ऐसे कहा, जैसे वह उसके भार से दबा जा रहा हो।

“सोच लो तुम। मुझे तो तुम जानते ही हो। ऐसा-वैसा होता, तो कभी मैं तुम्हारे यहाँ न आता। मैंने सोचा, तुम्हारी लड़की बड़े घर पड़ जाय, तुम्हारा रिश्ता बड़ी जगह हो, तुम्हारी इज्जत बढ़ जाय। इसीलिये प्राया, कनै...” दादा ने उसके सामने एक लुकमा फेंका।

“दादाजी, बड़े हो कर भी आप ऐसी बात कर रहे हैं ? भला ऐसा भी कभी हुआ है हमारे खान्दान में ? गरीब हूँ, तो क्या हुआ ? खान्दान तो आप ही लोगों का है । आपकी और मेरी इज्जत बराबर है । भला आप ऐसा कैसे कह रहे हैं ? मंगनी ही तक होती, तो शायद कुछ सोचता भी, पर अब तो लगन भी पड़ गयी । अब वैसा कर नाक कैसे कटायी जा सकती है, दादा जी ?” गर्व की आभा अपनी आँखों से झलकाते उसने कहा ।

“मैं सोचता था, कि तुम्हारी लड़की वहाँ जा कर रानी बन जायगी । उसी की खुशी का ख्याल कर क्या तुम...” दादा ने दूसरा लुकमा फेका ।

“यह तो लड़की का भाग्य जाने, दादा । मुझसे जो हुआ, मैंने उसके लिये किया । अब भला इतनी दूर जाकर लौटा ही कैसे जा सकता है । छोड़िये, दादाजी, ये बात । पिता के लिये लड़की का सुख बड़ी बात होता है । इस तरह लोभ में डाल मुझे भूठा बनाने की आप कोशिश न कीजिये । मेरी जगह पर जरा आप अपने को रख कर देखिये न ?” उसने जैसे कुछ उलझ कर कहा ।

मछली ने चारा देख लिया है । शायद...शायद...दादा ने जैसे उसकी बात सुनी ही न हो, वैसे कहा—“तुम्हारी लड़की उसे देख चुकी है । वह उसे बहुत पसन्द करती है । उसके घर जाकर वह बहुत खुश होगी ।”

“दादा जी?” आँखें लाल कर वह बोला—“ऐसी बात मुह से न निकालिये ! शोमिया मेरी बेटी है । उसके बारे में ऐसा कुछ सुनने के पहले ही मैं उसका गला घोट दूँगा !”

उसकी बात सुन कर दादा घबरा गये । तीर का निशाना गलत पड़ गया था । उन्होंने बात सँभालने की गरज से कहा—“मेरा वैसा कुछ मतलब न था । तुम्हारी बेटी क्या मेरी बेटी नहीं है ? ऐसा न समझता, तो यहाँ आता ही क्यों ?”

उनकी बात सुन वह जैसे अपने ही पर शरमा गया। बोला—क्षमा,, कीजियेगा, दादाजी। मैंने समझा....,,

“नहीं, नहीं, भाई,” आवाज मुलायम कर वह बोले—“मुझे तो सिर्फ शोभिया का ही ख्याल था।”

“जो भी हो, दादा, आप लोगो के आशीर्वाद से वह वहां भी खुश ही रहेगी। लड़की का क्या, जिस खूटे से बाध दो, चुपचाप गाय की तरह पड़ी रहेगी।”

“नही भाई, वंसा होता, तो क्या बात थी। मेरा तो ख्याल है, कि शोभिया वहां घुट-घुट कर मर जायगी। जिस लड़के की बात मैं तुम से कर रहा हूं, उससे वह कई बार मिल भी चुकी है। सच तो यह है, कि वह दोनों एक-दूसरे से प्रेम...”

“दादाजी”

बीच ही मैं उसे रोक कर वह बोले—“यह मत भूलो कि शोभिया को मैं भी अपनी बेटी की ही तरह मानता हूं। जो सुन कर, तुम्हारा चेहरा तमतमा उठता है, उसे मैं भी तुम्हारी तरह अनुभव करता हूं। मगर वह कोई गैर की तो बात नहीं। ... इज्जत हमारे-तुम्हारे हाथों में सुरक्षित है, इसका ख्याल न भूलो !”

दादा ने तनिक रुक कर जमीदाराना दाव-पेच से उसे हृत्थे पर चढाते कहा—“मामला यहा तक न बढ़ गया होता, तो मैं तुम्हारे पास न आता। अगर अब भी तुम न संभले, तो शोभिया की जिन्दगी बरबाद हो जायगी। ठंडे दिल से ज़रा सोचो तो !”

एक अजीब दुविधा में पड़ गया वह। यही बात किसी और ने कही होती, तो वह उसकी जीभ खींच लेता। पर दादाजी से जैसे कुछ कहते ही न बन पड़ रहा हो। असमंजस में पड़ा ही वह बोला—“प्रेम-वेम की बात मेरी समझ के बाहर की बात है, दादाजी। मैं तो यही जानता हूं, कि अब कुछ दूसरा नहीं हो सकता। ओह, उसकी शादी में इतनी देर कर मैंने गलती की ! सच ही लोग कहते हैं, कि जिस घर सयानी

लड़की पड़ी रहती है, उसकी इज्जत हर गडी खतरे में रहती है। दादाजी, अब आप जाइये। मुझे अब आप और अधिक परेशान न कीजिये, वरना मैं पागल हो कर पता नहीं क्या कर बैठू। कौन है भला वह, जिसने इस तरह हमारी आखों में धूल भोंक कर हमारी इज्जत पर डाका डालने की कोशिश की है ?” कहते-कहते गुस्से के मारे उसके शरीर की बोटी-बोटी फड़कने लगी।

दादा ने मामला बिगड़ता देखा, तो रोब से उसे मुलभाने की सोच कर कहा—“उसका तुम कुछ बिगाड़ नहीं सकते। उसके पास इतनी शक्ति है, कि चाहे, तो यह लड़की क्या तुम्हारे घर को भी उठा कर अपने घर में बन्द कर दे। उस तरह की कोई बात तुम अपने दिमाग में न लाओ। पर मैं तुमसे यह कह देना चाहता हूँ, कि वह भी कुछ वैसा न करेगा। वह भी शरीफजादा है। जिससे इस तरह उसने प्रेम किया, उसे किसी भी तरह संसार में रुसवा करना वह नहीं चाहेगा। समझे ?”

“दादाजी, इस तरह आप मेरे धीरज को इतना न कसिये कि वह चरमरा कर टूट जाय। यह न भूलिये कि शोभिया का मैं बाप हूँ, तो अपने खानदान की इज्जत का रक्षक भी हूँ। अब चले जाइये यहाँ से। मैं अब कुछ भी आपसे सुनना नहीं चाहता। शोभिया की शादी वहीं होगी, वहीं होगी ! ब्रह्मा भी इसे टाल नहीं सकते !” कह कर ताब खा वह उठ खड़ा हुआ।

दादा के हाथ का तोता ही जैसे उड़ गया। किस तरह बात शुरू हुई, और-कहाँ आकर खत्म हुई। उन्होंने ऐसा सोचा न था। पर मामला कुछ ऐसा नाजुक था कि वह हर पहलू से उसे जांच लेना चाहते थे। वह जानते थे कि इस रिश्ते का टूटना असम्भव था। फिर भी शायद... इसी शायद के लिये उन्होंने शाम, दाम, दंड तीनों से काम लेने की सोच रखी थी। अन्त में कहा—“मेरी बातों को ज़रा गौर से फिर से सोचना। वह ब्याह का सारा खर्च भी अपनी ही तरफ से लगा सकता है।”

उसके आत्म-सम्मान के लिये यह एक ऐसी चोट थी, कि एक क्षण

को वह तिलमिला उठा। बोला—“दादाजी, आपको शायद मालूम नहीं, कि आप किसके सामने बातें कर रहे हैं। किसान हूं, गरीब हूं, आपका ताबेदार हूं, फिर भी रज़ूत हूँ। वह बाग-दादों का खून अब भी मेरी नसों में है। आप अब चले ही जाइये। मुझे कुछ नहीं सोचना है। मैं एक बार मोच चुका हूँ। अब किसी की हस्ती मुझे उस निश्चय से डिगा नहीं सकती !”

आते वक्त दादा के दिल में जो एक मिट्टी-सी आशा की धुंधली किरण थी, लौटते वक्त वह भी मिट गयी थी। अब अन्धकार-ही-अन्धकार रह गया था। दादा ने यह स्वप्न में भी न सोचा था, कि कभी ऐसे साधारण किसान से उन्हें इस तरह की बात करनी पड़ेगी, और उससे इस तरह का जवाब सुनना पड़ेगा। उनकी भलमनसाहत से सारा जवार पूर्णरूप से परिचित था। उन्होंने कभी ऐसा काम न किया था, जो अन्य जमींदारों के लिए आये दिन का काम होता है। अपना घर-बार छोड़ वह सदा के लिये बरन के ताल्लुके के एक तरह से सर्वेसर्वा हो गये थे। एक जमींदार के पूरे रोब से उन्होंने काम भी किया था, किन्तु कोई ऐसा काम उन्होंने न किया था, जिसे लोग जमींदारों का श्रृंगार समझते हैं। इसका मुख्य कारण यह था, कि वे स्वयं भी किसानों के ही घराने से आये थे। स्वभावतः उनके प्रति उनमें सहानुभूति थी। उनके दुख-दर्द और मजबूरियों को वह भली प्रकार समझते थे। किन्तु आज जिस संकटपूर्ण परिस्थिति में वे पड़ गये थे,, उससे छुटकारा पाने के लिये, जो-जो बात उन्होंने शोभिया के पिता से कही, वह किसी भी जमींदार के रोब से कम दबाव और शक्ति-परिचय की न थी। उनमें इस समय एक ऐसा भाव आ गया था, जो असीम विवशता की परिस्थिति में आदमी में आ जाता है। बरन के लिये वे इस मामले में किस सीमा तक जा सकते थे, इसका अन्दाजा उनके इस व्यवहार से ही लगाया जा सकता है। उनके दिमाग में अब एक ही उपाय इसका रह गया था। जिस बात का जिक्र उन्होंने शोभिया के पिता से रोब जमा कर, उसे

धमका कर काम निकालने के लिये किया था, उसका जवाब उसने उसी रोब से न दिया होता, तो शायद यह बात उनके मन में इतना जोर न पकड़ती। पर अब तो जैसे यह एक चुनौती-सी उन्हें लग रही थी। और इसी भावना से वशीभूत हो, वह इस समय वह भी करने को तैयार हो गये, जो उन्होंने अभी तक न किया था। इस समय उन्हें कोई देखता, तो उनकी मुद्रा से ऐसा झलकता कि वह एक ज़ालिम जमींदार से किसी भी मानी में कम नहीं।

सीधे बरन के कमरे में जा, उसके सामने वह कुर्सी पर बैठे, तो बरन आगम-तृर्भी पर लेटा गालिब का एक संग्रह पढ़ रहा था। दादा को सामने बैठा समझ उसने आँखें उठायी, तो उसने देखा, कि दादा एक बिल्कुल बदले हुए इन्सान थे। वह सीधापन, स्नेह-ममता, दयालुता उनमें इस समय ढूँढ़े से भी नहीं मिल सकती थी। उनके तमतमायें चेहरे, लाल-लाल आँखों और काँपती मूँछों को वह एक क्षण देखता ही रह गया। यह आकस्मिक आश्चर्यजनक परिवर्तन उसकी समझ में न आया। दादा को उसने इस रूप में कभी न देखा था। उसने सोचा, कि शायद उसकी यह हालत देख कर ही वह वैसे हो गये हैं। जो भी हो, वह क्या कर सकता है? वह मजबूर है अपने दिल से। वह सिर झुका पूर्ववत् किताब के पन्ने में उलझ गया।

“बेटा !” दादा ने आँखें फाड़ कर कहा—“तुम फिक्र न करो ! वह लड़की यहाँ आयेगी !”

“आयेगी ?” बरन की सूखी, उदास आँखों में एक चमक-सी झलक गयी।

“हां, बेटा, वह अब जरूर आयेगी ! मैंने चाहा था, कि सीधे तरीके से वह यहाँ आ जाय। पर वैसे हो नहीं सका। अब वह आयेगी क्या, लायी जायेगी टेढ़े तरीके से ! तुम्हारा टूटा दिल मैं किसी भी हालत में नहीं देख सकता ! जो काम जीवन में मैंने कभी न किया, अब तुम्हारे

लिये कहूँगा ! देखे, किसकी हस्ती है, जो उसे यहां आने से अब रोकता है !”

बरन की आंखों में आयी चमक की झलक लुप्त हो गयी । एक विकृत मुस्कान उसके अधरो पर उभर आयी । उसने धीमे, सूखे स्वर में कहा—
 “दादा, जिसे मैंने प्राणों से भी अधिक चाहा, वह मेरे घर में इस तरह आये, यह मैं कैसे चाहूँगा ? दुनिया की नज़रों से बचा कर जिसे अपने हृदय में बसाया, छिपे-छिपे प्यार किया, जिस पर अपना सर्वस्व वार दिया, उसे ही निर्लज्जतापूर्वक दुनिया की घूरती आंखों के सामने इस तरह आप मेरे सामने एक लूट की भाँटा की तरह लाकर रखें, यह मैं कैसे सन्देह कर सकता हूँ ? समाज में उसका जी भी स्थान हो, मेरी आंखों के सामने उसका स्तब्ध एक राजकुमारी से कम नहीं । एक राजकुमारी को सरेआम बदनामी का केन्द्र बनाया जाय, यह मैं कैसे सहन कर सकता हूँ ? जिसे मेरे प्रेम के नाजुक से नाजुक धागों ने जन्म-जन्मांतर के लिये बाँध कर मेरे साथ उसका एक अटूट, कोमल सम्बन्ध कायम कर दिया है, उस पर ही अपना जोर दिखा कर मैं अपने को कैसे मुह दिखा सकूँगा ? दुनिया में हर चीज़ पर जोर चल सकता है, दादा, प्रेम पर नहीं । प्रेम तो वह कोमल भावना है, जो एक हरका लगा नहीं, फिटूट जाता है । एक प्रेमी उसे किस तरह संभाल कर अपने हृदय में रखता है, इसे एक प्रेमी ही समझ सकता है । आप इस तरह की बातें कर मेरे दुखे दिल को और न दुखाइये, दादा ! आप मेरे लिये अन्धे होकर अपने उज्ज्वल नाम पर कलक न लगायें । जिस प्रेम ने मेरी हालत ऐसी कर दी है, वही प्रेम इसे धीरे-धीरे ठीक भी कर देगा । प्रेम जहाँ एक घातक रोग है, वही जीवन के लिये मर्जी-वनी भी है, यह बात धीरे-धीरे मेरी समझ में उतरती जा रही है । मेरी व्यथा का वेग अभी पहाड़ से गिरने वाली नदी की तरह है । धीरे-धीरे जिस तरह मैदान में उतर कर नदी का वेग मद्धिम हो जाता है, उसी तरह उसका वेग भी ज्यों-ज्यों समय बीतता जायगा, कम होता जायगा । ऐसा अनुभव मुझे कल और आज के फर्क से होता है । और मुझे

जगता है, कि एक समय वह भी आधगा, जब मुझे इस व्यथा की हल्की लहरों में वही आनन्द आयागा, जो धीमी-धीमी पड़ती वर्षा की बौछार में स्नान करने पर आता है। दादा, आप मेरी चिन्ता कर पागल न बनें ! मुझे मेरे हाल पर छोड़ आप पूर्ववत् अपना काम करते रहें !” कह कर वह फिर किताब पढ़ने लगा ।

दादा की समझ में उसकी बातें न आयीं । फिर भी इतना तो उन्होंने समझ ही लिया कि उनका उपाय उसे मान्य नहीं और धीरे-धीरे कर वह ठीक हो जायगा । उनके बावले हृदय को इस तरह एक शक्तिशाली आधार मिल गया । वह वहाँ से उठ कर चले गये ।

उनके जाने के बाद बरन को अपनी उन बातों का ख्याल आया, जो उसने अभी-अभी उनसे कही थी । उसे स्वयं पर आश्चर्य हुआ कि कैसे कैसे वह उनसे क्या-क्या कह गया । एक भोंक में उसने क्या सच कहा था, क्या झूठ, इसकी छान-बीन करने में वह स्वयं असमर्थ था । उसकी उन बातों में अधिकतर वही बातें थी, जो उसने किताबों में पढ़ी थी । अपने अनुभवों को शब्द-रूप देने की ताब ही अभी उसमें कहाँ थी । इन बातों के पीछे सबसे शक्तिशाली भावना जो थी, वह यह थी, कि किसी तरह दादा की बेचैनी दूर हो जाय । वरना बरन पर जो बीत रही थी, वह वही जानता था । फिर भी उसकी उपचेतना में जो दादा का ख्याल था, उससे वशीभूत हो वह एक बेहोशी की-सी हालत में अपने मस्तिष्क में न जाने कब की इकत्रित हुई बातों को बक गया । यह कैसे कहा जा सकता है, कि वह शोभिया को पाना नहीं चाहता । रात भर में ही वह एक साधारण युवक प्रेमी से दार्शनिक बन गया, इस पर किसे विश्वास हो सकता है । पर, हाँ, इतना जरूर था, कि वह उसे उस तरह पाना नहीं चाहता था, जिस तरह दादा चाहते थे ।

१०

जो भी हो, जब रात होती, तो अनजाने तौर पर ही वह मन-ही-मन कुछ प्रसन्न मालूम होता। सदा की तरह जब दुनिया नींद की खामोश गोद में सिर दुबका आँखें मूढ़ लेती, जब चारों ओर प्रकृति सन्नाटे का काला आवरण ओढ़ सब-कुछ अपने में समेट लेती, जब हवा की सांस धीमी हो जाती, जब आकाश के तारे अलसा अलसा कर झपकी लेने लगते, तब वह आहिस्ते से अपने बिस्तर से उठता। हमेशा की तरह कपड़े बदलता। और बेआवाज कदम रखते कोठी के बाहर हो जाता। उसकी आज्ञानुसार घोड़ा वहाँ हमेशा तैयार मिलता था। उस पर चढ़ कर अपनी मुलाकात के स्थान की ओर चल देता।

जब तक वह वहाँ न पहुँच जाता, उसके अन्दर बराबर एक आवाज उठती रहती, 'आज वह जरूर आयी होगी, आज वह जरूर आयी होगी !' पर वहाँ पहुँच कर अंधेरे में आँखें फाड़-फाड़ कर देखने पर भी जब कोई कही दिखायी न देता तो वह निराश हो धीरज खा बैठता। वहाँ की ज़मीन,, पत्थर के टुकड़ों, दूबों के चप्पो, पेड़ों की जड़ों को हसरत-भरी नज़रों से वह घूर-घूर कर देखता। वे चीज़ें मूक वाणी में जैसे अपनी-अपनी अतीत की कहानियाँ चुपके-चुपके उसे सुनाती। बरन के घायल हृदय के टाँके टूट जाते। अरमानों का खून आँखों से टप-टप चूने लगता। आहत प्यार आहों का धुआँ बन सांसों में कराह-कराह उठता। वह उन चीज़ों पर अपने कापते ह्वाथ वैसे ही फेरता, जैसे शोभिया के कोमल बाजुओं पर एक समय वह फेरा करता था। उन चीज़ों पर वह वैसे ही अपना गाल रखता, जैसे कभी शोभिया के नरम गाल पर वह रखा करता था। उन चीज़ों पर वह अपने थरथराते, भीगे होट वैसे ही रखता, जैसे वह कभी शोभिया के गरम-गरम, प्यार-विह्वल होंठों पर रखा करता था। उसे पता न लगता, कि वैसे करते-करते उसका मुखड़ा और वे चीज़ें उसकी आँखों से बहती अश्रु-धाराओं से नहा जातीं। कभी-कभी

अपनी व्यथा में खोया-खोया ही किसी भीगी जड़ पर अपने भीने गाल रखे होंठो-ही-होंठो में, अस्पष्ट स्वरो में जैसे हृदय की सारी विकलता को शोभिया तक पहुँचाने के लिये ही वह बोल पड़ता—“शोभी ! शोभी !” उस वक्त सारा वातावरण जैसे कहरा में डूब उसके हृदय की पुकारों को प्रतिध्वनित कर उठता । पेड़ों के पत्तों में सिहरन-सी हो उठती, हवा के शान्त पंख काँप-काँप उठते, अन्धकार की दीवारें हिल-हिल जाती, ज़मीन लरज़ जाती, आसमान से कई तारे टूट-टूट कर गिर पड़ते । वह व्यथा के गहरे सागर में कुछ देर के लिये जैसे डूबकी लगा जाता ।

अब उसे समय का भी ज्ञान न रहता था । कभी-कभी वहाँ पड़े-पड़े उसे बहुत देर हो जाती, तो वह अकचका कर उठ पड़ता । उन चीज़ों से वैसे ही विदा लेता और वैसे ही कदमों से लौट पड़ता ।

दादा की बातों के कारण शोभी के पिता ने उस पर और भी कड़ी पाबन्दी लगा दी थी । उसकी और बरन की अवस्था में अगर कोई फर्क था, तो यही कि बरन को अपने दर्दों को बहलाने की स्वतन्त्रता थी और बेचारी शोभी को अपने ही में घुट-घुट कर रात-दिनों गमों को खाना और आसुओं को पीना पड़ता था । उसकी दशा उस पखी की थी, जो घोंसले से निकल अपने जीवन में पहली बार मुक्त आकाश में उड़ान भरे और सय्याद के पिंजड़े में जा फँसे । आकाश के विस्तार की वह पहली झलक, जो हृदय में समा ही न रही हो, वह मुक्त सुनीलता का सौन्दर्य, जिससे आँखें चमकृत हो गयी हो, वह खुले वातावरण का अवर्णनीय आनन्द, जिससे रोम-रोम पुलकित हो उठा हो ! पिंजड़े की सीखचों से फड़फड़ाते पखों को टकराते, पखी के दिल व दिमाग पर एक पागलपन-सा ला वह सब याद आते, और वह चीख-चीख उठता, कराह-कराह उठता । काश, उसके पखों में ताकत होती ! सीखचों में गर्दन फँसा कर बेचैनी से आँखें फाड़-फाड़, नचा-नचा बाहर देखने का प्रयत्न करता, कि उस विस्तृत आकाश का एक टुकड़ा ही सही, उस मुक्त सुनीलता की एक झलक ही

सही, उस अवर्णनीय आनन्द का एक अंश ही सही, उसे दिखायी पड़ जाय । पर कहां, कहाँ ?

काले-काले पहाड़-से दिन भी आखिर बीतते ही थे । अब वह दिन करीब है, जब शोभी के द्वार पर शहनायी बजेगी, सखियां गीत गायगी । बरन की छटपटाहट और भी बढ़ गयी । विकलता का वेग और भी जोर पकड़ गया । तो क्या शोभी जाने के पहले उससे एक बार मिलेगी भी नहीं ? जिसने उस पर अपने प्राण न्यौछावर किये, उसके खून बहाते प्राणों पर वह एक बार अपना कोमल हाथ भी न फेरेगी ? जिसने जीवन के आखिरी क्षण तक साथ देने के वायदे किये, उसे पहिली मजिल पर ही अकेले छोड़ते समय, उससे तसल्ली के दो शब्द भी वह न कहेगा ? शोभी ! शोभी ! इन आखो को देखो, इनके आसुओं को देखो, इन आसुओं का किसी की एक झलक, सिर्फ एक झलक पाने के लिये मचलना देखो ! शोभी, ये वही आखे हैं, जिनमे अपनी आखें डाल कर तुम कहा करती थी, 'जी मे आता है कि सिमट कर इन्ही आँखों में जा बैठूँ, और फिर कभी न निकलूँ !' शोभी, शोभी ! ये वे आखें आज रो रही हैं, तरस रही हैं ! शोभी, शोभी ! बस, एक बार, सिर्फ एक बार ! एक झलक, सिर्फ एक झलक !

वह शोभी की मजबूरियों को न समझता हो, ऐसी बात नहीं । फिर भी उसके प्रेम के असीम आवेश और निपट अन्धता की यह मांग थी । वह रोज उस स्थान पर जाता, घंटों यह जान कर भी उसकी प्रतीक्षा करता, कि वह नहीं आयेगी, चाह कर भी नहीं आ सकती । उसके वहां जाने का क्रम जैसे कभी न टूटता, उसकी प्रतीक्षा जैसे कभी खत्म न होती । बंसे करने ही से जैसे उसे एक अस्पष्ट सन्तोष-सा मिलता । कभी-कभी उस यह भी ब्याल आता कि शोभी भी उसी की तरह उसके लिये तड़पती होगी, बिलखती होगी । उस वक्त वह अपनी तड़पन जैसे भूल जाता और शोभी की तड़पन की कल्पना से ही तड़प-तड़प उठता । उसके

मन में यह भी उठता, कि जिस तरह वह उसकी एक झलक के लिये तरस रहा है, उसी तरह वह भी उसकी एक झलक के लिये छटपटा रही होगी। उस वक्त उसकी उस छटपटाहट का अनुभव कर वह सोचता, कि क्या अच्छा होता, कि वही उसे किसी तरह एक बार देख लेती। शोभी वहां आने से विवश है, पर वह तो कही भी आ-जा सकता है। क्यों न वही एक बार उसके घर की ओर चले। हो सकता है, कि शोभी उसकी राह में आंखें बिछाये किसी खिड़की में बैठी उसकी प्रतीक्षा कर रही हो।

खेतों में दोपहरी नाच रही थी। ज़मीन तप रही थी। और आसमान जल रहा था। दिशाये उड़नी हुई गर्म धूल के पदों से ढंक गयी थी। गर्म हवा अपनी लपटों के आँचल में जलती हुई धूल भर उसे चारों ओर उड़ाती हुई जैसे अग्नि-नृत्य कर रही थी। धूल के पदों से सूर्य अपनी ज्वाला-भरी आंखों से ज़मीन को घूर रहा था। कभी कोई प्यासा कौआ मूखे स्वर में का-का करता एक ओर में दूसरी ओर उड़ता चला जाता। गर्मी के मारे जीभ लपलपाते हुए हाफते सियार किसी शरण की खोज में जान की भी परवाह न कर कटे खेतों में भागते नज़र आ रहे थे। पगडंडिया सूनी पड़ी थी।

पगडंडी पर बरन का घोड़ा हाफता हुआ बढ़ा जा रहा था। उसका मुंह फेन से फचफचा रहा था। नथुने धौकनी की तरह फूल रहे थे। शरीर से पसीने की धारे बह रही थी। बरन का चेहरा भट्टी में तपाये ताँबे की तरह चमक रहा था। आंखें ऐसे चल रही थी, जैसे दहकते हुए दो कोयले हों। कपड़े को भी छेद कर लू की लपटें उसके शरीर को झुलस रही थी। पर जैसे उसे किसी बात का ज्ञान न हो। उसकी आंखें बस सामने टिकी हुई थी ऐसे, जैसे कोई अब सामने दीखा, अभी।

खेतों को पार कर घोड़ा धीमा हो गया। सामने शोभी का घर है। बरन का दिल धड़क रहा है। माथे से पसीने की धारे बह-बह कर उसकी

पलकों पर चू रही हैं। वह हथेलियों से रह-रह कर उन्हें पोंछ सामने ऐसे देख रहा है, जैसे हर अगले क्षण पर उसके प्राण निकल जाने की सम्भावना हो, फिर भी जैसे देखा बिना न रहा जाता हो।

वह सामने दरवाजे की बगल में बड़ी खिड़की है। उसके सीखचों के पीछे से दो नाचती हुई आँखें भ्रमण कर रही हैं। बरन का कलेजा धक से कर जाता है। पसीने से तर पलकें झपक जाती हैं। घोड़े की चाल और धीमी हो जाती है। सामने की आँखें और साफ दिखायी देने लगती हैं। सीखचों से सटा हुआ वह चेहरा है। यह वही चेहरा तो है, बिल्कुल वही, वही नक्शा, वही रंग...पर...पर उसके कन्धों पर वह किसके हाथ हैं, उसके माथे के ऊपर दोनों ओर ये उभरी-उभरी आँचल से ढँकी क्या चीजें हैं। बरन की खामोश नज़रे ऊपर उठी। यह साड़ी का किनारा पीछे की ओर घूम गया है। वह शायद किसी की गर्दन का ऊपरी भाग चमक रहा है। वह ठुड्डी, वह होठ, वह नाक, वह आँखें...बरन का शरीर जैसे सुन्न हो गया। आँखें काप गयीं। वही...वही तो है। उसके रूखे होठ यन्त्र की तरह हिले। अस्फुट स्वर निकला, 'शोभी !' सामने की आँखों की पुतलियाँ चमकी, फिर जैसे उन पर पानी का एक पर्दा गिर गया। बरन के गले के नीचे कुछ रह-रह कर उतरने लगा। आँखों के सामने धुधलका छाने लगा। सामने की खुली आँखों से बड़ी-बड़ी आसू की बूंदें टप-टप चूने लगीं। बरन की आँखें भर-भर बरसने लगी। चार फ़ैली, बरसती आँखें एक ही राह पर निश्चेष्ट-सी हो बिछ गयी। प्यार की बौछारें हुईं। हसरतो की आंधिया उड़ी। व्यथा के तूफ़ान उठे। शूलों की बिजलियाँ कड़की। फिर...फिर...खिड़की के पीछे के भीगे होठ तड़पे। स्वर कापा, 'बरन !' और फिर जैसे सब कुछ थर्रा उठा। जमीन कापी, आसमान लरजा। और एक काँपते हाथ ने आँचल उठा चेहरे को ढक दिया। फिर सब-कुछ गायब। चारों ओर अन्धकार। सब-कुछ शान्त। बरन की बरसती आँख नीचे झुकीं। खिड़की पर खड़ी एक बच्ची की मूरती आँखों ने जैसे एक चाबुक लगा उसे अपनी परिस्थिति के प्रति चैतन्य

कर दिया । जादू टूट गया । घोड़ा हॉफता खड़ा था । बरन की ऐड़ियां आप ही उसकी बगलो में छू गयी । फिर ...टा...टाप...

जिस एक भलक के लिये बरन तड़प रहा था, उसने उसके प्यास से जलते हृदय के लिये वही काम किया, जो जल की एक बूद एक प्यासे के लिये करती है । होटो पर ही सूख जाने वाली उस बूद ने प्यास की तीव्रता कितनी उग्र कर दी, जलन का ताप कितना अधिक बढ़ा दिया, पीने की इच्छा को कितनी भयंकरता से जगा दिया, इसका अनुमान लगाना सहज नहीं । और शोभी ? उसकी जाल में फंसी हिरनी की तरह देखती वे आखे ? पुतलियों में वह विवशता की छटपटाहट ? आसुओं में निरीह प्यार की बहती हुई वह धारा ? होंठों में व्यथा के आवेश की वह कँपकँपाहट ? चेहरे पर कुचले हुए अरमानों की वह छाया ? बढ़े हाथों में लिपट मिलने की मचलती हुई वह चाह ? आह ? बरन ने यह क्या किया ? आग पर जो राख की परत चढ़ रही थी, उसे क्यों फिर कुरेद कर धधका दिया ? क्यों वह वहाँ गया ही ? आह ! हृदय के चारुओं से खून बहने लगा । आँखों में व्यथा उबलने लगी । बेचैनी कराह उठी ।...

बरन ने करवट बदली, तो सुना, दादा पुकार रहे थे—“बेटा !” फिर उसे लगा, कि उसके माये पर उनके हाथ फिर रहे हैं । उफ, यह दादा हैं, कि उसकी बेचैनी को भी एक क्षण चैन नहीं देने देते ! उसने झुझला कर आँखें खोल दी ।

“तुम्हारा माथा जल रहा है, बेटा ! दिन में बाहर तो नहीं निकले थे ? कही लू का तो असर नहीं हो गया ?” बरन इधर दिनमें कभी बाहर न निकला था, इसलिये दिन भर वह उससे एक तरह से निश्चिन्त रहते थे ।

“नहीं दादा, तुम तो नाहक...” होंठों को चटपटाते उसने कहा—
“जरा पानी तो मँगवाओ ।”

दादा का माथा ठनका । पानी लाने के लिए नौकर से कहने गये तो उसे डाक्टर को बुलाने के लिये भेज, स्वयं पानी ले दौड़ते आये ।

पानी पीकर बरन निर्जीव सा बिस्तर पर गिर पड़ा । दादा ने उसका हाथ-पैर छुआ, तो सन्न-से रह गये । घबराये हुए दौड़ कर आम पकाने को कह वह फिर बरन के पास लौट आये ।

पानी की पट्टियां उसके सिर पर चढ़ाते-उतारते उनकी आँखें डाक्टर के लिये बार-बार दरवाजे की ओर उठ रही थी । उन्हें जैसे होल-सा हो रहा था । बरन बुखार में बूत बेहोश पड़ गया था ।

डाक्टर ने देख कर बताया, कि लू का असर है । वह दवा दे चला जाना चाहता था, पर दादा ने उसे जाने न दिया । उनकी परेशानी की हद न थी ।

चौबीस घंटे में एक क्षण के लिये भी बरन की आँखें न खुलीं, न दादा की बन्द हुईं । ज्वर की तीव्रता में भी बरन की आकुल आत्मा अपने असफल प्रेम की अंधेरी घाटियों में ही भटक रही थी । उसका अचेतन मस्तिष्क इस दशा में भी शोभी के ही आस-पास मँडरा रहा था । वह बेहोशी में बक रहा था—“शोभी, शोभी, क्या यह हमारा आखिरी मिलन था ? क्या इसके बाद हम फिर न मिलेंगे ? आह ! कैसे रहेंगे ये प्यार के बिछुड़े मेरे प्राण ?...शोभी, शोभी ! तुम रो रही हो ? ओह, मैं कैसा पागल हूँ, कि सब कुछ जान कर भी तुम्हारी शिकायत कर रहा हूँ ? मैं जानता हूँ, शोभी कि तुम भी मेरी तरह तड़प रही हो ! आह, तुम कितनी विवश हो, मैं कितना लाचार हूँ, कि हमारे प्यार की दुनिया उजड़ रही है, और पथरायी आँखों से देखने के सिवा हम कुछ नहीं कर सकते । हम बिछुड़न की इस घड़ी में गले मिल कर रो भी नहीं सकते ! ...आह, वे मीठे-मीठे सपने, आह वे सुन्दर-सुन्दर कल्पनायें क्या योंही बिखर जानूँ- वेने के लिये हमने अपने प्यार की सुखद नींद में, प्रेम के बेहोश क्षणों में अपने हृदय में उगायी थीं ?...नहीं, शोभी ! पर...

पर...आह, आह! हमें क्या मालूम था, शोभी, कि हमारा यह प्यार एक दिम...आह, यह आत्मा की व्याकुलता, यह हृदय का तड़पना, ...यह जिगर का कट-कट कर गिरना भी प्यार में होता है, हमें कहा मालूम था, शोभी ? पर आज ..आज एक प्यार के कारण पहलुओं में दर्द ने घर कर, सांसो मे आहो ने आग लगा कर, दिल मे पामाल हसरतों ने एक कभी न बुझने वाला शोला भड़का कर , बेचैनी ने आत्मा को भथ कर जैसे जिन्दगी को ही हमेशा-हमेशा के लिए मुश्किल कर दिया है ! यह जिन्दगी अब कैसे कटेगी, शोभी ? आह...आह”

बरन बड़बड़ाये जा रहा था और दादा की आखों से टप-टप आसू चू कर उसके बिखरे वालों में तिनको की तरह चमक-चमक कर खोये जा रहे थे । बरन को क्या मालूम कि वह होश मे ही दादा को बेचैन नहीं किये रहता, बेहोशी मे भी उन्हें चैन नहीं लेने देता । उसकी बातों को सुन कर, उसके प्राणों की बेकली का अन्दाजा लगा कर दादा का हृदय कचोट-कचोट कर रो पड़ रहा था । उनकी सासो से पीडाओं का धुआं उठ रहा था । ओह वह क्या करे, कि बरन की व्याकुलता को कल पड़ जाय ! वह छटपटा-छटपटा कर रह जाते ।

आखिर ज्वर एक-ब-एक उतरने लगा । बरन ने आँखें खोली । इधर-उधर कमजोर नज़रे फेकी । फिर धीरे-धीरे पलके मूद ली । डाक्टर ने देख कर दादा से कहा—“जैसे बुखार चढ़ा था, वैसे ही तेज़ी से अब उतर जायगा । कल सुबह तक ये बिलकुल ठीक हो जायंगे । एक-दो खुराक दवा, ये जग, तो दे दीजियेगा । बरना इन्हें आराम से सोने दे ।”

दादा का दिमाग अब जाके ठिकाने आया । वे प्यार से बरन के मुखडे पर हाथ फेरने लगे ।

११

अब दादा बरन के साथ साये की तरह रहने लगे । एक बार उससे निश्चिन्त हो वह काफी भूगत चके थे । पता नहीं, लौंडा अब क्या

कर बैठे। बरन उनकी उपस्थिति से बेहद घबराता था। वह अकेलापन चाहता था, कि अपने दुखे दिल की भड़ास आजादी से निकाल सके। वह अपने से न जाने चुप-चुप कितनी बातें करना चाहता था। वह शोभी को न जाने दिल की क्या-क्या सुनाना चाहता था, उससे न जाने दिल की क्या-क्या सुनना चाहता था। वह रोना चाहता था। वह बिलख-बिलख कर, तड़प-तड़प कर अपने हृदय की कुठित व्यथा को आहों में बहामा चाहता था। पर दादा... उफ ! वह जैसे उनकी उपस्थिति में घुट-घुट कर रह जाता।

दिन तो किसी तरह कट जाता। पर रात ! शाम ही से उसे लगता कि वह स्थान उसे पुकार रहा है। वहा की हर चीज उसे पुकार रही है। वे चीजें जैसे कह रही हैं, 'कितने दिन हो गये तुमसे मिले ? क्या तुम हमें भूल गये ? देखो, देखो, शोभी वहाँ बैठती थी। इन दूबों की नोकों को सिर झुकाये यों टुंगती थी। इन कंकड़ों को खोयी-खोयी, हाथ से उठा कर यों फेंकती थी। इन सूखे पत्तों को तुम्हारी ओर मुग्ध हो देखती हुई तुम्हारी मर्दन पर यों फेरती थी। इस तने के पीछे छिप कर तुम्हें कैसे एक बार छकाया था ! कभी-कभी रुठ कर वह कैसे उस जड़ पर मुह फेर कर जा बैठती थी ? बरन, यहा की हर चीज में शोभी की एक याद है, हर चीज से उसकी एक-न-एक अदा का सम्बन्ध है। यहां की ज़मीन का हर कण उसके तलुवों के महावर से रंगीन है। यहां की हवा की सहरो में अब भी उसकी सांसों की सुगन्ध है। यहा के हर पत्थर के टुकड़े में तुम लोगों के प्यार की धड़कने हैं। यहाँ के वातावरण में अब भी तुम लोगों की प्यार-भरी, मीठी-मीठी, कटी-अधकटी बातों की फुसफुसाहट भरी है। बरन, आओ, आओ ! हम रोज तुम्हारा इन्तज़ार करती हैं। हम तुम्हारे दुखे दिल पर शोभी के हाथ फेरेंगे ! हम तुम्हारे कानों में उसकी प्यार-भरी बातें गुनगुनायेंगे ! हम तुम्हें शोभी की गोदी में थपकी दे-दे सुलायेंगे। आओ, आओ ! बरन, हमारे पास आओ !' ^

बरन का हृदय वहाँ जाने को छटपटा उठता। वह बेकाबू हो कर दादा

से कहता—“दादा, तबीयत घबरा रही है। चारा एक बार सैर कर आऊं तो कैसा ?”

“चलो, बेटा मैं घूमा लाऊं,” दादा भोले बन कहते।

“मैं अकेले जाना चाहता हूँ, दादा !” बरन भुंभला कर कहता।

“बेटा, तुम्हें कहीं जाने से मैंने कभी रोका है ? तुम्हारी तबीयत खराब है। अभी तुम बहुत कमजोर हो। डाक्टर ने आराम करने की राय दी है। इस हालत में मैं अकेले तुम्हें कसे जाने दूँ। कहीं...नहीं, नहीं, बेटा, यह नहीं हो सकता !” सिर हिलाते घबरा कर दादा कहते।

“दादा !” गुस्सा हो कर वह पुकारता।

“थो मुझ पर न बिगड़ो, बेटा ; दादा पर रहम करो ! नहीं तो लो मेरा गला दबा दो, फिर जो जी चाहे, करो।” दादा गिड़गड़ा कर अपना सिर उसके सामने झुका देते।

बरन जैसे कुछ कड़वा घूट पी कर करवट बदल लेता। वहाँ जैसे वह इतना विवश हो जाता है, कि कहा नहीं जाता।...

रात करवटे लेते बिता देता। एक क्षण को भी जैसे चैन न आता। पर आज ? आज डोर कट जायगी। पतंग जाने कहा उड़ जायगी। बरन आसमान में ताकता रह जायगा।

आज बरन की बेचैनी सहन-शक्ति की सीमाये तोड़ देना चाहती है। व्यथा के सागर में तूफान उठ रहा है। हृदय-कूलों से उसकी लहरें टकरा-टकरा कर उसे अपने में आत्मसात कर लेना चाहती है। आँखों में आँसुओं की नदी उमड़-उमड़ पड़ती है। हर तरह बेकाबू हो रहा है बरन। दीवार से सिर टकरा देना चाहता है। बालों को नोच डालना चाहता है। हृदय को छाती से निकाल ज़मीन पर पटक देना चाहता है। वह खत्म कर देना चाहता है, यह दर्द, यह बेकली, यह छटपटहट, यह जलन, यह चुभन-हमेशा के लिये, हमेशा के लिये !

पर दादा ?

नहीं, आज दादा उसकी राह नहीं रोक सकते ! कोई उसकी राह नहीं रोक सकता ! आज उसके जी में जो भी आयेगा, वह करेगा ! आज वह किसी का बन्धन न मानेगा ! आज वह मुक्त है, हर प्रकार से मुक्त !

सन्ध्या का झुकना था, कि बरन उछल कर खड़ा होगया, और चीख कर बोला—“दादा, मेरा घोड़ा तैयार कराओ !”

दादा सन्नाटे में आ गये । उनका कलेजा मुंह को आ गया । बहुत कोशिश कर भी आज वह उमसे आखे मिलाने की ताब न ला सके । वह धडकता दिल लिये कमरे के बाहर हो गये ।

बरन की वह मुद्रा ! उसकी वह आखे ! हे भगवान्, आज क्या होने वाला है ? दादा बरन के घोड़े को सामने तीर की तरह जाने देख दहल गये । उनके शरीर की बोटी-बोटी काँप उठी । व्यस्त-से हो उन्होंने अपना घोड़ा लाने के लिये नौकर को पुकारा ।

वहाँ की हर चीज ने अपना-अपना हाथ ऐसे फैला दिया, जैसे उनका कोई बहुत दिनों का बिछुड़ा प्यारा उनसे गले मिलने लपकता हुआ आ रहा हो । बरन उनसे मिल कर बिलख-बिलख कर रो पड़ा । वहाँ की हर चीज बिलख-बिलख कर रो पड़ी । रोते-ही-रोते उसने हर चीज को काँपते काँपते हाथों से छुआ, जैसे हर चीज से वह पूछना चाहता हो, ‘शोभी आयी थी ?’ आँसू टप-टप चू रहे थे । वे चीजें उन्हें अपने हृदय में संभाल-संभाल कर रख लेती थी ।

सहसा हवा की लहरों पर तैरती हुई शहनाई की ध्वनि ने आ कर वहाँ की हर चीज पर बिजली गिरा दी । तो...तो...बरन को लगा, जैसे एक तीर उसके सीने में चुभा जा रहा हो । उसका हृदय डूबने लगा । सिर चक्कर खाने लगा । पैर लड़खड़ाने लगे । शरीर बेकाबू हो गया । बह गिर पड़ा । अन्धकार, चारों ओर अन्धकार ! चीजें हसरत-भरी आँखों से उसकी ओर देखती रह गयीं । आह, क्या यह वही बरन है, हर वक्त मुस्कराता, मस्ती में झूमता ? आह, वह यौवन, वह सौन्दर्य, वह प्यार !

आह, बरन ! आह प्रेम ! आह शोभी ?...

ए बलबल, तेरे बाग में बहार आयी है, फिर भी तू क्यों उदास है ?
ए बलबल, तेरे बाग का फूल खिलखिला कर मस्त हो-हो झूम रहा है, फिर भी तू क्यों ठण्डी सासे ले रही है ? ए बलबल, तेरे बाग में धीमी-धीमी, खुशबू में बसी हवा तेरी खुशियों का सन्देश लेकर आ रही है, फिर भी तू क्यों रो रही है ? ए बलबल फूलों से लदी डाल पर तेरे सुहाग का खुशनुमा आशियाना सजाया जा रहा है, फिर भी तू क्यों बिलख रही है ? ए बलबल, तेरे अरमानों की कलियों को खिलाने के लिये तेरे सपनों का पीतम...

पीतम ? दुलहिन शोभी जैसे बेहोशी में सहसा चौक उठी । उसे चारों ओर से घेरे खड़ी, चुहल करती सखिया उसकी चौक देख नाचती आँखों से एक-दूसरे का मुह ताकने लगी ।

‘नहीं, नहीं, यह मेरा पीतम नहीं ? मेरा पीतम तो...’ शोभी का हृदय एक बेआवाज स्वर में चीखा उठा । उसने धूर-धूर कर हर ओर खड़ी अपनी सखियों की ओर देखा । उनकी उपस्थिति से वह कट कर रह गयी । वह इस वक्त अकेलापन चाहती थी, नितान्त अकेलापन, जिसमें वह अपने दिल के फफोले फोड़ सके । पर सखियाँ ? उन्हें क्या मालूम कि शोभी का बेकल दिल किस दुनिया में चक्कर काट रहा है । उनकी छेड़ फिर शुरू हो गयी ।

शोभी के दिल के ऐंठते तार टूटते-से लगे । उसके मस्तिष्क की रंग कसती-कसती टूटने की सीमा पर आ पहुँची । जोर दे-दे कर दबायी गयी व्यथा ज्वालामुखी की तरह जैसे फूट पड़ने के बिन्दु पर आ पहुँची । उसके बौखलाये जी में आया कि वह चुनरी खोल कर उनके मुँह पर दे मारे, गहनों को नोच-नाच कर ज़मीन पर पटक दे, बालों की चोटियों को उखाड़-उखाड़ कर फेंक दे, आँखों के काजल को पोंछ दे, हाथों की मेंहदी को धूल में रगड़ दे, फिर... फिर यह सिर फशं पर इतने जोर से पटक दे, कि... कि...

आह, बरन ! आह प्रेम ! आह शोभी ?...

ए बुलबुल, तेरे बाग में बहार आयी है, फिर भी तू क्यों उदाम है ?
ए बुलबुल, तेरे बाग का फूल खिलखिला कर मस्त हो-हो झूम रहा है, फिर भी तू क्यों ठण्डी सासे ले रही है ? ए बुलबुल, तेरे बाग में धीमी-धीमी, खुशबू में बसी हवा तेरी खुशियों का सन्देश लेकर आ रही है, फिर भी तू क्यों रो रही है ? ए बुलबुल फूलों से नदी डाल पर तेरे मुहाग का खुशनुमा आशियाना सजाया जा रहा है, फिर भी तू क्यों बिलख रही है ? ए बुलबुल, तेरे अरमानों की कलियों को खिलाने के लिये तेरे सपनों का पीतम...

पीतम ? दुलहिन शोभी जैसे बेहोशी में सहमा चौक उठी । उसे चारों ओर से घेरे खड़ी, चुहल करती सखिया उसकी चौक देख नाचती आँखों से एक-दूसरे का मुह ताकने लगी ।

‘नहीं, नहीं, यह मेरा पीतम नहीं ? मेरा पीतम तो...’ शोभी का हृदय एक बेआवाज स्वर में चीखा उठा । उसने धूर-धूर कर हर ओर खड़ी अपनी सखियों की ओर देखा । उनकी उपस्थिति से वह कट कर रह गयी । वह इस वक्त अकेलापन चाहती थी, नितान्त अकेलापन, जिसमें वह अपने दिल के फफोले फोड़ सके । पर सखियाँ ? उन्हें क्या मालूम कि शोभी का बेकल दिल किस दुनिया में चक्कर काट रहा है । उनकी छेड़ फिर शुरू हो गयी ।

शोभी के दिल के ऐंठने तार टूटते-से लगे । उसके मस्तिष्क की रंगें कसती-कसती टूटने की सीमा पर आ पहुँची । जोर दे-दे कर दबायी गयी व्यथा ज्वालामुखी की तरह जैसे फूट पड़ने के बिन्दु पर आ पहुँची । उसके बौखलाये जी में आया कि वह चुनरी खोल कर उनके मुँह पर दे मारे, गहनों को नोच-नाच कर जमीन पर पटक दे, बालों की चोटियों को उखाड़-उखाड़ कर फेंक दे, आँखों के काजल को पोछ दे, हाथों की मेहदी को धूल में गड़ दे, फिर... फिर यह सिर फर्श पर इतने जोर से पटक दे, कि... कि...

आखिर एक सखी ने उसका परेशान मुखड़ा देख कर कहा—
“दुलहिन थक गयी है। अब इसे आराम करने दिया जाय।”

जाती हुई सखियों में से एक ने मुड़ कर शरारत-भरी मुस्कान होठों पर नचाते हुए मटकी मार कर गुन-गुनाया—

‘जानू, मे जानू, सखी री, काह बसे तोरे नैना ?

खरे ओट मे हिय के तोरे पीतम मारे सैना ।’

और उँगली धिरा कर भाग गयी ।

शोभी होंठों में ही मुनमुनाई, ‘खरे...ओट...मे ..हिय...के...तोरे ...पीतम...मारे...सैना...', पीतम हिय में तो है, पर सैना ? उसके होंठों पर एक विकृत मुस्कान उभर आई । आँखों में आँसू चमक उठे । ‘क्या सचमुच मेरे पीतम सैन मार रहे हैं ? पर कहा से ? और उसे लगा, जैसे उसके प्राण उसे राह दिखाते छन में ही उसे ले कर उस स्थान पर पहुँच गये । वहाँ उसने देखा, उसके पीतम उसकी प्रतीक्षा में आँखें बिछाये बैठे हैं । उसके हृदय में एक हूँक उठ पड़ी । ओह, ओह ! उसके पीतम वहाँ बैठे उसकी राह ताक रहे हैं, और वह...नहीं, नहीं ! यह नहीं हो सकता ! वह जरूर जायगी ! आज वह रुक नहीं सकती ! यह उसे बुला रहे हैं !

तडपती आँखों से उसने सन्नाटे में आ अपने चारों ओर देखा । खुशी के नशे में चूर हो कर घर बेफिक्री की नीद सो रहा था । कोई कही लुढ़का पड़ा था, कोई कही । किसी को होश न था । बस, सांसों की धर-धर आवाजें आ रही थी ।

वह उठी । साँसों को रोक कर, बेआवाज कदम रखती, धड़कतै दिल को हाथों से भीचे वह इधर-उधर खामोश नज़रे फेकती दरवाज़े की ओर बढ़ी । सहसा कुछ खडक उठा ।

होश उड़ गये । पैर लड़खड़ा उठे । कलेजा धक कर गया । एक चूहा उसके पास से गुज़र गया । होश संभल गया । पीछे देखते उसने धीरे से दरवाज़ा खोला । अँधेरे में लेटी पगडंडी ने जैसे खड़ी हो, हाथ

फैला कर कहा, 'आओ, आओ ! मैं तुम्हें पहुँचा दूँ, तुम्हारे पीतम के पास !' चौखट पर पैर रखते एक बार उसका साहस लड़खड़ा उठा । पर चाह ने जोर मारा । उसने आँखें मूंद कर पैर बढ़ा दिया ।

धीरे-धीरे उसकी चाल बढ़ती गयी । वह दौड़ने लगी । उसकी तेज चाल और तेज होने लगी । उसे किसी बात की अब सुध न थी । उसका शरीर जैसे फूल की तरह उड़ा जा रहा था । उसके प्राण जैसे खींचे लिये जा रहे थे ।

बरन को लगा, जैसे कोई भरी चीज उसके शरीर पर आ गिरी है । उसके मस्तिष्क के सोये तारों में कपकपाहट हुई । पलकों में हरकत हुई । धीरे-धीरे आँखें खुली । अन्दर का अन्धकार जैसे बाहर फैलने लगा । शरीर के पोर-पोर में एक दर्द-सा महसूस हुआ । उसने उठने की कोशिश की । सिर उठाया । आँखें उठी । अरे... और जैसे उसकी आँखों में चाँद-सितारे चमक उठे । यन्त्र की तरह उठ उसने बेसुध पड़ी शोभी को बाहों में सिमेट लिया । विकल प्राण फूट पड़े—“शोभी !”

घुंटे गले से अस्पष्ट आवाज़ आयी—“बरन !” रुलाई उमड़ पड़ी । उमने निचला होठ दाँतो में दबाया । और बिलखती हुई बरन की छाती में मुह गड़ा दिया ।

बिछुड़े हुए मिले थे । मुदत का दबा प्यार, दबी चाह, दबी व्यथा, दबी विवशताये, दबी बातें आज मुक्त हो हृदय के किनारों को तोड़-फोड़ कर आँखों से बाढ़ की तरह उमड़ पड़ी ।

ए हवा, तू क्षण भर को रुक जा ! ए वृक्षां, तुम क्षण भर के लिये खड़े ही सो जाओ ! ए अन्धकार, तू क्षण भर के लिये अपना मुह ढँक ले ! ए आसमान के तारों, तुम क्षण भर के लिये अपनी आँखें मूंद लो । ए समय, तू क्षण भर को ठहर जा ! जाने कब के प्यार के बिछुड़े आज मिले हैं ! इन्हें मिल लेने दो ! यह इनका आगिनी मित्र है, यह इनकी

आखिरी बिछुड़न होगी ! देखो, देखो, कहीं से कोई बाधा न पहुँचे, कोई बाधा न पहुँचे !

शरीर से शरीर मिले, आँखें रो पड़ी। प्राण से प्राण मिले, हृदय तड़प उठे। आत्मा से आत्मा मिली, होश जाते रहे। एक आनन्द का हिलोरे लेता सागर, गले में बाहे डाले, बेसुध-से लहरों पर भूला भूलते एक प्रेमी और एक प्रेमिका ! प्रेम और आनन्द और फिर आनन्द ही आनन्द ! आनन्द का ऐसा नशा, जो हजारों बोतल वारुणी पीने पर भी उसकी सीमा को न छू सके। नन्दन वन का मलय पवन भूम रहा है। पारिजात की कोमल डालियाँ फूलों की वर्षा कर रही हैं। शरद की पूनों का चाद अमृत के घड़े ढरका रहा है। जमीन बेसुध हो भूम रही है। आसमान बेहोश हो नाच रहा है। ससार का कण-कण हर्ष-विह्वल हो थिरक रहा है। क्षणों पर युग न्यूँछावर हो रहा है। जिन्दगिया कुरबान हो रही हैं। स्वर्ग की अमरता मुह ताक रही है। और फिर फिर सब-कुछ शान्त सब कुछ निस्पन्द। फिर अन्धकार, एक बेहोशी अन्धकार ! और और फिर जैसे सूरज चमक उठा।

बेहोशी को होश आ गया। कितनी ही घूरती हुई आँखें अन्धकार में उभर पड़ी। काश, यह होश न आता ! काश, ये आँखें न खुलती !

“बरन !” आहो में लिपटा हुआ स्वर।

“शोभी !” आकुलता में कापती हुई आवाज।

फिर दो विकल प्राण एक-दूसरे से ऐसे लिपट गये, जैसे एक दूसरे में हमेशा-हमेशा के लिये समा जाना चाहते हो। फिर आसुओं में भीगी हुई गरम-गरम सासे, आँखों से बहती हुई तड़पती आसू की धाराये।

“शोभी !” एक शब्द में एक जीवन की कहानी !

“बरन !” एक शब्द में एक प्रेम की कहानी !

जीवन और प्रेम की एक कहानी खत्म हो रही है ! आह, शोभी ! आह बरन ! आह, यौवन ! आह, प्रेम !

काँपते हाथ पीठ पर फिर रहे हैं। गले के पास भीगी हुई गरम साँस बोल रही है—“शोभी, तुम्हारे बिना मैं कैसे जीऊँगा ?”

फटता हुआ हृदय कह रहा है : : : : : बरन, ऐसा न कहो !”

हाथ आसू पोछ रहे हैं। और आँसू जैसे हाथों का स्पर्श पा उमड़े पड़ रहे हैं।

ठंडी हवा कह रही है, कि रात अपने पीतम से बिछुड़ने जा रही है। पर ये कैसे बिछुड़े ? फिर न जाने कब मिलेगे प्यार के बिछुड़े ?

शोभी उठ खड़ी हुई। हृदय में व्यथा जल रही थी, आँखों से वेदना भर रही थी। दाँतों से दबे होठ फडक रहे थे। ओह, वह कैसे पैर उठाये ?

बरन की झुकी आँखें बेसुध-सी बरस रही थी। हृदय को कुछ मथ रहा था ! मस्तिष्क फट रहा था। ओह, वह कैसे आँखें उठा शोभी को जाते देखे ?

“बरन !” चीखती-सी शोभी ने अपने मचलते हाथ बढा दिये।

“शोभी ?” बरन बाहों में बंध गया। शोभी बांहों में बंध गयी।

“जाओ, शोभी, जाओ ! जल्दी चली जाओ ! नहीं तो यह दिल की तड़प...नहीं, तुम जल्दी चली जाओ, शोभी, जल्दी...”

शोभी जा रही है। दूबों के आचल पर उसकी आँखों से गिरते मोती तारों-से चमक रहे हैं।

हवा सिसकिया भर रही है। पेड़ों के पत्ते आँसुओं की तरह भर रहे हैं। आसमान रो रहा है। पर बरन की पथराई आँखों के आसू जाने क्यों सूख गये हैं।

१२

बरन की आँखें खुली, तो वह अकचका-सा गया। बेहोशी में भी जैसे उसकी आत्मा के काले पर्दे पर रात के ही दृश्य चल-फिर रहे थे। अब

खुली आँखों के सामने जो एक भिन्न दृश्य दिखाई दिया, तो सहसा उसके उनीचे-से मस्तिष्क के लिये अपने को सन्तुलित कर लेना कठिन हो गया। सामने दादा की परछाई को ही लक्ष्य कर वह ऐसे चीख पड़ा, जैसे कोई पानी में डूबा हुआ आदमी सहसा सिर बाहर उठ जाने पर चीख उठता है।

दादा ने उसके सिर को अपनी गोद में रख उसके उत्तप्त ललाट को सहलाते कहा —“होश करो, बेटा। मैं वहाँ वक्त पर न पहुँचता, तो जाने कब तक तुम वहाँ उस अवस्था में पड़े रहते। गयी बातों को इस तरह दिल पर नहीं लेते, बेटा। समझ लो कि यह तुम्हारी जिन्दगी की एक लम्बी रात थी, जिसमें नींद की गोद में सोये-सोये तुमने कितने ही सुनहले सपने देखे। और अब तुम्हारी जिन्दगी की सुबह हुई है। रात खत्म हो गयी। नींद टूट गयी। सपने बिखर गये। अब दिन का उजाला फैल रहा है। इस प्रकाश का स्वागत करो। बिखरे सपनों को इकट्ठा कर जीवन का आधार उसी तरह नहीं बनाया जा सकता, जैसे टूटे प्याले को जोड़ कर उमगे पानी गट्टी मियाँ ज़ा गुमना। यह प्रकाश तुम्हें नव-जीवन देगा ! यह तुम्हारे हृदय के अन्धकार को दूर कर एक नयी राह दिखायेगा। इस राह पर चल कर भी तुम देखोगे कि यहाँ भी कम रस नहीं, कम आनन्द नहीं ! तूफान में ही नौका की शक्ति की परीक्षा होती है। तूफान पार कर उन्मत्त नौका, नया विश्वास आता है। फिर तो उसमें जीवन की वह अदम्यता आ जाती है, कि तूफानों की उसे परवाह नहीं होती ! वह हर हालत में लहरों से खेलती दिखायी देती है। इसी तरह समझ लो, कि एक तूफान आया और तुम्हारे जीवन को किभोड़ कर चला गया। किन्तु जीवन की जड़े इतनी शक्तिहीन नहीं कि उखड़ जायँ ! वह अपनी जगह पर कायम हैं। वह पुनः पृथ्वी से रस ले सारे शरीर को हरा-भरा कर देगी। नव पल्लव फूटेंगे। नयी कलियों से डाले गुलजार होगी। बहार की हवा आयेगी। जीवन पुनः आनन्द-विभोर हो भूम उठेगा !”

निराशा की अन्तिम सीमा पर पहुँच कर सब मुर्दा जीवन में सास फूकता है। अँधेरे में प्रकाश की किरणें फूटती हैं। नयी आशाओं के अकुर छिन्न-भिन्न हृदय के धरातल पर सिर उठाते हैं। विरह-व्यथा करवटे बदलती है और हर करवट पर उसका जाल सिकुड़ता जाता है। सिकुड़ते-सिकुड़ते हृदय के किसी कोने में वह एक बिन्दु बन कर रह जाती है, उस बिन्दु को ही लोग नासूर कहते हैं। उस नासूर पर हाथ रखे प्रेम का बीमार ठंडी सासे लेता विस्तर से उठता है। नये जीवन की राह पर पैर बढ़ाता है। नासूर पर समय पपड़ियों की परतें जमाता है। नासूर की चुभन धीरे-धीरे कम होती है। और एक ऐसा वक्त आता है, कि वह हृदय की गहराइयों में खो-सा जाता है। बीमार अपने को स्वस्थ समझ जीवन का नया ताना-बाना बुनने लगता है। पर कभी-कभी अकेले में रात के मूने क्षणों में, भूले से सहसा जब उसे कुछ याद आ जाता है, तो जैसे नासूर पर चढ़ी पपड़ियों की परतें चर्चा उठती हैं और वह कलेजा धाम कर आह-आह कर उठता है। कभी-कभी वह इस अवस्था में चुपके चुपके रोता भी है, और चुपके-चुपके गुनगुनाता भी है।

“भुलगा रहा हूँ मुहब्बत की आग में ‘बहुजाद’

किमी न शाला- सा दिल में लगा क छोड़ दिया !”

तब वह अकेलेपन से घबराता है। रात के मूने क्षणों से खबरता है। वह चाहता है, कि वह किसी-न-किसी ख्याल से इस तरह बिरा रहे, उसके दिल और दिमाग दुनिया की हलचलो में इस तरह व्यस्त रहे, कि वे परेशान करने वाली याद भूले से भी न आयें, उस दबे हुए नासूर को गलती से भी हरकान न लगे। वह हर तरह से बे बात भूल जाने की चेष्टा करता है, जिनके याद आने से एक व्यथा, एक तड़प, एक छटपटाहट के सिवा कुछ भी हाथ नहीं लगता। अपनी जिन्दगी का मोह ही उसे ऐसा करने को विवश करता है। वह उन व्यर्थ की व्यथाओं में घुल-घुल कर जिन्दगी खत्म कर देने से डरता है। फिर भी वह कितना विवश होता है, कि वे परेशान करने वाली यादें उसके लाख प्रयत्न करने पर भी उसका पीछा नहीं छोड़ती। तब वह उजड़ी बस्ती की याद भुलाने के लिये

एक नयी धस्ती बसाने की सोचता है। हृदय के उजड़े उपवन में नये फूलों के पौदे लगाने की सोचता है, कि शायद नये फूलों से उपवन गुलजार हो जाने पर उजड़े उपवन की स्मृतियाँ नीचे दब जाय, या कम से कम उस पर एक ऐसा आवरण पड़ जाय, जो आँखों को, हृदय को मस्तिष्क को अपने आकर्षण, अपनी रगीनी में ही उलझा ले, उसे उठा कर उसके नीचे छिपे उजड़े उपवन को देखने का मौका न दे। फिर भी जिस मिट्टी में वे नये फूल उगते हैं, उस मिट्टी में पहले के गिर कर सूखे फूलों की तासीर न हो, यह बात कौन कह सकता है। आदमी अपने को लाख बहलाने की चेष्टा क्यों न करे, पर वे यादे आती हैं, भूल-भूल कर भी आती हैं। भुलाने के हर प्रयत्न में उभर-उभर कर आती हैं, और आदमी को तड़पा जाती हैं, रला जाती हैं। बरन की अब करीब-करीब बड़ी दशा थी।

पहले झटके को बरन पार तो कर गया था, पर उसकी दशा अब उस वृक्ष की थी, जिसे पतझड़ वीरान कर जाता है। वृक्ष बसन्त आने पर पुनः लहलहा उठता है। पर बरन के जीवन में पुनः बसन्त आयेगा यह कौन जाने !

बादा की स्नेह-भरी अपकियों ने बरन की जीने की अन्तर्वृत्तियों को धीरे-धीरे उभारा। समय ने उसके जख्मों पर धीरे-धीरे मरहम लगायी। पहाड़ की छाती तोड़ती-फोड़ती नदी की बहने वाली धारा जैसे मैदान में उतर कर मन्द-मन्द गति से बहने लगती है, उसी तरह बरन की व्यथा के आवेग भी धीरे-धीरे शिथिल पड़ने लगे। वह अब स्वयं भी अपने को संभालने में तत्पर रहने लगा। कभी-कभी पीड़ाओं की घटाये बिरखीं, तौ रो कर, तड़प कर, उन्हें हटा देता। फिर जीवन की हलचलों में अपने को खो देने की कोशिश करता। इस द्वन्द में जीवन का पल्ला धीरे-धीरे जैसे-जैसे भारी होने लगा, वह संभलता गया।

बादा ने उसके दिल-बहलाव के लिए उस पुराने वातावरण से, जिसके कण-कण में बरन के असफल प्रेम के बिखरे हुए सपने बसे थे, कुछ

दिन तक हटा देने की बात सोच एक दिन उससे कहा—बेटा, क्यों नहीं कही से घूम-फिर आते ? नयी जगह पर मन भी बहलेगा, तुम्हारा स्वास्थ्य भी सुधरेगा ।”

बरन भी आज-कल यही सोच रहा था । उसने हामी भर दी । उसके बाहर जाने की तैयारियाँ होने लगीं ।

बाहर जाने की बात जितनी आसान बरन ने समझी थी, वैसी न थी । ज्यो-ज्यो दिन समीप आते गये, उसके दिल में एक नयी तरह की कसक उभरने लगी । उसे अब लगने लगा, कि वह वातावरण, जिसमें उसका प्यार उगा, बढ़ा, पला, फूला फला, और एक दिन अचानक जल कर राख हो गया, यो आसानी से नहीं छोड़ा जा सकता । उसे लगा कि उसके जीवन की प्यारी निधि लुट जाने पर अब उसकी बिखरी समृतियाँ भी कम प्यारी नहीं । उन्हें छोड़ कर भला बह कैसे जा सकता है ? उस वातावरण का मोह हृदय से कैसे निकाला जा सकता है, जिससे उसकी जिन्दगी के सबसे मीठे, सबसे प्यारे दिनों का सम्बन्ध है, जिससे उसके जीवन के सबसे कड़े, सबसे दुखदाई दिनों का नाता है ? नहीं नहीं, यहाँ से बिछुड़ कर तो वह और भी शून्य, निर्जीव हो जायगा । कुछ नहीं तो यहाँ के वीरान खंडहरों में किसी की याद तो है ! जिस महल में रहकर उसने जीवन के सबसे मधुर सुख का स्वाद पाया, अब उसके खंड-हरों को छोड़ दे ? नहीं, नहीं, यह नहीं हो सकता !

उस दिन उसकी सोई हुई पीर जाग गयी । दादा से अपने मिस्त्रब के बारे में अभी कुछ न कह उसने सईस से घोड़ा तैयार करने को कहा । कपड़े बदल, गुनगुनाता हुआ वह कमरे से निकल पड़ा—‘फिर मुझे ले चला वही जौके-नज़र को क्या करूँ...’

यह वही पगडण्डी है, जिससे होकर कभी वह अपनी शोभी से मिलने जाया करता था । उस वक्त उसके हृदय में कितना उत्साह, कितनी उमंग

रहती थी ! पर आज ? आज तो जैसे इन कटे खेतों ही की तरह उसका हृदय वीरान हो गया है । चलते-चलते उसे वे सब बातें याद आयी, क से लेकर ज तक, जैसे एक इतिहास ही खुल पड़ा हो उन पगडंडियों, उन खेतों की छाती पर । वे सन्ध्याये, वे रातें भी क्या थी ! पर आज ? उफ, आज तो जैसे कभी खत्म न होने वाली सन्ध्याओं और रातों की कालिमा गाढ़ा अन्धकार बन उसके जीवन के कण-कण पर हमेशा-हमेशा के लिये छा गयी है । वह क्या जानता था कि कभी जीवन में ये दिन भी आयेंगे । बेचारी शोभी ! कबूतरी-सी बिरीह, बच्चे-सी भोली-भाली शोभी ! आह उसके कोमल हृदय पर क्या गुजरा होगा ? कैसे काट रही होगी वह अपने दिन ?...उसका दिल भर आया । आखों से चुपके-चुपके आँसू की धाराय गालों पर बहने लगी । घोड़ा आप ही जैसे उसे उस स्थान को लिए जा रहा था, जहाँ कितनी ही बार वह अपने मालिक को सन्ध्या के झुटपुटे और रात के अँधेरे में ले जा चुका था । पर उसमें भी आज वह ताज़गी न थी । जैसे वह भी अपने मालिक की उदासी देख उदास हो गया था । उसकी आँखों में भी एक अजीब करुणा मिश्रित दुःख की छाया भलक रही थी ।

वहाँ पहुँच कर बरन की दशा वही हुई, जो एक आदमी की अपने किसी प्यारे की कब्र सामने देखकर होती है । वह अपने को सभाल पाने में असमर्थ हो, उस पेड़ के तने-से जा लिपटा, जिसके पीछे कभी उसमें और शोभी में लुका-छिपी हुआ करती थी । उसका हृदय उमड़ रहा था । आँखें बरस रही थी ।

हृदय की ऐंठती व्यथा आँसुओं की धारा में बहाकर कुछ ठंडा हुआ, तो करुणा-भरी हसरत की निगाह वहाँ हर चीज पर डाल, दुखते हृदय को हाथ से दबाये वह चल पड़ा ।

घोड़ा आप ही धीरे-धीरे चल रहा था । जैसे उसका मालिक अपने से बेखबर था, वैसे शायद वह भी अपने से बेखबर था । लेकिन

उसके पैर उसी पगड़री पर बढ रहे थे, जिमसे होकर अकमर वह वापस जाया करता था ।

सन्ध्या का धुंधलका तेज्जी से गाढा हो रहा था । खेतो मे खिंची पगड़ियों की रेखाये मिट रही थी । कही-कहीं इक्के-दुक्के चलते आदमी काले-काले हिलते धब्बो से दिखायी पड रहे थे । हवा बन्द थी । वातावरण जैसे थक कर शान्त हो गया था । किसी-किसी ओर से मोट की चर-चर, फिर पानी गिरने की हहर-हहर आवाज चारो ओर छापी शातता को रह-रह कर एक बँधे, एकरम स्वर से जैसे और भी ऊबा देने वाली बना रही थी । नन्हे-नन्हे गन्नो की अलसायी क्यारियो मे कहीं-कहीं किसान मेड पर बैठे पानी का भरना देव रहे थे । कही-कही चैन का बीज डालने के लिए खाली खेत को पानी से भर रहे थे । आसमान के तारे बुझे हुए कोयलों की तरह बेआब हो काली राख के दामन मे स्थिर पडे हुए थे ।

सामने हाथ मे दिया लिये ओसारे मे किसी को आते देख बरन चौक-सा गया । क्षण भर मे ही जान गया कि वह शोभी के घर के सामने से गुजर रहा है । दिये वाले हाथ से होकर उसकी नज़र उसके चेहरे की ओर लपक पड़ी । वह धक से हो गया । उसके सूखे होठो पर शब्द काँप गया, 'शोभी !'

वही चेहरा, वही आँखें ! उसकी आँखें नीचे झुकी । नहीं-नहीं । यह तो.....यह तो वही है, जा उस दिन जगले पर खड़ी थी, जिसके कन्धो पर हाथ रखे शोभी पीछे खड़ी थी । ओफ, क्या हो गया है बरन को ? हर लड़की उसको शाभी ही-जैसी क्यो दिखायी देती है ? पर नहीं, नहीं ! आँखें फिर उठी । वह ताक पर दिया रख रही थी । उसके चेहरे को तो देखो ! कौन कह सकता है, कि यह शोभी का चेहरा नहीं है ? पर.... पर कुछ अन्तर जरूर है । वह अन्तर केवल आकार का है, रूप का, प्रकार का नहीं । लगता है, जैसे शोभी की ही एक छोटी-सी मूर्ति रचकर कोई

कलाकार उसकी आँखों के सामने खड़ा कर गया हं। एक दिन यह मूर्ति बढ़कर क्या और उसे लगा, कि वह सहसा बड़ी हो गयी है और उसके सामने उसकी शोभी.....

‘ए-ए’ कहती-कहती बच्ची ओसारे की चीखट पर खड़ी हो ताली बजाने लगी ।

घोड़ा बिगड़ उठा । बरन की कल्पना की लड़िया टूटकर बिखर गयी । उसने घोड़े को सभालते उस बच्ची की ओर देखते घोड़े को आगे बढ़ाया । बच्ची की नाचती आँखों में खुशी की वही चमक बरन को दिखायी दी, जो उसने पहली बार खेत में खड़ी शोभी की आँखों में देखी थी । एक मुस्कान से उसके होठ फैल गये ।

बच्ची ताली बजाये जा रही थी और चीख-चीख कर कह रही थी—

“ए सवार घोड़े के ।

मुझसे एक-दो कोड़े ले ।”

और बरन के होठ फैले जा रहे थे । आँखों में एक रहस्यमय चमक उभरी जा रही थी । शायद यह शोभी की बहन है । पर...पर कितनी मिलती-जुलती है उससे !

बरन आज रोज़ से ज्यादा खाना खा गया । वह आज प्रसन्न भी दिखायी देता था । उसे देखकर दादा के हृदय से एक दुख का भार हटता सा लगा । पर क्या भरोसा बरन का ? अजीब स्वभाव है इसका ? विचित्र हृदय पाया है इसने ! बच्चों की तरह कुछ पाकर खुश हो जाता है, तो उसे खोकर उन्हीं की तरह रो भी उठता है । कब समझदार होगा यह ! कब गम्भीरता आयेगी इसके जीवन में ? परेशान करके रख दिया इसने !

रात गये हमेशा की तरह वह उसके सोने के कमरे में गये, तो आज उसे कोई किताब लेकर दिल बहलाते या बिस्तर पर बेताबी से करवटें बदलते न पाया । आज वह गहरी नीद में बेहोश-सा होकर सोया था ।

उसकी नींद में डूबी हुई मीठी सासों को देखकर दादा ने आराम की एक साँस ली। ओह, कितने दिनों बाद आज बरन सोया है इस तरह ! हे भगवान्, अब तू दया कर इस पर !

वह धीमे धीमे पग रखते कमरे से बाहर हो गये। आज उन्हें सब-कुछ बदला हुआ दीख रहा था। घर ने जैसे अपना मातमी आवरण उतारकर नया खुशी का रंग अपने पर चढ़ा लिया था। रात का अंधकार जो काला, भयकर रूप धारण कर उन्हें डराया करता था, आज कितना सुहावना लग रहा था। वह गरमी, जिससे परेशान हो वह रात भर छटपटाया करते थे, आज जैसे चन्दन की लेप बनकर उनके शरीर को शीतलता पहुँचा रही थी। काले आकाश में गरीबों की झोपड़ियों में उदास-उदास टिमटिमाते दीपों की तरह छिटके हुए तारे आज जैसे श्वेत पुष्पों की तरह खिल-खिल कर गहगह करते दिखायी पड़ रहे थे। आज दादा की खुशी की सीमा नहीं थी। और यही कारण था, कि आज बरन की सुखकर नींद ने उनकी आँखों की नींद चुरा ली थी। उन्हें नींद नाम को भी नहीं आ रही थी। वह बार-बार उठकर चुपके-चुपके बरन को सोते देख आया करते थे।

बरन स्वप्न-लोक में विचर रहा था—

उदाम बरन घोड़ा एक पेड़ के तने से बाध मन बहलाने के लिए एक उपवन में जा रहा है। फाटक पर खड़े हो वह सूखी आख उठाकर एक बार उपवन की ओर फेंकता है। उपवन की खिलखिलाते फूलों से गहगह करती क्यारियाँ उसके उदास मन को लुभा लेती हैं। लहकते हुए सज्जा-जार उसकी सूखी आँखों को ठंडक से भर देते हैं। मन्द-मन्द पवन में झूमती हुई लताएँ उसके हृदय की व्यथा हर, उस पर एक नशे की वर्षा कर देती हैं। खुशबू में बसी हुई ठंडी हवा उसके मुरझाये चेहरे पर अपने कोमल कर फेर उसे उत्फुल्ल कर देती है। बरन एक अवर्णनीय खुशी का अनुभव कर उपवन के अन्दर दौड़ पड़ता है।

हर्ष-विह्वल आँखों से देखता, एक नशे में खोया-सा वह लाताओं को हाथों में स्नेह भर सहलाता है, फूलों को गालों से स्पर्श करता है, होठों में प्यार भर कलियों को चूमता है, और सब्जाँजारों पर लोट-लोट उनमें मुँह छिपाता है। हवा उसके शरीर पर हाथ फिरा उसके सिर के बालों में उंगलियों की कधी कर जाती है। किसी झुरमुट में छिपी बैठी कोयल अपनी मधुर स्वर-लहरी उनके कानों में भर उसे हृदय-विभोर कर देती है। चारों ओर जैसे एक मस्ती का आलम है। एक नशा-सा छाया है वातावरण के कण-कण पर। झूम रहे हैं पेड़-पौदे मस्त होकर। भूल गया है बरन अपने को, अपनी व्यथाओं को, एकाकार हो गया है वह उस मस्ती में डूबी हुई फिजा की हर खुशी से झूमती हुई हर चीज के साथ।

सहसा जैसे कहीं बहुत दूर से अस्पष्ट-सी आवाज आती है—'ब
र...न !,

बरन चौक कर शब्द-दिशा की ओर ऐसे देखता है, जैसे यहाँ उसे किसी की पुकार की बात समझ में ही नहीं आती है।

पुकार की आवाज धीरे-धीरे पाम आती जाती है, धीरे-धीरे स्पष्ट होती जाती है। बरन की आँखें धीरे-धीरे फैलती जाती हैं उनकी पुतलियाँ धीरे-धीरे थिरकने लगती हैं, उनमें धीरे-धीरे चमक बढ़ने लगती है। उसका रोम-राम जैसे नींद में जगने-सा लगता है।

आवाज समीप आती है। बरन पहचान लेता है। यह शोभी की आवाज है। हर्ष के मारे उसका मुँह खुल जाता है। एक उत्फुल्ल मुस्कान चेहरे पर बिखर जाती है। सीमा तक फैली आँखों में चमक थिरक उठती है। हृदय नाच उठता है। वह अनियन्त्रित-सा उठकर आनन्द-विह्वल स्वर में चीख उठता है—'शोभी !'

आवाज आती है—'बरन !'

सामने के कुज की लताएँ हिलती हैं। बरन दोनों हाथ फैलाये विह्वल-सा घडकता हृदय लिये उधर लपक पड़ता है। लताओं से अपने

को छुड़ाकर शोभी अपने दोनों काँपते हाथ फैलाये उसके बाँहों में अर्ध-बन्धती है। जमाने के बिछुड़े मिल, आत्म-विभोर हो एक-दूसरे में श्रुत हो जाते हैं। आनन्द का अमृत-सागर लहरा उठता है।

हृदय से उमड़ कर हर्ष की धाराये आँखों से उद्दाम गति से बह रही हैं। बरन डूबा-सा ही शोभी की पीठ पर उगलियाँ फेरते कहता है—‘तुम मुझे छोड़कर चली गयी। मैं...मैं’

भरे गले से शोभी बोलती है—‘अब मैं तुमसे अलग न होऊँगी ! आज सब-कुछ छोड़कर तुम्हारे पास आयी हूँ। चलो, देर न करो ! मुझे दूर, बहुत दूर, कहीं ऐसी जगह ले चलो, जहाँ यहाँ की कोई बाधा हमारे-तुम्हारे बीच खड़ी न हो सके !’

‘सच कहती हो, शोभी !’ बरन पूछता है।

‘हा चलो, जल्दी करो ! अब एक क्षण भी खोना मैं नहीं चाहती !’ कहती हुई शोभी उसकी गोद से अलग हो उसका हाथ पकड़ लेती है।

शोभी को घोंड़े पर बैठा बरन उसके पीछे बैठ जाता है। उसकी ऐसे घोंड़े को छूती हैं, कि घोड़ा उड़ने लगता है। उसकी रफ्तार तेज, और तेज होने लगती है। नीचे जमीन बहुत दूर छूट जाती है। हवा में घोड़ा हवा की तरह उड़ने लगता है। शोभी का आचल पताके की तरह फरफरा रहा है। उसके लम्बे-लम्बे केश बिखर कर, लहरा-लहरा कर, बरन के कपोलों को छू-छू कर गुदगुदा रहे हैं। उसकी भीनी-भीनी मस्त करने वाली खुशबू से बरन पर एक नशा-सा छा रहा है।

घोड़ा ऊपर, और ऊपर होता जा रहा है। उसकी रफ्तार तेज, और तेज होती जा रही है। अब वह चाँद और तारों के देश से गुज़र रहे हैं। चाहे तो फल की तरह हाथ लपका कर तारों को तोड़ लें। शोभी खशी से बावली हो इधर-उधर देख रही है। उसकी आँखों में कितने ही तारे चमक रहे हैं। बरन मुग्ध-सा उसे देख रहा है। ओह, कितनी सुन्दर लग रही है शोभी इन तारों के देश में !

घोड़ा अब नीचे उतर रहा है उतनी ही तेजी से। सन्तुलन ठीक रखना कठिन हो रहा है बरन के लिये। वह शोभी को अपनी गोद में चिपकाये हुए है। दोनों की साँसें फूल रही हैं। आँखें बन्द हैं।

घोड़ा एक सागर के किनारे आकर खड़ा हो जाता है। लहरों का गर्जन सुन वे अपनी आँखें खोल देते हैं। विस्तार-हीन सागर को देख उन्हें लगता है, जैसे उसकी असीमता उनके नन्हे हृदय में समा ही न रही हो, जैसे उनका मस्तिष्क उसकी कोई रूप-रेखा अंकित कर लेने में असमर्थ हो। वे मुग्ध-से उस ओर देखते रह जाते हैं। क्षण-भर के लिये उसकी असीमता में खो से जाते हैं।

“यही वह देश है प्रिय, जहाँ प्रेमी और प्रेमिका की स्वतन्त्रता सागर की असीमता की ही तरह असीम है।” बरन कहता घोड़े से उतरता है। और हाथ बढ़ा शोभी को नीचे उतारता है।

घोड़ा फिर उड़ जाता है। बरन उसे उड़ते देख कर उसके ओझल हो जाने पर आँखें नीचे झुकाता है, तो उसके मुँह से एक चीख सी निकल जाती है। उसकी बगल में शोभी नहीं है। वहाँ वही नन्ही बच्ची ताली बजाती आँखों की पुतलियों को खुशी से नचाती गला फाड़-फाड़ कह रही है—

‘ए सवार घोड़े के !

मुझले एक-दो कोड़े ले ।’...

“बेटा ! बेटा !” अपने कमरे से बरन की चीख सुन भागते आ दादा ने उसके माथे पर हाथ रख कर कहा।

बरन ने अकचका कर आँखें खोल दी।

“क्या हुआ, बेटा, क्या हुआ ?” व्याकुल-से दादा बोले।

बरन ने माथे का पसीना पोंछ करबट ली। उभरी साँसें धीरे-धीरे कम हुईं। पूरे होश में आकर, सब कुछ समझ कर, कुनमना कर वह होठों

मे ही मुस्कराता बोला—“कुछ नही, दादा। एक सपना था, बड़ा सुन्दर, बड़ा मोहक ! :”

“ओह, मे तो परेशान होकर रह गया। में कहूँ...”

“जाओ दादा, सोओ ! मुझे नींद आ रही है।” कह कर बरन ने मुह तकिये में गड़ा लिया।

‘क्या अजीब है यह लौडा !’ होठो में ही कहते दादा कमरे से बाहर हो गये—‘किसी पल भी यह मुझे चैन न लेने देगा !’

पर बरन को उस रात नींद फिर न आयी। वह बच्ची बार-बार उसी रूप में उसकी आँखो के सामने उभर-उभर कर आती रही, और उसके पीछे शोभी की छाया डोलती रही डोलती रही। और बरन को रह-रह कर लगता, जैसे वह बच्ची शोभी की छाया में समाती जा रही है, समाती जा रही है !

१३

मुसराल में शोभी की दशा वही थी, जो एक पौदे की एक जगह से उखाड़ कर दूसरी जगह रोप देने पर होती है। पौदा वही मिट्टी, वही रस, वही हवा और वही धूप खोजता है, जिसमें वह उगा था, बढ़ा था। दूसरी जगह वह कहां मिलता है ? पौदा मुरझाने लगता है। शोभी भी यहाँ कुम्हला कर ही रह गयी। उसे अपना गाँव याद आता, घर याद आता, माँ याद आती, वे खेत याद आते और सब के ऊपर बरन याद आता, जिसने पहले-पहल उसे बताया था, कि प्रेम क्या है, और प्रेम का सुख कैसा होता है। और याद आती वे मुलाकाते, वे बातें, जिनसे हृदय की कलियाँ खिली थी, मन में प्यार की प्यास जगी थी। और फिर... फिर उसे लगता कि जैसे मा-बाप ने उसके जीवन के साथ एक षड्यन्त्र रचकर उसे हमेशा-हमेशा के लिये एक ऐसे जाल में उलझा दिया है, जिसमें छटपटाते-छटपटाते एक हिरनी की तरह वह एक दिन मर जायगी। शोभी वे बातें

याद कर रोती, सिसकती, सुबकती, ठंडी आंखें भरती । काश उसका वश होता, काश, उसके पर होते, तो वह उड़कर चली जाती और बरन की गोद में...

“भौजी ! भौजी !” उमंग में अपने लचकते शरीर की बांटी-बोटी नचाती ननद उसके पास आ खड़ी हुई. तो उसका मिर भुकाये सिसकना देख जैसे सौ मन की एक मन हो बोली—“यह क्या भौजी ? जब देखो, तब रोती ही रहती हो । आज तीन दिन हो गये तुमको आये, पर एक क्षण को जो तुम हंसी-बोली होती ? मेरे मन के लड़्डू मन में ही फूटकर बिखर गये, पर तुम...” उसके पास बैठ कर, उसका घूघट ऊपर उठा अपने आचल से उसकी आंखें पोछ वह फिर बोली—“भौजी, न जाने कितने दिनों में यह साध मेरे मन में बसी थी, कि जब मेरी भौजी आयेगी, तो उसके साथ यो हंसूंगी, यो बोलूंगी यो खेलूंगी, यो चुटकिया लूंगी, यो ‘यो’ ‘पर’ आह, भौजी. मुझे भौजी क्या मिली, एक पत्थर की मूरत मिल गयी, जो न हंसना जाने, न बोलना, बस चुप-चुप आंखों से आसू बहाया करे रात दिन ! नहीं नहीं, भौजी ! मेरी ओर देखो, मुझ से हमो बोलो ! मैं तुम्हारी सारी उदासी हर लूंगी । मेरी अच्छी भौजी !” कह कर शोभी के दोनों गाल अपनी दांठों हथेलियों में ले अपनी आंखों का स्नेह-रस जब उसने उसकी आंखों में हसरत-भरी नज़रों से देखते ढरका दिया, तो शोभी से भी न रहा गया । उसने बरबस ननद को खींच अपनी छाती से लगा लिया । ननद निहाल हो गयी । दुखिनी शोभी को ऐसा लगा जैसे इस एक सहारा मिल गया हो । पर उससे वह बोले क्या ? उससे वह कैसे बताये, कि सचमुच उसका हृदय टूट कर पत्थर ही हो गया है । उसमें जीवन का एक बूद भी रस शेष नहीं बचा है, जिससे वह हसे, बोले । पर ऐसी स्नेहमयी ननद का दिल भी वह कैसे नोड़े ?

मन पर बहुत जोर देकर वह उस दिन बोली भी और गुदगुदाने पर हंसी भी, पर ननद को क्या मालूम कि उस बोली, उस हंसी में कितनी

हसरतो का खून लिपटा था ! शोभी को स्वयं जो भी दुख हो, पर उसे अब उन दुखों की ज्वाला में जलते हुए भी एक दूसरे जीवन की नींव डालनी होगी, जो भले ही यान्त्रिक हो, भले ही जीवन के प्रति एक कटु व्यंग्य हो। इसके सिवा कोई चारा नहीं।

ननद ने उसकी गोद में सिर रखे, उसकी आँखों में अपनी खुशी से थिरकती आँखें डाल फुसफुसाहट के स्वर में कहा—भौजी, आज शाम को 'ककन' खुलेगा। तुम्हारी चोटी खुलेगी। और...और..." शर्म के मारे लाल हो गये मुखड़े को उसने शोभी के आँचल में छिपा लिया।

शोभी का हृदय धडक गया। आँखों की कांपती पुतलियों में बेबसी थर्रा उठी। तो. तो...

एक आँख आँचल से बाहर कर, शरमाती मुस्कान को अधरो में दबाती ननद फिर बोली—'भौजी, फिर तो तुम्हारी यह उदासी ऐसे छमन्तर हो जायगी, जैसे जादूगर के हाथ में रखी चीज !' और खिल-खिला कर हसती वह उसकी गोद से छिटक कर भाग खड़ी हुई। उसने यह भी न देखा, कि भौजी की आँखों में उस समय क्या था।

ननद ने जो-कुछ कहा था, अपनी जान में सच ही कहा था। यदि यह सच न होता, तो लड़कियाँ युवनी होकर, नितान्त पराये घर में जाकर उसे अपना कैम बना लेती ? अपने माँ-बाप, भाई-बहनो, सखी-सहेलियों, घर-द्वार, गाव-बस्ती को भुला कर, दूसरी जगह माया-ममता का जाल जो ये वहाँ जाते ही बुनने लगती हैं, क्या इसके पीछे वही बात काम नहीं करती, जो उसकी ननद ने कही थी ? साजन के प्रेम-पाश में बंधते ही, जैसे वे पुराने रिश्ते पट-पट टूट जाते हैं। प्रथम चुम्बन में ही जैसे वह अपना सब-कुछ न्योछावर कर देने को तैयार हो जाती हैं। और फिर प्रिय-मिलन में जो एक नया अवर्णनीय सुख उन्हें मिलता है, उसी की नींव पर नया सम्बन्ध, नया घर, नयी बातों की इमारत खड़ी होते कितनी देर लगती है ! तब तो जैसे वह सब-कुछ नया ही अपना हो जाता है।

और वह सब पुराना पराया । इस सम्बन्ध से अधिक शक्तिशाली सम्बन्ध संसार में कौन है, जो बचपन के सारे इतिहास को एक क्षण में मिटाकर, लड़कियों को जवानी की एक नयी कहानी शुरू करने को तैयार कर देता है । प्रेम बड़ी वस्तु है । इसलिये हर बड़ी वस्तु की तरह संसार में यह भी दुर्लभ है । किन्तु इसके अभाव में भी काम-सम्बन्ध कोई छोटी वस्तु नहीं । यही वह सम्बन्ध है, जिस पर लड़कियाँ मातृ-पतृ-भ्रातृ सम्बन्ध को भी सरलता से न्यौछावर कर एक नया संसार बसा लेती हैं । लड़कों के लिये तो कदाचित् यह लड़कियों से भी अधिक सरल होता है । तभी तो कोई पुत्र-स्नेही मा अपनी सखी से पहेली बुझाती कहती—

घूँघट काढ के पैठा सोर,
पहले छीना बेटा मोर,
फिर सम्पत पर धावा कीन्हा,
ता पाछे घरबो ले लिन्हा ।
मां-बाबा को पूछे कौन ?
बूभो, सखि, यह डाकू कौन ?

यह कोई साधारण पहेली नहीं है । इसके शब्द-शब्द में एक माता के दुखते हृदय की टीस करुणा की धारा बनकर फूटी है, जिससे उसकी पुत्र-वधू डाकू बनकर उसके पुत्र को छीन लिया है ।

काश, शोभी भी, एक नया संसार बसा पाती !

जिस कौमार्य का फूल अपने हृदय के देवता पर चढ़ाने के लिये उसने कितनी ही साधों से सजाकर रखा था, आज उसे किसी अन्य पर चढ़ाने के लिये विवश किया जायगा । शोभी क्या करे ? वह क्या कर सकती है ? आह, वह यहाँ आने के पहले ही मर क्यों न गई । आह, वह यहाँ आई ही क्यों ? शोभी जानती थी, कि ये प्रश्न जब वह अपने घर पर थी, तब भी उसके मस्तिष्क में उठे थे । इनके उत्तर वह उस समय क्या दे सकी थी, जो आज देती ? डूबते को तिनके का सहारा होता है । शोभी के लिये क्या यही कम था, कि वह जब तक जियेगी, बरन को देख तो

सकेगी। जिसे जी कर नहीं पाया, उसे मर कर वह कैसे खो दे ? अपढ, गवार, गाव की युवती शोभी का ससार-परिचय स्थूलता की सीमा के ही अन्दर था। उसे पार कर और कुछ देखने की शक्ति उसमें न थी। आत्मा और परलोक के मिलन की बातें वह क्या जाने। इस शरीर के माध्यम से उसने जो कुछ भी बरन से चाहा था, पाया था। उस पाने में जो सुख, आनन्द की अनुभूति उसे हुई थी, वह अप्रतिम थी। वह उसे किसी और से प्राप्त हो सकेगी, ऐसा कभी उसके ख्याल में न आता था। वह तो सिर्फ यही जानती थी कि बरन उसके मन को भा गया है, वह उसके दिल में बस गया है, इसलिए उसके स्पर्श, आलिङ्गन, चुम्बन से उसे एक अद्भुत आनन्द मिलता है। उसके देखने में यही प्रेम है। बरन के सामने न कोई दूसरा उसके मन को भायेगा, न उसके दिल में बस सकेगा और न उसे वह आनन्द ही मिलेगा। इसी कारण बरन से बिछुड़ कर वह व्यथा से छटपटाती है, रोती है, बिल-खती है। कई बार उसके मन में आया जरूर है कि इस असह्य पीड़ा से मुक्ति पाने के लिये क्यों न वह किसी कुएं-पोखरे में कूद कर जान दे दे। पर दूसरे ही क्षण उसने यह भी सोचा है कि इस पीड़ा से मर कर वह मुक्त तो हो जायगी, पर पीड़ा-मुक्ति ही सुख प्राप्ति तो नहीं है। वह तो सुख चाहती है, वही मुख, जो उसे केवल बरन से ही मिल सकता है। आज वह विवश है, तो क्या हुआ ? वह जीती रहेगी, बरन जीता रहेगा, तो उसे उससे क्या न मिल सकेगा ? शोभी के लिये यही आशा सब-कुछ थी। प्रेम पवित्रता चाहता है, समर्पण और उत्सर्ग चाहता है, त्याग और बलिदान चाहता है, यह वह क्या जाने।

उसने कभी सोचा था कि जब उनका प्रेम सफल होगा, जब वह दुल्हन बन कर बरन के घर में उतरेगी, और जब उसकी सोहागरात आयेगी, तो वह किस तरह बावली हो जायगी। पर आज.....आज उसकी सोहागरात आ गयी है, और वह.....

उसका मन रो रहा है, हृदय तडप रहा है, पर शरीर ? वह जानती है, कि उसके शरीर पर उसके पति का पूरा अधिकार है । वह जैसा चाहेगा, उसका उपयोग करेगा । वह उसे रोक नहीं सकती, वह विवश है ॥ वह उसके शरीर को स्पर्श करेगा, उसके अङ्गों को चूमेगा, उसे आलिंगन में बाँधेगा और.....और न जाने क्या-क्या करेगा । उसका वह स्पर्श, वह चुम्बन, वह आलिंगन शोभी कैसे सहेगी ? और उसे लगता है, कि जैसे वैसा करते समय उसके हाथ उसका मुँह नोंच लेने को तडप उठेंगे । पर नहीं, वह इन हाथों को कब्जे में रखेगी । वह हृदय पर पत्थर रखकर इस शरीर को समर्पित कर देगी । वह करे, जो चाहे करे इस शरीर के साथ ।

पर मन नहीं मानता । हृदय विद्रोह करना चाहता है । ओह शोभी क्या करे ? उस घड़ी कैसे वह अपने मन को वश में रखेगी, कैसे हृदय को मँभालेगी ? जिम बात को शोभी जितनी आसान समझती थी, वह आज अक्सर अपने पर उतनी ही कठिन हो गयी । आज उम्र मालूम हुआ, कि शरीर में मन और हृदय का भी सम्बन्ध है । मन और हृदय की इच्छा के विरुद्ध यह शरीर किसी को कैसे सौंपा जा सकता है ? वह इस मन को क्या करे, हृदय को क्या करे, जिसके कण-कण में बरन की मोहिनी मूरत बसी हुई है ? वह कैसे इनको शरीर से निकाल कर कहीं रख दे, कि शरीर बेदिल और बेमन का हो जाय, और उसे एक लकड़ी के कुन्दे की तरह पति को समर्पित कर दिया जाय । काश, यह उसके वश में होता, तो इन्हे निकालकर वह एक डिबिया में बन्द कर रख देती, जब तक वह यहाँ से लौटकर फिर अपने घर न आती । पर यह हो नहीं सकता । फिर.....फिर ?

घड़ी समीप आती जा रही है । पर शोभी की उलझन सुलझने में नहीं आती । कोई राह नहीं है, कोई उपाय नहीं है । बरन को याद कर वह रोमी बिलखी । पति का ख्याल कर वह भय में काँप-काँप गयी ।

घर में रात का स-नाटा धीरे-धीरे गहरा हो गया। सब का खाना-पीना हो चुका था। ननद ने शोभी का खाना उसके सामने रखकर कहा—“भूख तो तुम्हें लगी न होगी। फिर भी लो, मुंह तो जूठा ही कर लो।” फिर उसके कान के पास मुंह ले जाकर धीरे से गुनगुना कर कहा—“सजनि, तनि धीरज धरू, तोरे आते होंगे चितचोर!” कहकर उसने उसका बूँट उठा उसका शर्म से लाल हो आया मुखड़ा देखना चाहा, पर वह यह देख कर ठक हो गयी कि उसका मुखड़ा पहले से भी सफेद और भावहीन था। उसकी आँखों की उदासी और भी गहरी हो गयी थी। उसने उसके बाजुओं को पकड़, उसे झुकभोरते हुए कहा—“भौजी ! भौजी ! यह तुम्हें क्या हो गया है ? आज तुम्हारी मुहागरान है और तुम...यह क्या हो गया है तुम्हें ? तबीयत तो ठीक है न ?”

उसकी बात सुन शोभी की रुलाई उमड़ पड़ना चाहने लगी। पर वह जानती थी कि इस अवसर पर उसकी आँखों में आँसू झलके नहीं, कि एक आफत खड़ी हो जायेगी। वह अपने को रोककर किसी तरह बोली—“कुछ नहीं, रानी। तबीयत ठीक है। मुझे ज़रा भय लग रहा है।”

ननद खिलखिला कर हस पड़ी। हाथ से कौर उठा शोभी के मुह के पास ले जा बोली—“दुत पगली ! मेरे भैया बड़े अच्छे हैं। तू उन्हें देखेगी, तो निहाल हो जायगी ! इसमें डरने की क्या बात है ? अच्छा, लो, मेरे हाथ से खा तो लो यह कौर !”

“मे खा लूंगी रानी। तुम जाओ।” शोभी ने मुह फेर कर कहा।

“ओह, भौजी, किसी का दिल तोड़ते तुम्हें अहस नहीं लगता ? कितने आर से मैंने यह कौर उठाया है। तुम्हें मेरी कसम !” कह कर उसने आँखें हाथ से उसका मुह फिराया, तो शोभी बाधा न डाल सकी। ननद ने उसके मुंह में कौर डाल दिया। मशीन की तरह उसका मुह चलने लगा। पर अन्दर से हल-सी आ रही थी। वह जल्दी से पानी के घट के सहारे उसे निगल गयी। फिर पूरा लोटा गट-गटकर खाली कर गयी।

“थोड़ा और खा लो, भौजी !” ननद ने अनुनय किया ।

“बस, रानी, बात रह गयी न तुम्हारी,” शोभी ने सिर हिला कर कहा ।

ननद भुक्तभोगी थी । आज उसे पिछले साल की अपनी सुहागरात याद आ रही थी । जो उसकी ननद ने उसके साथ उस अवसर पर किया था, उसे ही वह अपनी भौजी के साथ दोहरा रही थी । उसे याद था, कि उस दिन उसने भी अपनी ननद के बहुत कहने-सुनने पर एक ही कौर खाया था । वह जानती थी, कि ऐसे अवसर पर खाने-पीने की किसे सुध होती है ! उसे क्या मालूम कि शोभी के मन में क्या है । वह थाली हटा उससे सटकर बैठ गयी । फिर बोली—“भौजी, कुछ धुक-धुक कर रहा है न तुम्हारे अन्दर ? ज़रा देखू तो !” कह कर उसने उसकी छाती से अपना कान ऐसे लगा दिया, जैसे वह स्वयं वहा होती धुक-धुक की आवाज़ सुनना चाहती हो । फिर तत्क्षण कान हटा कर कहा—“भौजी, इससे कह दो कि यह शान्त हो जाय, क्योंकि भैया आज कहीं चले गये हैं । आज वह न आ सकेंगे । ऐसा मालूम हुआ है ।” कह कर उसने आंखों में कुछ छिपा कर कनखियों से शोभी की ओर देखा, फिर होंठों पर उभरती मुस्कान को दातों से दबाती बोली—“आओ, आज भैया न आयेगे तो क्या हुआ । मैं तुम्हें अपने पास कलेजे से लगा कर सुलाऊंगी, मीठी-मीठी बातें करूंगी । आओ, चलो मेरे साथ ।” कह कर उसने उसका हाथ पकड़ उठाया ।

शोभी को लगा, जैसे आसमान से उसके सिर पर गिरता आफत का पहाड़ बीच ही हवा में रुक गया । उसने आराम की एक सास ली और ननद के साथ उसके बिस्तर पर लेट गयी । ननद सचमुच कितनी प्यारी, कितनी स्नेही है । उसे उस वक्त मालूम हुआ, जब सचमुच उसने उसे एक बराबर की बहिन की तरह अपने कलेजे से लगा, उसके चेहरे पर अपने प्यार-भरे हाथ फेरे और उसकी पीठ पर मीठी-मीठी थपकियां दी । उस वक्त सचमुच उसका बैसा करना उसे बहुत अच्छा लगा । और जब वह

एक गीत धीमे-धीमे स्वर में गुनगुनाने लगी, तो जैसे उसके व्याकुल हृदय को राहत मिलने लगी, और आँखें आप ही नींद से भारी हो झपकने लगी। ननद गा रही थी। उसके गीत का मतलब यों था—

‘माँ के घर में मैं सोने की तरह दमक रही थी,
ए बालम, तूने मुझे पीतल बना कर छोड़ दिया।
‘मा के घर में मैं पान की तरह पतली थी,
ए बालम, तूने मुझे मोटी करके छोड़ दिया।
‘माँ के घर में मैं पूजा की तरह पवित्र थी,
ए बालम, तूने मुझे अपवित्र करके छोड़ दिया।
‘मैं घर जाकर सखियों को कौन मुँह दिखाऊँगी,
ए बालम, तूने मुझे बिल्कुल बदलकर छोड़ दिया।

गीत खत्म कर, उसने अपनी भौजी की ओर धीरे से आँखें फेर देखा, तो वह मीठी-मीठी नींद में बेखबर हो गयी थी। थोड़ी देर तक वह उसे उसी तरह चिपकाये पड़ी रही। फिर धीरे-धीरे हाथों को हटाने लगी। फिर सारे शरीर को उसने अलग कर एक क्षण तक उसकी ओर देखा कि कहीं उसकी नींद टूट तो नहीं गयी। पर उस बेखबर को क्या पता था। वह तो जैसे किसी मीठे सपने में पड़ी किसी दूसरी दुनिया की सैर कर रही थी।

ननद बहुत सभल कर, धीरे-धीरे पाव समेटकर, अपनी ओर की पाटी पर अपने शरीर का सारा बोझ डाल कर, बिना कोई शब्द किये नीचे उतर कर खड़ी हो, भौजी को मुस्कराती हुई आँखों से देखने लगी।

सौन्दर्य की देवी सो रही थी, पर सौन्दर्य जैसे जाग कर उसकी रक्षा कर रहा था। वह भोला-भाला, कौमार्य से दीप्तिमान मुखड़ा कितना पवित्र कितना सुन्दर, कितना मासूम लग रहा है ! यह बीच में तनिक आगे को झुका हुआ, पान की तरह पतला निचला होंट कितना आकर्षक, कितना अच्छाता मालूम हो रहा है ! यह उभरी-उभरी, सीप की तरह लम्बी-लम्बी पलकें अपने नीचे कितने प्यारे-प्यारे सपनों को ढके हुए मालूम होती हैं !

यह बिखरे हुए केश, यह अस्त-व्यस्त कपड़े बता रहे हैं कि अल्हड़ यौवन कितना बेखबर होता है ! यह उभर गयी, नङ्गी, गदराई टांगें, आह, कितनी प्यारी, कितनी चिकनी, कितनी सुडौल हैं, जैसे ये सौंदर्य और यौवन का मान-दण्ड बन कर कह रही हैं, कि जरा आँको तो कि मुझ-जैसी टांग वाली कितनी सुन्दर, कितनी यौवनमयी होगी ! ननद ठगी-सी उस सोये यौवन के सौन्दर्य को देखती रही । फिर सहसा जैसे अपने को सभालने में असमर्थ पा, वह एक चांग की तरह डधर-उधर देख भुक गयी और शोभी के रस-भरे होठों को चूम लिया । उसे लगा, जैसे अमृत-भरे प्याले के किनारे उसके होठों से छू गये हो । ओह, कितना आनन्द मिलेगा उसे, जो इस प्याले को...

सहसा पाम ही कही खटका हुआ । ननद जैसे कुछ समझ कमरे में बाहर होती बोली—“ए यौवन और सौन्दर्य की देवी ! तू यो ही सोता रह, जब तक कि तेरा देवता आकर तुझे न जगाये ।” और वह कमरे से बाहर हो गयी ।

आदमी के सो जाने पर आदमी के हृदय और मस्तिष्क में उसके जागरण में सोयी बातें जैसे सपने बन कर जाग उठती हैं । नीद की बेहोशी में जैसे सपनों को होश आता है । आदमी बेहोश होकर सोता रहता है, और सपने उसे लेकर उस देश की सैर कराते हैं, जिसकी कल्पना उसके मस्तिष्क में कभी उभर कर, उसके सफल न होने पर, दब कर रह जाती है ।

शोभी को भी नीद में सपने उस देश को ले उड़ें, जिसकी कल्पना उसके मन में कभी उभर कर हमेशा के लिये मिट गयी थी—

पूनों का चाद अमृत की वर्षा कर रहा है । चारों ओर छिटकी हुई चाँदनी धीमे-धीमे, मधुर स्वर में प्रेम और मिलन के रुपहले गीत गा रही है । मन्द-मन्द, सुगन्ध से लदी पवन-लहरियाँ जैसे मद में चूर हो, लड़खड़ाती डोल रही हैं । छोटे-छोटे वृक्षों की कोमल डालियाँ मस्ती में

धीरे-धीरे भूम रही है। कलिया यौवन की अगडाइयाँ ले चिटक रही है। फूल खुशी से खिल-खिला रहे हैं। कहीं दूर से किमी भरने के आते स्वर वातावरण को मगीतमय बना रहे हैं। मौहक शान्तता हर ओर थिरक रही है।

दुल्हन की तरह फूलों के आभूषणों से सजी शोभी चन्दन के दुग्ध-से पलग पर जूही के हारों से सुसज्जित शँया के एक कोने में नाक तक घूँघट खींचे बैठी है अपने प्रीतम की प्रतीक्षा में। हृदय का उल्लास उसके मुखड़े पर फूटा पड़ रहा है। हर्ष उसकी छाती में धडक-धडक उठता है। उत्फुल्लता की किरणें उगकी अर्द्ध-निमीलित आँखों में चमक-चमक उठती हैं। आज उसकी मुद्रा-रात है। आज उसके प्रीतम आयेगे अभिमार रचाने। रह-रह कर वह बगल में लटकने चमेली के हार को देख लेती है, जिसे वह अपने प्रीतम के गले में पहनायेगी।

सहसा कोमल पदचाप सुनायी पड़ती है। उसका कलेजा धक से कर जाता है। शरीर सिमट जाता है। आँखें लज्जा से झुक जाती हैं। कपोलों पर थिरकती हुई लालिमा कापने लगती है। ललाट पर पसीना चुचुआने लगता है।

प्रीतम पाम आ खड़े हो जाते हैं। फिर झुक कर, उसके घूँघट को उठा, उसकी झुकी ठुड्डी को अपनी कोमल उँगलियों से तनिक ऊपर उठाने की चेष्टा करते कहते हैं—“रानी, मुझसे इतनी शर्म क्यों?”

उनका अगुलि-स्पर्श जैसे एक नशे की लहर बन उसके रोम-रोम में फैल, थिरक उठता है। फिर भी लज्जा उसका सिर नहीं उठने देती। आँखें नहीं खुलती।

वे उसके गले में बेलें का हार पहना कहते हैं—“रानी, तुम कितनी सुन्दर हो।”

वह और भी लज्जा में लाल हो सिर झुका लेती है।

वे उसे उसके बाजुओं को कोमलता से पकड़ धीरे से उठा अपनी छाती से लगाने लगते हैं। वह छुई-मुई-सी सिकुड़ती जाती है। एक हाथ

से उसे अपन वक्ष स्थान पर कस उसकी ठुड्डी में दूसरे हाथ की उंगली लगा, उसके मुखड़े को ऊपर उठा कहते हैं—“रानी, इन मोती-भरे सीपो को खुलने दो ! नहीं तो, नहीं तो, ...”

पलके उठने का नाम नहीं लेती । मुखड़े की मुस्कुराती लालिमा कांप रही है । हृदय का उत्फुल्ल उन्माद लहरे ले रहा है । एक नशा-सा तारी हो रहा है उस पर ।

“शोभी रानी देखो, देखो, जरा मेरी आँखों में तो देखो !” वे रुद्ध कण्ठ से कहते उसके मुखड़े पर अपना मुखड़ा झुका देते हैं । फिर उसकी पलकों पर अपनी बरौनिया फेरते हैं, कि एक मधुर गुदगुदाहट का अनुभव कर पलके काँप कर खुल जाती हैं । एक क्षण तक प्रेम-भरी आँखों से प्रेम-भरी आँखें ऐसे टकराती हैं, जैसे शराब से लबालब-भरे चार प्याले टकरा गये हों । आँखों का मद छलक उठता है । वे उसकी आँखों को चूम लेते हैं ! फिर कलेजे में जोर से चिपका लेते हैं । फिर उसके मुखड़े के कण-कण का चूम्बनो से भर देते हैं । उसे जैसे एक बेहोशी-सी आने लगती है । उसे वह कामलता से शैया पर लिटाते कहते हैं—“शोभी रानी, जरा मुझे भी अपने इन अमृत-भरे अधरो से एक बार पुकारो !”

शोभी के बेहोश होते होठ कांपते हैं । अस्फुट स्वर फूटता है—
‘बरन !’

और फिर ... फिर बेहोश आनन्द का लहराता हुआ अमृत-सागर. और उसकी बेहोश लहरो पर भूला भूलते, दुग्धोज्ज्वल रेशम सी नरम शैया पर पड़े बेहोश प्रियतमा और बेहोश प्रियतम और ... और ...

सहमा लगा, जैसे किसी अज्ञात दिशा से अचके में एक भयकर तूफान आया, और वह शैया उलट गयी । बेहद घबरा कर अकचकायी-सी शोभी की आँखें खुल गयीं । सामने चारपाई पर चढ़ती एक छाया को देख वह चीख-सी पड़ी, कि वह छाया अपने हाथों से उसके मुँह को ढँकते बोल पड़ी—“चुप-चुप ! मैं हूँ ! डरो नहीं । शोर मत करो । माँ जाग रही है ।”

जिस आफत के पहाड़ को शोभी हवा में रुक गया समझती थी, वह इस तरह अचानक भहरा कर उसके सिर पर गिरा, कि वह पिसपिसा कर रह गयी। वह अस्त-व्यस्त कपड़ों को ठीक करती बिजली की तेजी से चारपाई से उतरने लगी, कि उसके पति ने उसकी कलाई पकड़ कहा—
“इसी पर बैठो न ! नीचे क्यों उतर रही हो ?”

पर शोभी न मानी। वह किसी तरह अपनी कलाई छुड़ा कर नीचे उतर गठरी की तरह अपने शरीर को चारों ओर से सिमेट कर बैठ गयी। उसका सारा शरीर भय से काँप रहा था। हृदय धड़-धड़ बज रहा था। तो वह घड़ी आखिर आ ही गयी।

पति ने मुस्करा कर कहा—“नन्दा कहती थी, कि उसकी भोजी पत्थर की मूरत है। मैं देख रहा हूँ, कि सचमुच वह मूरत तो है, पर पत्थर की नहीं। ओह, यह मोहनी मूरत देखने के लिए, जब से तुम यहाँ आयी हो, मैं तडप-तडप कर रह गया ! पर इनकी सायत...उफ !”

शोभी के हृदय में जैसी बरछियाँ चुभ रही थी।

पलंग पर उसके सामने खिसक कर, उसके घूँघट को हाथ से छूता पति बोला—“चाद को बादल से निकलने दो, सुन्दरी। मुझ से काहे की शर्म ?” कह कर उसने घूँघट को उलटना चाहा, कि शोभी के हाथ ने उठ कर घूँघट पकड़ लिया। पति ने अब घूँघट छोड़ उसका वह हाथ एक हाथ से पकड़ लिया, और दूसरे हाथ से उसे सहलाते कहा—“ओह, कितना नन्हा-मुन्ना, प्यारा हाथ है ! जी में आता है, कि चूम लूँ !” कह कर उसने होंठों से उसे छूना चाहा, कि शोभी ने अचके में उसे खींच लिया।

“ओह,” प्यासे होठ उठ कर हिले—“इतनी बेदर्दी दिखाओगी तुम !...अच्छा, आकर चारपाई पर तो बैठ जाओ। नीचे मिट्टी में तुम्हारी चुनरी खराब हो रही है ! आओ” कह कर उसका कन्धा पकड़, उसे हिलाता वह बोला—“मैं कुछ न करूँगा चुपचाप सो जाऊँगा। लेकिन तुम ऊपर तो आ जाओ ! ! उठो भी !”

शोभी सन्न हुई जा रही थी । आंखों में खोफ थरा रहा था । हृदय की धड़कन जैसी बन्द हुई जा रही थी । हे भगवान !

“देखो, धीरे से कह रहा हूँ । चली आओ ऊपर ! वरना...वरना ...मेरे हाथों में इतनी ताकत है कि तुम्हें फूल की तरह उठा कर चारपाई पर रख दूँ ।...शायद तुम्हें मालूम नहीं, कि अब मेरी छुट्टी के सिर्फ पाँच ही दिन रह गये हैं । उनमें दो दिन रास्ते के लिये छोड़ दे, तो सिर्फ तीन ही दिन रह गये । फिर मैं चला जाऊँगा । वहाँ जाकर पना नहीं, किस मोर्चे पर जाना पड़े । चारों ओर घमसान लड़ाइयाँ छिड़ी हुई हैं । आज मुझे बेहद खल रहा है, कि फौज में क्यों भर्ती हुआ । तुम सी चाद वाली सूत की बीवी को छोड़कर कहीं जाना...उफ, पर मैं क्या कर सकता हूँ । और कोई नौकरी नहीं कि चाहने पर छोड़ी जा सके । इसलिये इन तीन दिनों का एक छन भी नष्ट करना मैं नहीं चाहता । आओ, आओ वरना मेरे चले जाने पर तुम भी पछताओगी कि क्यों तुमने इन अनमोल छनो को झूठमूठ की लज्जा के फेर में पड़.. नहीं,नहीं ! आओ, आओ तो, मेरी अच्छी रानी !”

शोभी की सास फूल रही थी । कलेजा मुँह को आ रहा था । दिमाग चक्कर खा रहा था । एक वद्वशत-सी छाई जा रही थी उस पर । ओह, वह क्या करे ?

“आओ ज्यादा न तडपाओ, रानी ! ज़रा मेरी ओर तो देखो । देखो भी !” अपना हाथ जरा कडा कर उसने उसका मुँह ऊपर कर दिया । पर शोभी ने फिर उसे नीचे कर लिया ।

“ओह, तो शायद तुम इस तरह न मानोगी । मैं तो चाहता था, कि प्रेम से ही...पर ..पर...तुम...तुम मालूम होता है, वैसा नहीं होने दोगी । कहा सीधे से आ मेरे पास बैठती, मुझ से कुछ मीठी-मीठी बातें करती, कहा यह बेमानी, बेरुखी, बेकार की शर्म । छोड़ो भी यह सब ! आओ !”

थोड़ी देर तक वह उसके उठने का इन्तज़ार करता रहा । पर जब वह टस से मस न हुई, तो उठ खड़ा हुआ । फिर उस पर झुकते हुए कहा—“अच्छा, अब तो उठ ही जाओ । ऐसा नहीं करते ! ज़िद कै यह माने थोड़े होते हैं । आओ तो !” कह कर उसने शोभी के दोनों कंधों को पकड़ हिलाया ।

शोभी के होश गायब होने लगे । वह शत की यह हालत हो गयी, कि उसके जी में आया, कि वह अपने सिर के बालों को उखाड़ डाले, चेहरे को नोच डाले । पर वसा करने का मौका उसके पति ने उसे न दिया । उसने उसे अपनी गोद में बाध छटपटाती शोभी को उठा लिया ।

१४

गिरते हुए बरन के हाथ जैसे उस बच्ची ने थाम लिये । शोभी के इदे-गिदे मंडराते हुए उसके ख्याल धीरे-धीरे उस बच्ची में बंटने लगे । वह जब भी शोभी की कोई बात सोचता, यह बच्ची न जाने कहा से उसके सामने आ टपकती, और बरन शोभी को छोड़कर उस बच्ची के विषय में ही सोचने लगता, जो न जाने किस जादू के बल से क्षण में ही बढ़कर उसके सामने खड़ी हो जाती, जिसे देखकर वह होठों में ही बुदबुदा उठता, ‘शोभी !’ सचमुच शोभी की वह ऐसी प्रतिरूप थी, जैसे एक ही सींचे में ढली हुई

दो मूर्तियां । उसे देख कर बरन को लगता, जैसे शोभी को खोकर भी उसने शोभी को पा लिया ।

वह अब रोज उधर जाने लगा । समय का ऐसा हिसाब रखता, कि जब वह वहां पहुँचता, तो वहाँ कोई न होता । घोड़े की टापे सुन बच्ची कौतूहलवश ओसारे के किनारे पर आकर खड़ी हो जाती और ताली बजा-बजा कर, खुशी-भरी आवाँ को नचाती सवार को चिढ़ाने लगती । बरन रुक कर उसे देखता रहता, जब तक किमी आर से किसी के आने की आहट न होती !

धीरे-धीरे उनका परिचय बढ़ गया । अब बच्ची निडर ही उसके घोड़े के कुछ करीब भी आ जाती और टूटी-फूटी भाषा में कुछ बातें भी कर लेती ।

बड़े मीठे स्वर में बरन बच्चो की तरह कहता —“घोड़े पर चढ़ोगी !”

सिर हिलाकर बच्ची कहती—“ऊह, गिर जाऊगी ।”

“मे जो तुम्हें थामे रहूँगा,” बरन कहता ।

“नहीं, मुझे डर लगता है । इतना ऊँचा घोड़ा.....” हाथ उठाकर कयास में न आने वाली ऊँचाई का भाव बता, वह अपने में भय-मिश्रित आश्चर्य भर कहती ।

“ऊँचा कहाँ है ?” बरन घोड़े से उतर, उछलकर उस पर चढ़ता कहता—“मे तो इस पर यो चढ़ जाता हूँ । और खूब मजे से चलता हूँ । ऐसा मजा आता है, जैसे झूले पर । तू झूला झूलती है न ?”

“हाँ,” बच्ची कहती ।

“उस पर तुम्हें डर नहीं लगता ?” बरन पूछता ।

“अब नही लगता । पहले-पहल बहुत लगता था ।” भोलेपन से बच्ची कहती ।

“बस, तो उसी तरह पहले-पहल घोड़े पर भी डर मालूम होता है । एक बार चढ़ जायेगी, तो डर खत्म हो जायगा । बोल अब घोड़े पर चढ़ेगी ?” बरन अपने तर्क से खुश हो, उसकी ओर झुक कर हसने लगता ।

बच्ची को कोई बात कहने को न मिलती, तो कहती—“मा मारेगी ।”

उसके मुंह से यह वाक्य सुनकर बरन जैसे सन्नाटे में आ जाता, यह सोचकर कि कहीं यह अपनी माँ से घोड़े पर चढ़ने के विषय में कुछ न कह दे । वह जल्दी में बहा से घोड़े पर चढ़ता कहता—“मा को मालूम ही कैसे होगा कि तू घोड़े पर चढ़ी थी ?”

बरन के खड्हर से मस्तिष्क में शैतान ने अपना घर बसाना शुरू कर दिया था । वह रोज एक योजना बनाता और दिन-रात उस पर चिन्तन किया करता । उसे लगता, कि उस बच्ची को पाकर उसकी उजड़ी दुनिया फिर बस जायगी । पर वह उसे पाये, तो कैसे ? इसी की तो योजना वह रोज बनाया करता । कभी सोचता कि दादा से कह कर क्यों न उड़वा ले । पर दादा इसे कैसा समझेंगे, वह समझना उसके लिये कोई मुश्किल बात न थी । फिर इसमें किसी तीसरे आदमी की भी सहायता दादा को लेनी पड़ेगी । कहीं वह भेद खोल दे, तो । नहीं-नहीं यह तो बिल्कुल ठीक नहीं । फिर कभी ? कभी सोचता, कि दादा से कहे, कि वह उस बच्ची को पालने के लिए उसके बाप से माँग ले । पर उससे तो वह शोभी के बारे में बात कर चुके हैं । कहीं वह कुछ ताड़ कर उन्हें बदनाम कर दे, तो ? और मान ले, कि वह दे भी दे, तो दादा की पालित लड़की से वह.....नहीं, नहीं ! तब तक दादा उसे क्या यों ही रहने देंगे ? कहीं वह बच्ची और कहा वह ! कम-से-कम आठ-दस साल तो...

एक दिन वह ऐसा ही कुछ मोच रहा था, कि दादा ने आकर पूछा—
 “तो बेटा, कहां जाने की मोची है ? यो सब तैयारियाँ हो चुकी है। पर
 देखता हूं कि अब तुम्हारी तबीयत पहले से काफी अच्छी है। अगर तुम
 जरूरी न समझो, तो... यो सब तैयारियाँ हो चुकी है। सायत भी
 मैंने पूछ रखी है। पर, बेटा, अगर हो सके, तो... मेरा मतलब है,
 कि कल से द्वाबे के ठाकुरो के यहाँ से ब्राह्मण आकर ठहरे हुए हैं। अगर
 तुम रुक सको, तो उन्हें सूचना दे दो। शायद वे ठाकुर तुम्हें देखने
 आयेगे।”

“दादा !” बरन ने चीखकर कहा—“अगर तुम मुझे जिन्दा देखना
 चाहते हो, तो इस तरह की बात मुझसे फिर कभी न कहना ! मैं बाहर
 जाऊंगा ! कब मायत है ?”

दादा ने सन्नाटे में आ, सिर झुका कर धीरे में कहा—“परसो।”

दादा को उसकी इस तरह की बात में चोट लगी है, यह उसके ध्यान
 में तब आया जब वह सिर झुकाये ही कमरे से बाहर जाने लगे। ओह
 कैसा मूर्ख है वह, जो ऐसे दादा को भी दुख पहुचाये बिना नहीं रहता ?
 क्या वह यही बात दादा से मीठे शब्दों में नहीं कह सकता था। उसने
 पुकारा—“दादा ! दादा !”

दादा आखों में आ गये आसू पोछ उसकी ओर घूमे तो बरन
 ने कहा—“दादा, तुम तो जानते हो कि मेरा दिमाग आजकल कितना
 खराब हो गया है। मेरी बात का बुरा मान गये, दादा !”

उनकी चोट पर जैसे मरहम लग गया। वह बोले—“नहीं बेटा !
 बच्चों की बात को भी कोई बड़ा बुरा मानता है।”

बरन अपनी चारपाई से उतर कर उनके पास आ बोला—“बुरा
 नहीं माना, तो तुम्हारी आखों में आसू क्यों आ गये ?”

एक मुस्कान दादा के होठों पर बिखर गयी। उन्होंने कहा—“वह तो
 यह जान कर, बेटा, मेरा बेटा अब इस लायक हो गया, कि वह दादा
 को भी डांट सकता है।” कह कर उन्होंने सिर झुका लिया।

“दादा ! ऐसा न कहो, दादा ! मेरी बातों का ख्याल न किया करो, दादा ! मुझे कभी-कभी होश नहीं रहता, कि मैं क्या कह जाता हूँ। तुम सब समझते हो, दादा !” कह कर वह दादा से लिपट गया।

दादा के हृदय पर छायी घटा उड़ गयी। उन्होंने बरन को कलेजे से लगाते कहा—“तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध क्या दादा ने कभी कुछ किया है, बेटा ? वह तो सिर्फ तुम्हारी खुशी चाहता है। तुम उसे जैसे भी पा सको, उसी में तुम्हारा दादा भी खुश है। हा, टीसन तक कैसे जाओगे ? मपिनी ठीक करा दूँ या . . .”

“मैं बता दूँगा, दादा।”

दादा ने वहाँ से आ दवाबे के ब्राह्मणों को यह कह विदा कर दिया, कि सरकार अभी किसी से कोई बात नहीं करना चाहते। उस दिन दादा दिन भर बौखलाये-से घर में डधर-उधर घूमते रहे। न जाने यह ऊट अब किधर को करवट लेगा। बरन को पढ़ पाना उनके लिये असम्भव हो रहा था। खन में कुछ, खन में कुछ। क्या ठिकाना है उसका ? जो भी हो, भगवान् उसको सद्बुद्धि दे, उसे खुश रखे। इस बूढ़े की इच्छा इससे अधिक अब कुछ नहीं है। कभी सोचा था, कि उसका ब्याह रचायेंगे। मिर पर पगड़ी बाध समधी बनेंगे। चाद-सी बहू ला कोठी को उजागर करेंगे। पर अब दीखता है, कि इसमें से कुछ भी नहीं हो सकेगा। भगवान की इच्छा !

शैतान की तेजी कहावत-प्रसिद्ध है। उसी तरह उसकी बुद्धि की भी सीमा नहीं। जब पूरी तरह बरन पर शैतान चढ़ गया, तो योजना बनते देर ही कितनी लगती। आग में जलता आदमी जान बचाने के लिए जिस तरह कुएं में कूद पड़ता है, बरन का यह कार्य भी कुछ वैसा ही था।

दूसरे दिन सुबह ही बरन ने दादा से कहा—“मेरा सामान आज ही टीसन पर भेजवा दो। ले जाने वाले से कह देना, कि वह उसे टीसन के पास वाले मोदी, दासा, के यहाँ रखकर चला आयेगा।”

“मगर मैंने तो सम्पिनी ठीक करवा दी है। सामान वगैरह सब उस पर साथ ही जा सकता है।”

“सम्पिनी पर सफर करना मरन है, दादा। मैं घोड़े पर ही जाऊँगा। रात को दो बजे गाड़ी जाती है। शाम को ही कल में चल दूँगा। दूसरे दिन किसी को भेज कर घोड़ा मँगवा लेना।” बरन ने कई बार आँखें झपका कर कहा।

दादा हस पड़े। कहा—“जब एक आदमी सामान लेकर जायगा, तो फिर वही घोड़ा भी लेता आयेगा। दूसरे आदमी को भेजने की क्या जरूरत है?”

ओह, यह बात तो बरन के ख्याल में आयी ही नहीं थी। क्या जवाब दे इसका? वह बगले भाकने लगा, कि शतान ने चुपके से उसे सुझा दिया। बरन ने कहा—“मेरा दिमाग इतना खराब नहीं है, दादा। सामान कोई कुली-कबाड़ी ही तो ले जायगा। मैं नहीं चाहता, कि वह मेरे घोड़े को हाथ भी लगाये। तुम घोड़े के साईस को ही भेज देना..... और हाँ, रुपये मुझे काफी चाहिए। किसी पहाड़ पर ही जाने का इरादा है मेरा। बड़ी खर्चीली जिन्दगी होंती है वहाँ की।”

“रुपये तुम जितने चाहो, ले जाओ, बेटा!” तनिक रुक कर वह सहसा उदास हो फिर बोले—“तुम्हारे चले जाने पर यह कोठी फिर पहले ही की तरह उदास हो जायगी। पता नहीं, क्यों इस तरह तुम्हारा जाना अब की मुझे अच्छा नहीं लगता। सोचता हूँ कि तुम चले जाओगे, तो मेरी तबीयत कैसे लगेगी। और, न जाने क्यों, हृदय को लगता है, कि तुम बहुत दिनों के लिये बिछुड़.....वाक्य पूरा करने के पहले ही दादा एक बच्चे की तरह फफक पड़े।

बरन की आँखें भी नम हो गयीं। दादा जो कुछ कह रहे थे, सच था। बरन सचमुच उनसे पता नहीं कब तक के लिये जुदा हो रहा था। दादा की बात ने जैसे बरन के हृदय को खरोंच-सा दिया। ओह, ऐसे प्रेममय दादा को छोड़ना आसान नहीं है! और वह उन्हें छोड़ ही नहीं

रहा है, बलिक धोखा भी दे रहा है। यह कैसा व्यवहार है उसका दादा के साथ ? जिस दादा ने पिता से बढ़ कर उसमें प्रेम किया, मित्र से बढ़ कर उसके हृदय के दुखों को दूर करने की कोशिश की, मरक्षक से बढ़ कर उस पर वैसे ही अपना साया रखा, जैसे मुर्गी अपने पंरों का साया अपने अण्डे पर रखती है, उसी दादा से आज वह इस तरह आख-मिचौली खेल रहा है। छि छि ! कैसा कृतघ्न, कैसा धूर्त है बरन ! नहीं, नहीं, दादा के साथ वह वैसा नहीं कर सकता। वह आवेश में आ दादा से लिपट गया। उसके सिर पर चडा शैतान दात किट-किटाते अलग हो गया।

दादा ने उसे वैसे ही अपनी छाती से चिपटा लिया जैसे कोई अपने प्यारे को उससे बिगुडते समय चिक्काता है। वह प्रेम, वह स्नेह, वह अपनत्व जैसे काटो की तरह चुभ-चुभ कर बरन के हृदय की कलुषता का जहर अपनी नाओं में निकालने लगा। पश्चात्ताप और प्रायश्चित्त की आग उसकी आखां में पिघल-पिघल कर गरम-गरम अश्रु-धाराओं के रूप में बहने लगी। उस वक्त दादा की गोद में वह वैसे ही बिलख-बिलख कर रो रहा था, जैसे कोई पुत्र गलती से अपनी माँ की अवहेलना करने के बाद, बदले में उससे और भी अधिक प्यार पा, अपनी गलती समझ उसकी गोद में क्षमा के लिये राता है।

आखिर दादा को ही उसे चुप कराना पड़ा। पर बरन को चैन कहाँ? वह जब तक सब कुछ उनमें कह न लेगा उसकी अपराधी आत्मा को शान्ति न मिलेगी और उसने हिचक-हिचक कर, रुक-रुक कर सुबकियाँ लेते सब-कुछ सुना दिया।

दादा का लगा, जैसे उनके शरीर से कोई प्राण ही खींच रहा हो। उन्होंने रुद्ध कंठ से कहा—“तो, बेटा, इस तरह तुम मुझे सदा के लिये छोड़े जा रहे थे ?”

“नहीं-नहीं, दादा। अगर वैसा होता, तो……” बरन फिर फूट पड़ा।

“चुप रहो, बेटा, चुप रहो !” दादा ने उसकी पीठ सहलाते कहा—“तुम्हें यही करना था , तो भी मुझसे छिपाना न था । क्या तुम्हारे दादा ने कभी तुम्हारी किसी इच्छा पर ‘न’ कहा है । शायद तुम्हें मालूम नहीं, बेटा, कि पिता यह जान कर भी कि लडका खिलौना ले-लेकर उसे तोड़ देता है, उसके मचलने पर दुबारा ही नहीं, बल्कि बार-बार खिलौना खरीद-खरीद देता है । तुम जैसे भी खुश रहो, रहो ! मेरा क्या, जब तक जीता हूँ तब तक सीता हूँ ! तुम्हें ही तो सब भोगना है । जैसे चाहो, भोगो ! पर.....” इसके आगे कहने की हिम्मत दादा को नहीं हुई ।

“पर क्या, दादा ?” बरन को उनका रुकना अच्छा न लगा । उनकी बातों में जहा एक करुणा की धारा थी वही एक अपनत्व की मधुर धारा भी बह रही थी । बरन जहां उनकी करुणा से द्रवित हो रहा था, वहीं उनके अपनत्व से आह्लावित भी । वह चाहता था, कि दादा उसी तरह से बोलते-बोलते उसे डाटने लगे, तो कितना अच्छा हो !

“कुछ नहीं, कुछ नहीं, बेटा !” दादा ने आंखें झपकाते कहा ।

“मुझसे छिपाओगे, दादा ?” बरन ने उनकी आंखों में देखते कहा ।

“नहीं, बेटा । मैं...मैं यह कह रहा था, कि यह तपस्या तुम कर सकोगे ?” दादा ने जैसे दूर किसी चीज को देखते कहा ।

“दादा, अगर ऐसी बात की दृढ़ प्रेरणा हृदय में न होती, तो....”

“तो...तो...सब ठीक है, बेटा !...हा जैसा तुमने कहा है, सब इन्तजाम हो जायगा । अब तुम्हारे डरने की कोई बात नहीं है ! सब ठीक हो जायगा, बेटा, सब ।”

“मेरे अच्छे दादा !” कह कर बरन उनसे फिर लिपट गया । उसे क्या मालूम कि दादा अपने कितने अरमानों को कुचल कर उससे ये बातें कर रहे थे ।

दादा किसी तरह उससे छुट कर, बिना उसकी ओर देखे, पता नहीं आखो मे क्या छिपाये. वहां से हट गये। उस समय वह यह याद कर, विधि कि लीला पर मन ही मन एक करुण मुस्कान मुस्करा रहे थे, कि किस सायत मे उन्होंने शोभी के बाप से शोभी को जबरदस्ती उडा लेने की धमकी दी थी। उन्हे क्या पता था कि मचमुच उन्हे वैसा ही करना होगा। शोभी न सही, शोभी की ...

उस दिन बरन अपने घोडे पर सुबह, शाम दोनो वक्त उधर से गुजरा और दोनों बार उम बच्ची को पोल्हाने की कोशिश की। उसकी बातों के चकमे मे आ वह शाम को घोडे पर इस शर्त पर चढ़ने के लिए तैयार हो गयी. कि वह घोडे को दौड़ायेगा नही।

बरन ने कहा—अच्छा, तो आज तो मुझे जल्दी है, पर कल तुझे जरूर चढाऊंगा।”

इस पर बच्ची मचल उठी—“नही, नही, हम तो अभी चढेगे।” बच्चों का मन बादशाही होता है। कहा तो वह डर के मारे चढ़ने को तैयार ही न हो रही थी और कहाँ अब

पर बरन उसकी उत्सुकता और हठ को और भी तेज करना चाहता था। इसलिये उसने उसे समझा-बुझा कर घोडा भगा दिया।

दूसरे दिन सुबह दादा ने कहा---‘बेटा, मैने सोचा है कि तुम नाहक इस झगड़ मे क्यों पडो। तुम सीधे टीसन जाओ। मै उसे वहा पहुँचवा दूँगा। मेरे पास आदमी है।”

“नही, दादा,” बरन ने समझा कर कहा—“ मै नही चाहता, कि तीमरे आदमी को इस बात की गन्ध भी लगे। आदमी का क्या ठिकाना ? तुम किसी बात की फिक्र न करो। सब ठीक रहेगा। मुझे कोई खतरा नही।”

दादा ने इसके आगे कुछ कहना ठीक न समझा। पर मन ही मन सोच लिया कि उनको क्या करना है।

आज बरन का दिल रह-रह कर उसी तरह धडक रहा था, जैसे किसी को कत्ल करने जाने वाले आदमी का धडकना है। वह रह-रह कर बेहद परेशान हो-हो जाता था। पसीना तो उसे दिन भर छूटना रहा। दादा उसकी हालत को ममभते थे, डमलिये उसके पास से वे एक क्षण को भी न हटे। कभी वह उसे पत्र लिखने की ताकीद करते रहे, कभी अपनी तन्दुरुस्ती का ख्याल रखने की। वक्त कटने का नाम ही न ले रहा था आज। दादा-बेटा दोनों बेचैन थे।

आखिर सूरज को क्षितिज के नीचे अदृश्य होते देख उन्हें वैसे ही खुशी हुई, जैसे किसी भारी दुश्मन को मरते देख आदमी को होती है। घोड़ा तो कभी का तैयार खड़ा था। और बरन तो सुबह से ही इस समय की प्रतीक्षा में उद्यत बैठा था। दादा ने रुपये दे कहा--“इसे अच्छी तरह सहेज कर रख लो। घबराने की कोई बात नहीं है। कुछ हुआ, तो मुझे तुम अपने पास ही पाओगे। जाओ। हा खत लिखना न भूलना। तेरे दादा की आँखें तेरी ही ओर अटकी रहेगी।” और उनकी आँखों से टप-टप आसू चूने लगे।

बरन ने उनकी छाती से लग, उन्हें सान्त्वना दी। भला दादा को भूल कर वह कैसे जी सकता है ! दादा को ऐसी बात कभी मन में लानी भी न चाहिये। उसका उनके सिवा है ही कौन ?

बरन घोड़े पर चढ़ गया। दादा ने घोड़े को थपथपाया। घोड़ा हिनहिना कर चल पड़ा, जैसे उसे भी ज्ञात हो, कि आज वह एक बड़े महत्वपूर्ण कार्य पर जा रहा है। इस समय बरन का विकृत चेहरा, लाल आँखें देख कर कोई सहज ही जान लेता, कि उसके मन में कैसी भयकर बात और कैसी कठोर दृढ़ता है। पक्के निश्चय ने उसमें इस समय बला का साहस भर दिया था। दिन भर उसके हृदय पर छाया भय अब नाम के लिये भी न रह गया था। इसी रास्ते पर चलते हुए कभी उसके दिमाग में पृथ्वीराज और संयोगिता की बात उठी थी। आज वह इसे सच करने जा रहा था। इस समय उसे शोभी की भी याद आयी। काश,

वह यह काम उसी वक्त करता, तो यह नौबत ही क्यों आती ! पर अब गुजरे की वह क्यों सोचे ? उसके लिये एक दिन यही बच्ची शोभी बनेगी । फिर...फिर. .

सन्ध्या की सिन्दूरी आभा मलीन होती जा रही थी । आकाश पर इधर-उधर छाये रग-बिरंगे बादलों के टुकड़े काले पड़ रहे थे । धीरे-धीरे आकाश से अधेरा उतरने लगा था । हवा बन्द थी । वातावरण शान्त । बागों के पेड़ चुपचाप, स्थिर खड़े थे । बरन का घोड़ा पगडंडी पर भागा जा रहा था । उसकी टापों की आवाज़ जैसे शान्त वातावरण के मस्तिष्क में कीले ठोक रही थी । बरन अपनी धून में मस्त बस आगे देख रहा था ।

घोड़ा ठिठक कर धीमा पड़ गया । सामने उसका घर था । घोड़े की टापें अब ऐसे पड़ने लगी, जैसे वह रुई बिछे फर्श पर चल रहा हो । कोई आवाज नहीं ।

सामने सदा की तरह हाथ में दीया लिये वह बच्ची निकली । बरन ने एक बार चौकन्नी आँखों से इधर-उधर देखा । फिर घोड़ा ओसारे के चबूतरे से लगा दिया । बच्ची ने उसे देख जल्दी से दीया ताक पर रख दिया और उसकी ओर खुशी से आँखें नचाती लपक पड़ी । बरन घोड़े से उतर गया । बच्ची ने उसका दामन पकड़ कहा “आज चढाओ मुझे घोड़े पर । कल कहा था न ?”

बरन ने ‘हां’ कहते एक बार फिर चारों ओर चोर की निगाहों से देखा । उसका दिल एक बार जोर से धड़का । पर दूसरे ही क्षण भट उमने बच्ची को उठा कर घोड़े पर बैठा दिया । फिर मुरैठे के कन्धे पर लटकते सिरों से मुंह और नाक को ढकते वह कूद कर घोड़े पर चढ़ गया । बाँये हाथ से बच्ची को अपने पेट में कस कर, घोड़े की बाग मोड़ दी । दो-चार कदम धीरे-धीरे उठा फिर सहसा घोड़ा जो उड़ा, तो बच्ची चीख पड़ी । पर अब घोड़े की टापों की आवाज़ें इतनी तेज हो कर बध गई थीं, कि बच्ची की चीख उनके नाचे एक गिलहरी की चीची से अधिक न

मालूम हो रही थी। बरन की बाह में दबी वह छटपटा कर भी क्या करती ?

क्षणों में ही ऐसा मालूम होने लगा जैसे दूर बहुत दूर भागती हुई टापों की आवाज़ क्षितिज के पीछे खोती जा रही हो।

१५

शोभी ने सोचा था, कि तीन रात तक भट्टी में जलने के बाद उसे इस दुस्सह, यातना से मुक्ति मिल जायगी। पर चौथे दिन भी पति के जाने का कोई नक्शा न देखा, तो हाय कर के रह गयी। हे भगवान, कब तक जलना होगा उसे इस यातना की आग में ? कहीं जल कर वह राख ही तो नहीं हो जायगी ?

ननद ने सोचा था, कि उसकी भौजी की सारी उदामी भैया से मिलने के बाद खत्म हो जायगी। पर उल्टे अब वह और उदास रहने लगी, तो वह उसके लिये एक अबूझ पहेली बन गयी। लाख कुरेद कर वह उसके दिल का हांल जानने की चेष्टा करती, पर उसके पल्ले कुछ भी न पड़ता। शोभी भी उसमें अब वह भोलापन न देखती। उसी ने तो उस रात उसे जाल में चिड़ियो कि तरह फँसाया था। इसलिये अब वह उससे भी बड़ी सावधानी से पेश आती। ये ननदे ऐसी परकाला होती हैं, उसने पहले नहीं सोचा था। वह अपनी माँ से उसकी उदासी की बात कहती, तो शोभी मुन कर सन्नाटे में आ जाती, कि कहीं वह बुढ़िया उस पर बरस न पड़े।

छुट्टी खत्म होने पर भी जब उसका पति नौकरी पर न लौटा, तो सास शोभी पर कुड कर रह गयी। पास-पड़ोस की औरतों ने उसके पास बैठ उसके बेटे के नौकरी पर न जाने की बात उठायी, तो उसने कहा—“जादू डाल दिया है उसने उस पर ! आज कल के लौड़ों-लौडियो की बात न करो, बहन ! बस एक बार जहा देखा-देखी हुई नहीं, कि सब कुछ भूल गये ! आखिर हम भी तो कभी दुलहिन बन कर

आयी थी । कह न दे कोई कि कभी हम अपना काम भूले । वह तीन-तीन साल पर नौकरी से लौटते थे । पर कभी उन्हें मैने छुट्टी खतम होने पर एक दिन भी रोका हो, तो कसम ! पर ये तो. .”

“बहन, सुना है कि फौजी नौकरी पर न लौटने से वारण्ट कट जाता है । फिर सिपाही पकड़ कर ले जाते हैं । भला क्यों नहीं समझाती हो तुम उसको ?” किसी पड़ोसिन ने कहा ।

“अरे बहन, अब क्या वह मेरी सुनता है । अब तो जिधर झूलनी झूले, उधर उनका मुंह । जाय भाड़ में, हमें क्या करना है ?” सास मिर ठोक कर बोली ।

“तो उसके बाप ने भी कुछ उससे नहीं कहा । वह तो समझदार है । बेटे को समझाना चाहिये, नहीं तो कहीं कुछ हो गया, तो कहने को रह जायगा । भला ऐसे भी कोई मेहरी का हो रहता है ?” किसी दूसरी पड़ोसिन ने सलाह दी ।

“उनसे इस बात पर कहा- मुनी होगयी है । उन्होंने अब उससे कुछ भी न कहने की कसम खा ली है । बाप-बेटे को इस तरह लडा कर, देखे, वह कुलनामिन क्या-दया करती है ! हम भी अब चुप हैं । जब हाथ में हथकड़ियाँ पड़े गी, तब आटे-दाल का भाव मालूम होगा । बस मजा न निकल जाय, तो कहना ।” सास और भी भडक कर बोली ।

“आग लगे रे, ऐसी दीदा में ! सब लाज-शरम जैसे घोल कर पी गये हैं ये ! भला इस तरह का भगडा कभी किसी ने देखा-सुना था ?” एक ने हाथ चमका कर कहा ।

“इस कलजुग में जो भी हो जाय, बहन, थोड़ा है,” एक दूसरी ने निढाल होकर कहा ।

‘ हा, बहन,” एक तीसरी ने सिर हिल कर कहा — “पहर ही ऐसे चढा है !” कह कर वह उठी, तो उसके साथ ही सब उठ गयी ।

सास के जलते पर वह जो धी छोड़ गयी, उससे जो लपटे निकली, तो शोभी झुलस कर रह गयी । एक तो बेचारी वैसे ही तड़प रही थी,

दूसरे यह आफत भी उसके गले पड़ गयी। सास ने बेटे को जो काबू से बाहर देखा, तो उसका सारा गुस्मा शोभी पर ही उतरा। बस मार नहीं पड़ी उस पर, वरना सास ने उसकी तेरहो नौबत कर के ही दम लिया।

बेचारी शोभी क्या जवाब देती उसका। कैसे वह कहती, कि इसमें उसका कोई दोष नहीं, वह तो रात-दिन भगवान से विनती करती है, कि वह जल्द-से-जल्द यहा से चला जाय। पर यह सास...ओह ! कैसे लोग क्या समझ बैठते हैं ?

रात को उसका पति जब आया तो आज पहली बार शोभी ने मुह खोला। वह धीरे-धीरे दिन भर की सुनी सारी बातें उससे कह गयी। फिर कहा — “आप चले जाइये ! वरना ये लोग मुझे मार डालेंगे ! इन लोगो का ख्याल है, कि मैंने ही आपको रखा है।”

“इसमें तो वह कोई गलत बात नहीं कहते,” मुस्करा कर पति ने कहा।

“आप भी यही कहेंगे ? भला मैंने एक बार भी...”

“हाँ, तुमने कहा तो नहीं। पर मैं रुका हू तुम्हारे ही कारण। मेरी रानी, सच कहता हू. तुमसे किसी भी तरह अलग नहीं हुआ जाता !” उसे गोद में खींचते उसने कहा।

“सुना है, कि नौकरी पर न जानें से वारण्ट कट जाता है। पुलिस..” अपने को छुड़ाते शोभी ने कहा।

“सच सुना है तुमने। पर रानी, मुझे इसका कुछ भी डर नहीं लगता। तुम्हारे लिये तो मैं जान तक न्यौछावर कर सकता हू। जेल क्या चीज है ? और यह भी सुन लो, कि पकड़ कर वह मुझे ले जायेंगे, तो कुछ दिन की दलेल ही तो हागी। फिर क्या ? जब जाना ही है, तो ऐसे गये या वैसे। पर मुझे जब तक तुमसे कोई अलग नहीं करता, तब तक मैं तुम्हें छोड़ने का नहीं। एक-एक दिन यह जैसे स्वर्ग में बीतता है मेरी, रानी !”

“पर मेरा तो आप सरक बना रहे हैं न ? अम्मा जी, बाबू जी...”

“ओह, इन बूढ़ों की बातों को ध्यान में न लाओ, रानी। वे तो मंदको की तरह अब टरति ही रहेंगे। हमारा खेलना-खाना उन्हें फूटी आखों भी कभी नहीं सुहायेगा। उन्हें तो बस मेरी कमाई चाहिये। जब तक यह नहीं मिलती, तभी तक यह तमाशा है। जैसे ही जाकर मैंने रुपया भेजा नहीं कि इनका दिमाग बर्फ की तरह ठण्डा हो जायगा। तुम फिक्र न करो, रानी! मैं सब समझता हूँ!” कह कर उसने उसे दबाच मा लिया।

दूसरे दिन सुबह होते ही सास पतोहूँ को फटकार का नाश्ता करा रही थी, कि कहीं से बेटा धमक पड़ा। उससे अपनी मा की बात सही न गयी। उसने माफ शब्दों में माँ से कह दिया कि इसमें उस बेचारी का कोई दोष नहीं है। उसे कुछ कहा गया, तो ठीक न होगा।

वह तो कह कर चला गया। पर उसके बाद शोभी पर क्या बीती, उसे कैसे पता चलना। “इसी राँड ने रात एक-एक बात फोर-फोर कर चिखायी है। नहीं तो उसकी मजाल, कि वह मेरे मुँह पर इस तरह नमाचा मार चला जाता। अच्छा, अच्छा, देखूंगी मैं सब। यह पानी इसी तरह नहीं चढ़ा रहेगा हमेशा!” इत्यादि बातों से शोभी के कान फटकने लगे, तो वह रो-रोकर अपने मा-बाप को बिसूरने लगी।

उसके रोने ने और ही बखड़ा खड़ा कर दिया। सास ने दूसरा पहलू बदला—“सुना रो-रोकर अपने खसम को! मैंने मारा है न तुझे।” और वह पैर पटककर एक ओर बिफरी हुई चली गयी।

ननद ने आकर उसे चुप कराने की बहुत कोशिश की। पर शोभी की हलाई तो जैसे रुकने का ही नाम न लेती थी। कटे पर नमक की तरह सास की बातें उसके हृदय पर छनछनता उठती थी। और वह तड़प-तड़प कर, बेहान हो-हो, बिलक-बिलक कर रो-रो पड़ती थी। उसका कलेजा जैसे फटा पड़ रहा था। यह दुहरी मुसीबत जैसे उसके प्राणों को ही नोचे ले जा रही थी।

एक-दो दिन की बात हो, तो हो। यह सिलमिला कभी खत्म भी होगा, यह कौन जानता था। रात-दिन यह यातना सहते-सहते शोभी सूखकर काटा हो गयी। एक पल का भी चैन उसके लिये सपना हो गया। उसकी हालत उस सूअर की थी, जिसे बर्छी से खोभ-खोभ कर मारा जा रहा हो। वह रोने-बिलग्वने, चीखने-चिल्लाने, तडपने-छटपटाने के सिवा कर ही क्या सकती थी ? उसका वश ही क्या था ? काश, वह मर जाती !

उसके बाद शोभी ने कभी अपन पति के सामने मुंह न खोला। कहने-सुनने से दुख कम होता है, मन हल्का होता है। पर वहाँ कोई ऐसा न था, जिससे छन भर वह बात ही करती। ननद का रग भी अब बदल गया था। वह भी हर बात में माँ का ही पक्ष लेती थी। उसे भी लग रहा था कि उसके भैया को उसने उससे छीन लिया है।

रूप और रस का दीवाना उसका पति उसकी सूखती देह की परवाह न कर, हड्डी चिचोड़ता रहा। पर यह भी कब तक चलता। उसके मज्जे से जब कमी आने लगी तो वह भी शोभी पर भूखे कुत्ते की तरह भपटने लगा। इतनी जल्दी जवानी ढल जाने के लिये वह उसे ही अपराधी मान बकने-भकन लगा, कि उसन जान-बूझ कर ऐसा किया है, कि न रहेगा वास, न बजेगी वासुरी। पर जो भी हो, वह उसे छोड़गा नहीं। जिसके लिये इतना बड़ा खतरा मोल लिया, उसी ने जब उसके सुख की परवाह न की, तो वह क्या करे ? पहले कभी-कभी माँ को बकते-भकते सुन वह उसे मना कर देता था। पर अब उसे वह भी अच्छा लगने लगा ! बेचारी शोभी ! अब उसकी यही हालत थी, जो दाँतो के बीच जीभ की उस हालत में हो, जब कि हर दात उसे काटने को दौड़े।

शोभी के लिए अब उस घर में एक क्षण को भी रहना असम्भव हो गया। उसे मा-बाप याद आते, तो जैसे उन पर भी उसे बेहद गुस्सा आता, कि कैसे उन्होंने उसकी ओर से बेपरवा हो, उसे तिल-तिल कर धुल कर मरने के लिये छोड़ दिया, कभी खबर तक न ली कि शोभी मर

गयी या जिन्दा है। ऐसे अवसर पर भाई का न होना उसे खलता। वह सोचती कि भाई होता, तो एक बार अवश्य ही आया होता और बहन की यह हालत देख एक क्षण को भी इस घर में न छोड़ता। पर, हाय, किस्मत फूट गयी उसकी !

इन विपत्ति की घड़ियों में रेगिस्तान में भूले में भटक आई बसन्त की हवा की तरह कभी-कभी उसे अपने पिछले जमाने की बातें याद आती, तो वह सोचती, आह, उस वक्त क्या स्वप्न में भी उसे ख्याल हो सकता था, कि एक दिन ऐसा भी उसके जीवन में आयेगा। उस वक्त उसे बरन की याद आती, उसके प्यारों की याद आती, उसके कोमल स्पर्श, मधुर चुम्बनों की याद आती, उसकी मीठी बातों, दुलार-भरे मनुहारों की याद आती, तो जैसे सब-कुछ भूल वह उनमें खो-सी जाती। जो यादें एक समय उसके हृदय की तीरों की तरह छेदती थी, आज वही यादें जैसे मरहम बन उसके हृदय के जख्मों को आराम पहुंचाने वाली बन गयी। दिन-रात रेगिस्तान की रेत, आधी, लू में भटकने वाली शोभी के लिए ये यादें जैसे सखलिस्तान बन गयी। वह रोती, विलखती, तड़पती और जब इनसे थककर परेशान हो जाती, तो वह उन यादों को लेकर बैठ जाती। उसके हृदय के वीरान कोने उस समय जैसे आबाद हो जाते। ये यादें उस दुखिनी के लिये सचमुच बहुत बड़ा सहायक बन गयी। वरना कौन जानता था, कि उन दिन-रात जलती ज्वालाओं के बीच में पड़ी शोभी कब जलकर भस्म हो जाती। मौत के हजार बहानों को भी धता बता कर उद्दाम जिन्दगी कोई-न-कोई सहारा ढूँढ ही लेती है !

आखिर वह भी दिन आया, जब पुलिस वारंट लेकर पहुंच गयी। फौजी को आज पहली बार ख्याल आया, कि किस बेकार की चीज़ के लिए उसने यह आफत आप बुलाई। माँ, जो पहले इस दिन की प्रतीक्षा किया करती थी, आज घाड़े मार-मार कर रोने लगी। ससुर और ननद

की भी यही हालत थी। बेचारी शोभी की समझ में न आता था कि वह क्या करे। इतने दिनों के असह्य अन्याचारों को सहते-सहते इन अन्याचारों से भी वह लापरवाह हो गयी थी। उसने सोच लिया था कि, वह लकड़ी का जलता हुआ वह कुन्दा है, जो पूरा जल कर राख हो जाने के समय तक जलता ही रहेगा। वह आग मृत्यु के पहले कभी बुझने की नहीं। और बीच में किसी ने पानी से बुझा भी दिया, तो उसकी वही हालत हो जायगी जो, श्मशान पर पड़े अधजले कुन्दों की होती है।

उसके पति को पकड़ कर पुलीस ले जा रही है। घर के लोग रो रहे हैं। और वह चुप है। क्या यह कोई साधारण अपराध है? लेकिन शोभी का कौन-सा अपराध असाधारण नहीं था? घन की चोट खा-खा कर ठोस लोहे के टुकड़े को पतली चादर बन कर क्या घन की चोटों को नये सिरों से अनुभव करना सीखना पड़ता है? वह तो लोहार की मर्जी पर रहता है। चाहे वह जितनी चोटें लगा ले। क्या होगा? टूट ही तो जायगा। शोभी जब वैसी से ऐसी हो गयी, तो ऐसी के बाद क्या होना है? एक मृत्यु रह गयी है। पर उससे भी डर क्या, जब जीवन की चाह ही न बच रही। डरे वह, जिसे जीवन प्यारा होता है। शोभी का क्या?

उसकी इस कठोरता की चर्चा घर-घर वैसे ही व्याप्त हो गयी, जैसे पहले उसकी भुलनी में उलझ कर उसके पति के नौकरी पर न जाने की बात फैल गयी थी। जिस तरह उस दिन शोभी पर बौछारे पड़ी थी, उसी तरह आज भी वह मूसलाधार बन उस पर बरसी। उस दिन उसका वह पहला अनुभव था, इसलिये वह छटपटायी, पर आज? आज महीनों से लगातार बौछार सहते-सहते कच्ची मिट्टी दबते-दबते, कड़ा पत्थर बन गयी थी! क्या बौछार, क्या मूसलाधार वर्षा? क्या असर होना था उस पर?

आखिर किस पहलू चैन मिलेगा शोभी को ? पति रुक गया, तो इसके कारण, इसलिए आफत ! पति को पुलिस पकड़ ले गयी. तो इसके कारण, इसलिए आफत ! घर के लोगो को जो तकलीफ पहुँची, इसके कारण, इसलिए आफत ! कदाचित् पति लौटेगा, तो इसके कारण, इसलिए भी आफत ही होगी । आखिर यह आफतों का सिलसिला कब खत्म होगा ? शोभी कभी-कभी सोचती, कि आखिर ऐसा क्यों होता है, क्यों नाटक, बिना किसी कारण के उसे हर बात में लोग घसीट लेते हैं, तो उसका उत्तर उसे कहीं से भी नहीं मिलता । उस बेचारी का क्या मालूम कि वह सब में कमजोर है, सबसे बेबस है, सब से बेजुबान है, सब से निम्नस्तर है, सबसे परायी है, इसलिए सब उसी पर अपना ज़ोर, अपना अधिकार, अपनी ज़बानदराजी, अपनी धमता, अपनी बेरुखी दिखाते हैं । एक पति को वह अपना बना सकती थी, किन्तु वैसा वह किस दिल में करती ? वह ऊपरी तौर पर उसे अपना बनाने के लिये तैयार भी थी, पर एकाएक आधी की तरह जो इतनी घटनाये उसके सिर पर भहरा पड़ी, तो उसे होगा ही कहा था, या उन परिस्थितियों पर उसका वश ही कहाँ था, कि वह एक क्षण स्थिर मन से अपनी स्थिति के प्रति सनक हो कुछ सोचती, विचारती ? किनारे पर रह कर आदमी धारा के विषय में भले ही सोच ले, पर अरार के साथ सहसा धारा में गिर जाने पर, उसके लिये धारा की मर्जी पर बहने के सिवा चारा ही क्या रह जाता है ?

सासु के लिये अब वह एक ऐसा काँटा बन कर रह गयी, जो कभी निकले और रह-रह कर खटकता रहे ! अब वह उस पर हाथ भी छोड़ने लगी थी । जिसका डर था, वह चला गया था, निर्द्वन्द्व राज हो गया था उसका । अपने जाल में फसी हिरनी के साथ जैसा चाहे व्यवहार करने के लिए जैसे बहेलिया स्वतन्त्र होता है, वैसे ही वह थी शोभी के प्रति ।

एक दिन जब मसुर को मालूम हुआ, कि उसकी पतोह गर्भ में है, तो उसने उसके प्रति सदय होकर अपनी पत्नी को जरा सावधानी से उसके साथ पेश आने की हिदायत दी। सासु को भी कदाचित्त उसके पेट में पनपने वाले अकुर में अपने खून के प्रति कुछ मोह उत्पन्न हो आया। इसलिए उसने हाथ तो रोक दिया, पर जबान की चोट से कोई नुकसान की बात नहीं, ऐसा समझ कर एक हथियार डाल कर भी दूसरे में उसे धमकाती रही।

शोभी को जब यह मालूम हुआ, तो उसे लगा कि आह, वह कैसे यह भार वहन करेगी ?

१६

रास्ते भर बरन की दशा उस चोर की थी, जो गठरी में चोरी का माल छिपाये, उसे बगल में लिये चलता है। बच्ची रोती, चिल्लाती, 'माँ-माँ,' 'बाबू-बाबू' की चीख से डिब्बे को भर देती, भय से फँसी हुई आँखों से चारों ओर घूर-घूर कर देखती कि शायद कहीं उसके मा-बाप दिखाई पड़ जायं। बरन की गाँद से छटपटा कर, हाथ-पैर पटक कर छिटक जाना चाहती ठीक उसी तरह, जैसे मछुए के हाथ में पड़ी मछली। डिब्बे के लोग पूछते—“क्या बात है, बाबू ? बच्ची इतनी रो क्यों रही है”

बरन का दिल धक से रह जाता, कि कहीं कोई उस पर शक न कर बैठे। वह अपने को सभाल कर जवाब देता—“इसकी मा मर गयी है। बेचारी उमी के वियोग में तड़प रही है।” और रूआसा चेहरा बनाकर बच्ची को दुलारने लगता, उसे खिलौने दिखाता, मिठाइयाँ दिखाता, जो ढेर सारी उसने टीसन पर हा खरीद ली थी। पर बच्ची उन पर हाथ मार और भी जोर-जोर से चीखने-चिल्लाने लगती। और यह सिलसिला तब तक जारी रहता, जब तक वह रोते-रोते थक न जाती, छटपटाते-छटपटाते उसके हाथ-पैर शिथिल न हो जाते और करीब-करीब बेहोश हो,

हिचकियाँ लेंते-लेंते वह सो न जाती। नींद में भी वह चिट्क-चिट्क उठती और फिर जब नींद उचटती, तो वही रोना, बिलखना, छटपटाना.....

बरन सोचता था, कि एक-आध दिन में वह हिल जायगी। माँ बच्चे के लिए ऐसी नहीं हुआ करती, कि वह उसे एक-आध दिन में भुला दे। उसके चीखने-चिल्लाने का सिलसिला खत्म होता न मालूम हुआ तो बरन बेहद परेशान हो उठा। क्या करे, उसकी समझ में न आता। अजीब आफत उसके सिर पर पड़ गयी। लोगो की आँखें उसे हमेशा अपनी ओर घूरती दिखायी देती। हर क्षण उसे हदमा लगा रहता कि कहीं उसका रहस्य प्रगट न हो जाय। पर बेचारी बेजबान बच्ची कैसे किसी से कुछ कहती। आस-पास बैठे लोग उसे पुचकारते, तो अजनबियो को देख वह और भी बिलबिला उठती।

जब और कोई चारा न रहा, तो उसने एक बड़े टीसन पर एक बोतल ब्रांडी ली। उसकी परेशानी को चैन आ गया। बच्ची जब भी रोना शुरू करती उसे दवा की तरह एक-दो चम्मच पिला देता। बच्ची की चेतना पर एक नशे का आवरण-सा चढ़ जाता। तब उसे वह फल और मिठाइया खिला सुला देता।

बरन ने अभी तक यह तै न किया था, कि उसे कहां जाना है। चार दिन योंही वह जहाँ जो गाड़ी मिल गयी, उसी पर सफर करता रहा। उसे कहीं भी रुकने में डर लगता था। वह तै न कर पाता, कि ऐसी जगह कौन-सी है, जहा वह निर्द्वन्द्व रह सके। इतना तो वह जरूर सोचता था कि उसे कहीं दूर जाकर डम पछी का घोंमला बनाना है जहाँ उसके पहले चमन की हवा तक न पहुँचे। उसके रोने की दवा पा जाने पर उसके दिमाग को कुछ सोचने का वक्त मिला। बहुत सोच-समझ कर आखिर उसने तै किया, कि हिन्दुस्तान के आखिरी कोने, कन्याकुमारी, में वह जायगा, जहाँ की नयी जमीन, नयी हवा, नये

लोग, नयी भाषा, नया वातावरण उसकी नयी दुनिया बसाने के लिए ठीक होगा ।

सामने समुद्र को लहरे मारता देख उसे अपना वह सपना याद आ गया । उस सपने को भी सच होना था, उसे इसका ख्याल कब हुआ था ? और कौन जाने, उस सपने का समुद्र, जो उस समय उसके उपचेतन मस्तिष्क में उभरा था, उसी ने अज्ञात रूप से चेतन मस्तिष्क को कन्या-कुमारी में आ बसने के लिये प्रेरित किया हो । उस सपने की हर बात उसके मस्तिष्क में चलचित्र की तरह हर दृश्य को लिये चलने लगी । उस उपवन में शोभी का मिलना, घोड़े का उड़ना, समुद्र के किनारे आकर खड़े होना, समुद्र को मुग्ध दृष्टि से देखना, फिर मुड़ कर देखना कि शोभी की जगह वह बच्ची खड़ी है । उसने पाम खड़ी बच्ची को गोद में उठा उसका मुख चूम लिया । उसमें उसे, पता नहीं, क्या मजा आया, क्या याद आया, कि उसकी आंखें भीग गयी ।

त्रिवेन्द्रम से बस कन्याकुमारी पहुंची थी, तो शाम हो गयी थी । उस रात वह रामास्वामी अय्यर धर्मशाला में ठहर गया । खाने के लिये फल-मिठाइयाँ उसके पास बहुत थी । उसने उस बच्ची की खातिर यह चीजे खरीदी थी । सच पूछा जाय, तो उसने रास्ते में कहीं कुछ न खाया था । उसे इतनी ताब कहा थी, चैन कहाँ था, कि कुछ खाता-पीता । बच्ची ने भी जो खाया-पिया था, वह भी क्या था ? फिर भी हर स्टेशन पर जो भी नयी चीजे उसे दिखायी दी थीं, उसने यह सोच कर खरीद ली थीं, कि बच्ची उसे शायद पसन्द करले । इस तरह जहाँ फलों, मिठाइयों का ढेर लग गया था, वही बच्ची के लिये सैंकड़ों खिलौनों, फ्राकों, टोपियों, जूतों, मोजों और उस हर चीज का ढेर लगा गया था, जिसे उसने बच्ची के लिये जरूरी समझा था ।

ब्राण्डी के कारण बच्ची की आंखें चढ़ी हुई थी, और उसे किसी बात का कोई ख्याल न था । उसे जिस हालत में वह छोड़ देना, उसी

हालत में वह खड़ी, बठी या लेटी रहती थी। एक ओर कमरे में होल-डाल फैला, उस पर उसे लेटा दिया। फिर सामानों को ठीक तरह से रखवाते-रखवाते अधेरा झुकने लगा। उसने एक कुली से मोमबत्ती लाने के लिये कहा, तो वह मुंह फैला कर एक क्षण उसकी ओर देखने के बाद अंग्रेजी में बोला कि उसे क्या चाहिये। सुन कर वह दग रह गया। कुली की ओर देख कर, यह सोच कर वह आश्चर्य में पड़ गया, कि यह कुली भी अंग्रेजी जानता है। तब उसने पैसे दे, उससे अंग्रेजी में मोमबत्ती लाने के लिये कहा। वह चला गया, तो यह जान कर उसे खुशी भी हुई, कि वह उसकी भाषा नहीं समझता। उसकी उपस्थिति में भी वह निर्वृन्द बच्ची से बात-चीत अपनी भाषा में कर सकता है। उसने चुपचाप अपनी ओर टुक-टुक ताकती बच्ची की ओर देखा। फिर लपक कर उसे गोद में उठा इधर-उधर की चीजें दिखाने लगा। पर बच्ची तो जैसे मूरत बन गयी थी। बरन को अब पहली बार कमरे में इधर-उधर देखने के बाद ख्याल आया कि कमरा काफी अच्छा है। उत्तर भारत की धर्मशालाओं की काली-कौठरियों को भी उसने कई बार देखा था। उनसे इस कमरे का कोई मुकाबला न था। यह कमरा तो औसत दर्जे के मकान के कमरे की ही तरह पक्का, हवादार और आरामदेह था। उसे क्या मालूम कि उत्तर भारत के मारवाड़ी-नगुशन की कीर्ति-पताका पहराने वाली वे धर्मशालाएँ उतनी ही गन्दी, तग, अधेरी होती हैं, जितना उनका झूठी कीर्ति-लिप्सा से अन्धा हुआ मस्तिष्क और हृदय सकीर्ण, धर्मान्ध और स्वार्थी होत है। यह धर्मशाला रियासत की ओर से ऐसी इमलिये बनायी गयी थी, कि बाहर का गात्री यहाँ ठहर कर जाय, तो त्रावनकोर के प्रति ऐसा ख्याल लेकर जाय, कि वाह, क्या उन्नतिशील रियासत है यह, यद्यपि यहाँ के लोगों की दशा इतनी दयनीय, दरिद्रतापूर्ण और शोचनीय है, कि गरीब हिन्दुस्तान में वैसे कहीं देखने को न मिलेगा।

मोमबत्ती जलाकर उसने उसी कुली से बच्ची के लिये दूध मँगाया।

फिर सोने के लिये एक ओर बिस्तर लगा खाने का सामान कर, बच्ची को ले बैठ गया। उसने बच्ची को जो-जो खिलाया, वह खाती गयी। उसका मुँह मशीन की तरह चलता रहा और आँखें वैसी ही निर्भाव-सी उसकी ओर देखती रही। बरन को इस समय पहिली बार उसका वैसे देखना, वैसे खाना अजीब-सा लगा। साथ ही उसे दुख भी हुआ, कि उसने यह क्या हालत बना दी है उस सदा खेलती, हसती, नाचती बच्ची की? उसने बहुत चाहा, कि वह बच्ची कुछ बोले, पर उसके तो जैसे होट ही सी गये थे। उसने उसे बहुत गुदगुदाया, कि वह हँसे, पर उसका तो शरीर ही जैसे पत्थर का सा हो गया था। उसकी ऐसी अवस्था देख उसे भय भी हुआ, कि कहीं यह बच्ची सदा के लिए ऐसी ही न हो जाय और उसी वक्त उसने फिर कभी उसे ब्राण्डी न देने की बात तै कर ली।

बच्ची को दूध पिला उसने बिस्तर पर सुला दिया। फिर दरबाजा बन्द कर उसे अपनी गोदी में सटा वह भी लेट गया।

ताक पर मोमबत्ती धीमी-धीमी जल रही थी। कमरे में मद्धिम रोशनी फैली हुई थी। चारों ओर शांतता छाई हुई थी। कई दिनों का थका-मांदा बरन आराम की लम्बी-लम्बी साँसें लेता, बच्ची के मुखड़े को एकटक निहार रहा था, उगलियों से धीरे-धीरे उसकी उलझ गयी लटों को सुलझा रहा और मन में न जाने क्या-क्या सोच रहा था। बच्ची की उभरी-उभरी, स्याह पड़ी पलके मुंद गयी थी, पतले-पतले, कुम्हलाये होंट सट गये थे, मुरझाये चेहरे पर एक गहरी मलीनता की छाया का आवरण पड़ गया था, दिमाग की अचेतनता में भी जैसे अपनी माँ का वियोग उसका पीछा न छोड़ रहा हो और धीरे-धीरे उसकी खुशियों, उसके स्वास्थ्य का खून चूस रहा हो। इतने दिनों के बाद बरन ने उसे ध्यान से देखा, तो पहले की उस बच्ची और आज की इस बच्ची में पड़ गये अन्तर को लक्ष्य कर उसका कलेजा धक से कर गया। उसने एक शंका से काप कर उसे अपनी छाती में चिपका लिया। फिर न जाने क्या ख्याल उसके मस्तिष्क में आये, कि उसकी आँखों में भर-भर आसू

गिरने लगे। वह विह्वल-सा हो होठों में बुदबुदाया—“नही, नही, मैं ऐसा नहीं होने दूँगा। अपना खून भी देकर तेरे गालों की गुलाबी कायम रखूँगा। अपने प्राण तक न्यौछावर कर तुझे खुश रखूँगा, मेरी बच्ची! तू मेरा प्राण है! तुझ पर मैं अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दूँगा! तुझे तेरे घर में भी यहाँ अधिक सुख दूँगा, तेरी माँ से भी अधिक प्यार दूँगा! तुझे मैं प्यार करता हूँ, मेरी बच्ची!” और उसके गाल पर अपनी बरसती आँखें धर उस वक़्त तक सिसकता और ठंडी साँसे लेता रहा, जब तक कि जलते-जलते मोमबत्ती बुझ न गयी, कमरे में अन्धकार न छा गया।

देर से सोने के काग़ग मुवह में वरन गाड़ी निद्रा में डूबा पड़ा था। बच्ची की आँखें खुली, तो उसका दिमाग़ साफ़ हो गया था। इतने दिनों तक जो उसकी चेतना पर एक अचेतनता का अन्धकार छाया रहा, जैसे उसी के नीचे उसके कोमल मस्तिष्क पर अकित पहले की सब रेखाएँ दब कर मिट गयी थी। इस समय वह हकबका कर, मुँह बाँधे अपने चारों ओर वैसे ही देख रही थी, जैसे नया बच्चा गर्भ के अन्धकार से बाहर आ प्रकाशपूर्ण नयी दुनिया को देखता है। उसकी आँखों के सामने खिलौनों का ढेर पड़ा था। अच्छे-अच्छे, रंग-बिरंगे, खुशनुमा, लुभावने खिलौनों में उसकी आँखें उलझ गयी। एक-एक कर उसने सबको देखा। फिर मुस्कराती हुई धीरे से उठी और खिलौनों के पास जा उनमें से एक को उठा ध्यान से, मुग्ध आँखों से देखने लगी। फिर दूसरे खिलौने को उठा कर देखा, फिर तीसरे को, और फिर शीघ्रता से कई खिलौनों को उठा गोद में भरने लगी। गोद छोटी थी और खिलौने इतने अधिक। वह सब खिलौनों को अपनी गोद में भर लेना चाहती थी। पर यह कैसे सम्भव था? जब यह असम्भव हो गया, तो वह बैठ कर दोनों हाथ फैला, सब खिलौनों को अपनी बाहों में समेटने लगी, पर जब उसकी नन्ही-नन्ही बाहों में भी इतने सारे खिलौने न आये, तो वह उन पर लोट गयी, जैसे

उनके स्पर्श का अग-अग से वह अनुभव करना चाहती हो, जैसे अपने मे ऐसा करने से वह यह आत्म-सन्तोष प्राप्त कर लेना चाहती हो, कि वे सब खिलौने उसी के हैं, सिर्फ उसी के हैं। कई मिनट तक उसी तरह हाथ-पैर फैलाये उन खिलौनों पर पट रहने के बाद वह हाथों में कुछ खिलौने लिये उठी और उनसे खेलने लगी।

बरन की आँखें खुली, तो पास में बच्ची को न पा उसका कलेजा धक से कर गया। वह हड़बड़ा कर उठने ही वाला था, कि खिलौनों के पास खेलती बच्ची पर उसकी दृष्टि पड़ गयी। उसकी आँखों में सहसा एक आलोक भर गया। एक मुस्कान उसके अधरो पर खिल गयी। वह मुग्ध हो ठेहनु और कुहनियों के बल बँठ उसे देखने लगा।

बच्ची की निगाह उस पर पड़ी, तो वह उसकी ओर वैसे ही देखने लगी, जैसे इस नयी दुनिया में वह पहले इन्सान से परिचित हो रही हो। उसका वह मुस्कराता हुआ मुखड़ा उमे बड़ा भला लगा। वह आँखें मलका-मलका जैसे उसकी रूप-रेखा को अपने मस्तिष्क में अभी अंकित कर ही रही थी, कि बरन ने दोनों हाथ फैला कर कहा—“मुझे भी खिलौने देगी ?”

बच्ची ने अपने खिलौनों की ओर देखा, फिर उसके होठ ऐसे फड़फड़ाये, जैसे वे अपनी भाषा भूल गये हो। फिर धीरे-धीरे उसे ज्ञान हुआ कि वह उसकी बात को समझती है और उसका जवाब भी वह दे सकती है। पर उसके मुँह से कोई बात न निकली। वह धीरे से उसकी ओर देखते ही उठी और ठिठकती-ठिठकती उसकी ओर बढ़ी। पास आ उसकी आँखों से आँखें मिलाये ही उसने हाथों के खिलौने उसकी ओर बढ़ा दिये। बरन ने खिलौनों से हाथ सरका उसके हाथ पकड़ लिये। कहा—“आओ, यहाँ बैठ कर हम खेले।”

बच्ची कुछ समझती, कुछ न समझती हुई आँखों से एकटक उसकी ओर देखते उसके हाथों के सहारे ही उसके पास आ कर बैठ गयी। बरन ने उसके हाथ की मोटर ले फर्श पर रख, उसमें चाभी दे, छोड़

दिया । घर आवाज करती मोटर दौड़ कर एक दीवार से जा टकरायी । बच्ची की पुतलियों में इतनी देर के बाद हरकत हुई । बरन ने कहा—
“जाकर उसे ले आओ, तो फिर चलाये ।”

बच्ची धीरे से उठी और हल्के-हल्के कदम रखती मोटर को उठा, बरन के पास लौट, उसके हाथ में दे दिया । अब वह मोटर को देख रही थी । बरन ने फिर चाभी दे वैसे ही उसे छोड़ दिया और फिर उससे लाने को कहा । अब की बच्ची के कदमों में कुछ तेजी आ गयी थी । उसने उसी तरह मोटर लाकर फिर बरन को दे दी । बरन ने फिर वैसे ही किया, अब बच्ची बिना कहे ही मोटर की ओर लपक गयी । करते-करते मोटर के पीछे दौड़ने लगी । ताली बजा बजा, खुश हो-हो थिरकने लगी । जब बरन ने मोटर चलाना बन्द कर दिया, तो वह मचल कर बोली—
“फिर चलाओ !”

बरन ने खुश हो, खिलौनों की तरफ इशारा कर एक रेल का इंजन दिखाते कहा—‘मोटर चलाते-चलाते हार गया । अब इंजन चलायेगे । वह पड़ा है । लाओ ।’

बच्ची एक-एक खिलौने पर हाथ रख उसकी ओर देखती और वह कहता—“वह नहीं, वह !” इशारों-इशारों में ही वह इंजन को पहचान गयी । उसे उठा कर लायी, और बरन ने उसे पहली बार चलाया, तो उसकी सीटी की आवाज सुन और तेज रफ्तार देख बच्ची खुशी से उछल पड़ी ।

इस तरह इन खिलौनों ने पहली बार जो बरन से उसका नया-नया परिचय कराया, उससे उस बच्ची को वह बरन बड़ा ही अच्छा लगा । अब वह बेखटके उसकी गोद में बैठ गयी । खिलौनों के बारे में उससे प्यारी-प्यारी बातें करने लगी । उसके इस आश्चर्यजनक परिवर्तन को न समझते हुए भी बरन ने उसे समझने की कोशिश न की । उसने एक सन्तोष और खुशी की सास ली और उन खिलौनों का, जिन्होंने उसे

उस बच्ची क इतने समीप और इस रूप मे लाकर खड़ा कर दिया था, एक-एक का परिचय दिया —“यह हवाई जहाज है । यहा इसकी चाभी है । यो चाभी दी जाती है और यो छोड़ा जाता है ।” हवाई जहाज छत के नीचे चक्कर लगा नीचे गिर पड़ा ।

“यह ढोल वाला है । यहाँ इसकी चाभी है । यो चाभी दी जाती है फिर यो ज़मीन पर रख दिया जाता है ।” ढोल बजने लगा और उसकी ताल पर बच्ची की पुतलिया थिरकने लगी ।

“यह सिपाही है ...”

“यह साहब है... ”

“यह मेम है...”

“यह जापानी बबुआ है । इसके ये गोल-गोल, फूले-फूले गाल देखो । एक चुम्मा इसे दे दो न । देखो, कैसे देख रहा है तुम्हारी तरफ ! एक चुम्मा मांग रहा है । दे दो ।” कह कर उसने उसके होठो के पाम उसका गाल कर दिया । बच्ची उसके गाल पर चुम्मा देने लगी, तो बरन ने धीरे से अपने होठ उसके गाल पर रख दिये ।

१७

शोभी के शरीर का खून तो योही सूख रहा था । उसके पेट मे जब एक दूसरा जीव भी उसके खून को चूसने वाला पैदा हो गया, तो उसमे क्या शेष रह जाता, यह सहज ही समझा जा सकता है । उसका चेहरा मुर्दे की तरह पीला पड गया । आंखे सफेद हो कोटरों में घुस गयी । गालों के मांसहीन हो जाने से हड्डियां नंगी हो उभर आयी । होंठ रक्तहीन हो विकृत हो गये । छातिया कुछ फूलकर ढल गयी । हाथ-पांव दुबले-पतले, जैसे घले हुए और पेट पहाड-जैसा हो गया । लटे हुए बाल चेहरे पर हमेशा पडे रहते । इस रूप मे शोभी को देख कर क्या कोई पहचान सकता था कि यह वही शोभी है, जिमे नारी होकर भी

उसकी ननद देख कर एक दिन मोहित हो गयी थी, और उसके अधर चूम लिये थे। ननद उसे देखती, तो उसका वह पहला रूप उसकी आँखों में घूम जाता और वह रो पड़ती। उसे भौजी पर बड़ी दया आती। उसे क्या मालूम कि उसे इस दशा तक पहुँचाने में उसका भी एक हिस्सा रहा था। बेचारी अकेली पड़ी शोभी का अगर वह उस समय सहारा बनी होती, तो कौन जाने कि शोभी आज किस रूप में दिखाई देती। अब वह उसका बहुत ख्याल रखती, उसके खाने-पीने और आराम का पूरा इन्तजाम करती, उसका मन बहलाने की भी चेष्टा करती, पर शोभी का दिल जो उससे या उसके घर वालों से एक बार टूट चुका था, तो जुड़ने वाला न था। मामु उसकी यह दशा देख अब डरने लगी थी, कि कहीं वह मर न जाय। इन डर की भावना में कोई दुख मिश्रित हो, ऐसी बात नहीं। पतोहू का मर जाना किसी भी सामु के लिये कोई दुख का विषय नहीं होता। उसे तो वह एक खरीदी हुई दासी समझती है। जब तक वह उसकी मेवा करती रहे, खानी-पीती पड़ी रहे। उसकी इच्छा के विरुद्ध अगर उसने कोई दूसरी राह अपनायी, तो सब-कुछ खत्म। शोभी-जैसी 'व्यर्थ' की पतोहू के लिये उसकी सामु क्या दुख मनाती? बल्कि उसे तो खुशी होती कि उसके मर जाने पर शायद कोई 'लायक' पतोहू मिल जाय, यद्यपि किसी भी सामु के मुँह से यह आज तक नहीं सुना गया, कि उसकी पतोहू लायक है! उसे जो डर था, वह इसका कि कहीं पेट में बच्चा लिये मर कर वह चुड़ैल या भूतनी बन उसके लिये जीवन भर के लिये एक आफत न बन जाय। इसी आफत से बचने के लिये जहाँ वह पहले उसे जल-जल कर खोभती, अब उसे खाने-पीने के लिए डाँटने डपटने लगी, ताकि उसके शरीर में ताकत आये और वह बच्चा जनने के पहले ही न मर जाय। साथ ही उसे इसकी भी किञ्चित् आशा थी, कि शायद उसके गर्भ से लड़का पैदा हो। उस लड़के के प्रति उसे अवश्य माह था। वह यह भी सोचती थी कि अगर बेटा जन वह मर भी गयी, तो वह उसे पाल-पोस लेगी।

शोभी को अपने गर्भ के वच्चे का मोह था या नहीं, क्या कहा जाय । शोभी के हृदय में मातृत्व की कोई भावना कभी उठी हो, ऐसा उसे ख्याल नहीं । जिस रूप में और जिस परिस्थिति में यह अनिच्छित जीव उसके पेट में आया उसने उसे यही मोचने के लिये बाध्य किया, कि आफत कभी अकेली नहीं आती । जिस तरह एक-एक कर अनगिनत आफतें उस पर आती गयीं, उसी तरह उसने समझा कि उन आफतों में एक वृद्धि और हो गयी । जिस तरह पत्थर बन कर, बिना किसी रोक-थाम की चेष्टा किये वह उतनी आफतें भेलती आ रहा थी, उसी तरह इस आफत का भी उसने सिर-आँखों पर लें लिया । उसके नतीजे के प्रति भी वह उसी तरह निर्भाव रही, जिस तरह और आफतों के प्रति । फिर मातृत्व का भाव केवल इसीलिये तो नारी में उदय नहीं होता, कि वह एक पुत्र चाहती है । इस भाव को उस नर में अलग तो किसी भी हालत में किया ही नहीं जा सकता, जिसके प्रति नारी आकर्षित हो रति की कामना कर आनन्द का उपभोग करे । इस उपभोग की नीव पर ही तो नारी के मातृत्व का पवित्र मन्दिर खड़ा होता है । जहाँ इस तरह के उपभोग का अभाव हो, वहाँ मातृत्व की कभी कल्पना भी नहीं की जा सकती, या की भी जा सकती है, तो वह उसी प्रकार की विकृति होती है, जैसे किसी बरगद के पेड़ के खोखले से उग कर आम, ताड़, या और किसी चीज का पेड़ खड़ा हो जाता है । बरगद के तने से ही रस को खींच वह पलता और बढ़ता है, पर बरगद की जड़े उसे भी रस पहुँचाती हैं, उन्हें इसका कहाँ ज्ञान होता है ? इन्हीं जड़ों को भी हालत उस नारी की होती है, जिसे जबरन उसकी इच्छा के विरुद्ध विकृत मातृत्व का भार कोई नर दे देता है । कहा जाता है, कि नारी अपने पुत्र में अपने 'पति' का प्रतिरूप देखती है, इसका मतलब उस उपभोग-पात्र के प्रतिरूप के सिवा और कुछ भी नहीं है । जहाँ उस पात्र में उस रूप का अभाव हो, वहाँ नारी अपने पुत्र में जो रूप देख पाती है, वह उसके साथ किये गये बलात्कार की ही तरह जन्न, कुत्सित, घृणित और दुःखदायी के सिवा क्या हो सकता है ? फिर

शोभी के हृदय में इसमें प्रतिकूल भावनायें कैसे उठती ? जिसने अपने पति के सहयोग में उस उपभोग के आनन्द का एक बार भी अनुभव न किया, जिसके साथ सदा ही उसका पति बलात्कार ही करता रहा, आज वह मानव की कोमल, सुखद, मधुर भावना का अनुभव भला कैसे कर पाती ? इसके प्रतिकूल वह पेट में पड़ा पिण्ड उसे बार-बार इस बलात्कार, अत्याचार और पीड़ा की याद दिला, उसके हृदय को एक क्षोभ, घृणा और दुःख में भगने के सिवा क्या करता ?

कहा जा सकता है, कि शोभी जो आज इस दयनीय, निम्सहाय, निष्प्रयोजन जीवन की व्यर्थता की अवस्था को प्राप्त हुई, उसका कारण उसका प्रेम ही था । पर यह कहना 'प्रेम' की किया पर एक युग में चली आयी रुढ़ि-भावना में प्रेरित हो अपनी बौखलाहट प्रकट करने के सिवा और कुछ नहीं । शोभी अपनी समुराल इसी भावना को लेकर आयी थी, कि वह अपने पति को वह सब देगी, जो एक पत्नी में उसे मिलना चाहिए । हृदय से वह विवश थी, किन्तु शरीर के समर्पण से इनकार करने की बात उसके मन में भी न उठी थी । यदि उसका पति बल, अधिकार को प्रयोग न कर प्रेम से ही उसे अपने निकट खींचने का प्रयत्न करता, तो यह सम्भव न था, कि धीरे-धीरे शोभी पर एक नया स्कार चढ़ता, और वह अपने जीवन का एक सुखमय मार्ग निकाल लेने में समर्थ होती ? पर पुरुष तो नारी को अपनी कामेच्छा-पूर्ति के साधन के सिवा कुछ मानता ही नहीं । ब्याह क्या हो जाता है, उसे नारी पर मनमाना करने का जैसे अधिकार मिल जाता है । भूखा पुरुष उस पर वैसे ही टूट पड़ता है, जैसे भूखा आदमी खाने पर । खाना निर्जीव वस्तु है, उसकी अपनी कोई भावना नहीं होती, पर नारी तो वैसी नहीं है । नारी की भी अपनी भावनायें होती हैं । वह भी चाहती है, कि उसकी भावनाओं की कद्र की जाय । पर कौन पुरुष है, जो उसकी भावनाओं की कद्र करता है ? कौन पुरुष है, जो ब्याह के दिन से ही नारी को अपनी भावनाओं, इच्छाओं और आज्ञाओं का गुलाम बनाना शुरू

नहीं कर देता ? अक्षम नारी के सामने दबते जाने के सिवा चारा ही बचा होता है ? दबते-दबते एक दिन वह शून्य हो जाती है । उसकी भावनाएं मर जाती हैं, इच्छाएं कुण्ठित हो जाती हैं । पुरुष का एक-छत्र राज्य स्थापित हो जाता है । और कहने वाले इसे मुन्दर रूप देकर यों कहते हैं, कि नारी पुरुष में लय होकर, एक सुख का साम्राज्य स्थापित करती है । पर यहाँ दो के एक होने की बात कैसे आती है ? यहाँ तो जो है, वह यही है, कि एक मिट जाती है, खत्म हो जाती है, और दूसरा, केवल दूसरा रह जाता है । इस अवस्था पर पहुँची नारी को जीवित शव की ही मजा दी जा सकती है । और शोभी इस मजा को आज चरितार्थ कर रही थी ।

ऊपर से उमने कभी भी किसी पर यह प्रकट न होने दिया, कि उसके अन्दर इन सब यातनाओं के नीचे एक प्रेम की व्यथा भी है । इस प्रेम की व्यथा ने जो उसका साथ न छोड़ा, इसका भी कारण यही था, कि उसे यहाँ किसी का प्रेम किसी भी रूप में न मिला । यदि यहाँ नये प्रेम की किसी प्रकार भी उसके लिये व्यवस्था हो जाती, तो इसमें कोई मन्देह नहीं, कि वह पुराने प्रेम को धीरे-धीरे भूल जाती या कम-से-कम उस प्रेम की तीव्रता तो खत्म हो ही जाती । पर जब उसे, नया कुछ न मिला, तो पुराने को हृदय से चिपकाये रहने के सिवा और चारा ही उसके सामने क्या था ? फिर जो अकारण उसे पति और सासु के जुल्मों का शिकार बनना पड़ा, इसकी जिम्मेदारी किसके सिर जाती है, यह समझना कुछ मुश्किल नहीं । इसलिये प्रेम को दोष देना लकीर को पीटने के सिवा और कुछ नहीं । जिन परिस्थितियों ने जकड़ कर शोभी का रक्त-मास चूस लिया था, उसके नारीत्व, मातृत्व का गला घोट दिया, उसके जीवन की सार्थकता को खत्म कर दिया, उसे शून्य बना दिया, उसकी जिम्मेदारी उस सामाजिक व्यवस्था पर है, जो ऐसी परिस्थितियों को पैदा करती है, जो नारी पर पुरुष के पशुत्व का एकछत्र अधिकार देती है, सासु को पतोहूँ के साथ एक खरीदी हुई दासी की तरह व्यवहार

करने की क्षमता देती है, और नारी को चुपचाप मिट जाने के लिये विवश करती है। जब तक यह व्यवस्था नहीं बदलती, शोभी की तरह शून्य नारियाँ घर-घर में सड़ती ही रहेंगी, उनका उद्धार नहीं हो सकता।

यह बात बरन की और दृष्टि उठाने से और भी साफ हो जाती है। कहना न होगा, कि एक ही परिस्थिति में दोनों एक ही बिन्दु से दो बूदों की तरह छिटक कर अलग-अलग हुए थे। उनमें स शोभी का यह हाल है, और बरन का ? बरन पुरुष है, उसे समाज ने सक्षम बनाया है, उसे समाज ने अधिकार दिया है। वह अपनी क्षमता से एक नयी राह बनाने में समर्थ होता है, शोभी की तरह विवश हो घुल-घुल कर मिट नहीं जाता। यदि शोभी भी उतनी ही सक्षम होती, तो क्या वह भी अपने लिये कोई मार्ग न निकाल लेती ? पुरुष और नारी के लिये हमने अलग-अलग कमौटियाँ तैयार कर रखी हैं, उन्हें देखने-परखने के हमने अलग-अलग दृष्टिकोण बना लिये हैं। इसलिये एक तरह से उन्हें देखना हमें सह्य ही नहीं होता। यह दृष्टिकोण का अन्तर ही जहाँ नारी को मिट जाने के लिये बाध्य करता है, वही नर के मनमाने कार्यों को भी शह देता है। इसलिये जब तक यह अन्तर नहीं मिटता, नारी को सच्चे मानी में जीने का अधिकार नहीं मिल सकता, पुरुषों से शासित समाज में उन्हें विकसित होने का अवसर नहीं मिल सकता। और जब तक यह नहीं होता, नारी की समस्या हल ही नहीं हो सकती !

इस दृष्टिकोण के अन्तर की तह में जो बात है, उसे भी हमें समझ लेना चाहिये। कहने वाले यह कहते हैं, कि नारी और पुरुष का प्रकृति ने अलग-अलग तत्त्वों से निर्माण किया है, उनकी शारीरिक रचना की गठन में आधारभूत अन्तर है। इस अन्तर को नारी के गर्भ-धारण की बात ले कर खूब उछालने की कोशिश की जाती है। कहने वाले इसी बात को लेकर यहाँ तक कह जाते हैं, कि पुरुष छुट्टा साँड़ है, वह चाहे जहाँ से भी चर कर आ जाय, उस पर कोई धब्बा नहीं लग सकता। पर नारी कच्ची रसोई है। जहाँ किसी से छू गयी, कि कलङ्कित हुई और

उसके प्रमाण-स्वरूप वे उसके क्षत अङ्ग और पेट की ओर संकेत कर देते हैं। एक ही क्रिया कर जहां पुरुष पवित्र बना रहता है, वहीं नारी कलङ्कित क्यों ठहरा दी जाती है ? इसका कोई भी उत्तर क्या किसी भी दशा में तर्क-सङ्गत हो सकता है ? नारी के क्षत अङ्ग और गर्भ की बात लेकर उसे कलङ्कित करने का अधिकार किसी को कैसे प्राप्त हो जाता है ? कर्म का फल अवश्यम्भावी और प्राकृत है। पुरुष के साथ नारी जो कर्म करती है, उसके फल-स्वरूप उसके, अङ्ग के क्षत होने और गर्भ धारण करने में कौन-सी अस्वाभाविकता है। फिर इस स्वाभाविक कार्य-कलाप को हम कलङ्क का प्रमाण-पत्र क्यों समझते हैं ? इसका कारण सामाजिक है। हमने समाज में यह व्यवस्था बना दी है, कि इस तरह का कार्य करनी वाली नारी कलङ्किनी है, बस। और इस व्यवस्था के पीछे पुरुष की वही मनोवृत्ति है, कि एक नारी एक विशेष पुरुष की सम्पत्ति है, उसके साथ उपभोग का अधिकार केवल उसे ही है, और यदि वह नारी दूसरे पुरुष की ओर आख भी उठा कर देख ले, तो निरस्कार की पात्र है, अव्वलन तो उसे ऐसा करने का अधिकार ही नहीं। नारी को उसी पुरुष से सन्तुष्ट रहना चाहिये हर हालत में। और पुरुष को ? उसके विषय में तो कुछ कहना ही व्यर्थ है, क्योंकि वह छुट्टा साँड़ है ! यह भी कहा जाता है, कि नारी को जो इस व्यवस्था में बाँधा गया है, वह इसलिये कि उसकी स्वच्छन्दता के कारण समाज में व्यभिचार, उच्छृङ्खलता और अनैतिकता के फैलने का भय है। जैसे इनके लिये नारी ही अकेली जिम्मेदार होती है, पुरुष का तो उसमें हाथ ही नहीं रहता ! ऐसे लोगों को तनिक भी लज्जा नहीं आती यह सोचते कि नारी अकेले ही इन बातों की जिम्मेदार कैसे है ? इनके आगे बढ़ कर वे खून और बच्चे की ऐसी बात करते हैं, कि ऐसे बच्चे को समाज में कौन स्थान दिया जाय, उसके पालन का भार किस पर पड़े, जैसे किसी पुरुष का उस बच्चे को पैदा करने में कोई हाथ न हो, जैसे नारी ने अकेले ही इसे पैदा कर लिया हो। ऐसे गैरजिम्मेदार पुरुषों को ऐसी बातें करने

से अच्छा यह है, कि वे चुल्लू भर पानी में डूब मरें !

सवाल हो सकता है कि जैसा कहा गया है, यदि सचमुच यह नारी के प्रति अन्याय है, तो यह कैसे युगों से चला आ रहा है, कैसे नारी इसे विवश हो बर्दाश्त करती आ रही है ? इस प्रश्न की जड़ में युगों से चली आयी नारी की संस्कारगत गुलामी है और उस गुलामी का ठोस कारण आर्थिक है। जिसके हाथ में अर्थ है, उसके हाथ में शक्ति है। पुरुष युगों से अर्थ का मालिक बन शक्तिमान रहा है। युगों से उत्पादन के साधनों पर अधिकार रख, उत्पादक बन, वह शक्ति को अपनी मुट्ठी में रखता आया है। नारी को कोमलांगी, शक्तिहीन, विलास की वस्तु बना, उसे उत्पादन के क्षेत्र से अलग रखता आया है, अशक्त बनाता आया है, ताकि उसे गुलाम बनाने में उसे आसानी रहे। इसके लिये उसने सामाजिक व्यवस्थाये बनायी हैं, कि किसी भी सम्पत्ति की वह उत्तराधिकारिणी न हो, उसका बाहर आ कोई काम करना शर्म की बात समझी जाय, आदि, आदि, !

जब तक यह व्यवस्थाये चलती रहेंगी, हमारे समाज का एक अंग गुलाम और अपग बना ही रहेगा। स्वार्थान्ध पुरुष स्वयं कभी भी इन व्यवस्थाओं को ढीला नहीं कर सकता। इसलिये उन पुरुषों को, जो नारी को अपनी तरह ही समर्थ देखना चाहते हैं, और स्वयं नारियों को एक साथ मिल अपनी गुलामी की नींद से जग कर इस अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करना होगा, नारियों को आर्थिक रूप से सशक्त बनाना होगा और उस समाज, और उसकी व्यवस्थाओं को तोड़ कर एक ऐसा समाज बनाना होगा, जिसमें पुरुष और नारी के बराबर अधिकार हों, जिसमें विवाह, नैतिकता, कलंक और व्यभिचार की मर्यादायें बदल जायें, जिसमें नारी-पुरुष के पारस्परिक सम्बन्ध का आधार प्रेम हो, जिसमें कन्धे-से-कन्धा मिला कर नारी और पुरुष विकास की ओर अग्रसर हों, जिसमें पुरुष न नारी का शोषण कर सके, न नारी पुरुष का, जिसमें नारी और पुरुष एक या दूसरे पर आश्रित न हो, सच्चे सहयोगी हों,

जिसमें मन चाहा विवाह करने की छूट हो। जिसमें बच्चे समाज के भावी नागरिक समझे जायँ और उनके पालन का उत्तरदायित्व समाज का एक महत्वपूर्ण धर्म हो।

इस तरह हम देख सकते हैं कि स्त्रियों की पूर्ण स्वतन्त्रता और पुरुषों के बराबर अधिकार उस समय तक नहीं प्राप्त हो सकते, जब तक उन्हें केवल खानगी कामों में उलझाये रखा जाता है और सामाजिक उत्पादन में पूरा-पूरा हिसाब लेने का अवसर नहीं दिया जाता। स्त्रियों को इस गुलामी से तभी मुक्ति मिल सकती है, जब वे अधिक-से-अधिक सख्या में मर्दों के साथ-साथ खुलकर अधिक-से-अधिक समय तक हर सामाजिक उत्पादन के कार्य में शामिल हो। आज के युग में बड़े पैमाने पर उद्योग धन्य होने के कारण यह बात सम्भव हो गयी है। आज के कल-कारखानों, सामूहिक खेती की यह मांग है कि बड़ी-से-बड़ी सख्या में स्त्रियाँ उसमें काम करे। यहां तक खानगी कामों का सम्बन्ध है, हम देख रहे हैं, कि धीरे-धीरे यह काम भी सार्वजनिक उद्योग अपने कन्धों पर उठाने लगा है। इसलिये जैसे-जैसे यह व्यवस्था विकसित होती जायगी, खानगी काम आप ही आप खत्म होते जायेंगे। फिर यह प्रश्न ही नहीं उठेगा कि घर के काम कौन करे? किन्तु यह विकास तभी सम्भव होगा, जब बड़े-बड़े उद्योग-धन्धों का समाजीकरण कर दिया जाय और समाज के वर्गों को खत्म कर दिया जाय।

देश के बड़े-बड़े लोग और समाज के ठेकेदार खानगी कामों की प्रशंसा करते हुए बार-बार कहते हैं कि स्त्रियों में जैसे-जैसे शिक्षा का प्रचार होगा, उनमें सुधार हो जायगा। और दूसरी ओर उन्हीं के भाई-बन्धु मिल-मालिक मिलों में स्त्रियों को कम-से-कम मजदूरी दे, उनका शोषण करते हैं। इससे साफ है कि स्त्रियों की मुक्ति इन साधारण सुधारों से सम्भव नहीं। स्त्रियों को सामाजिक क्रान्ति द्वारा ही मुक्ति मिल

सकती है, जब समाज के उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत सम्पत्ति, व्यक्तिगत अधिकारों और शोषकों के शासन का अन्त ही नहीं हो जायगा, बल्कि स्त्रियों पर पुरुषों का शासन भी सदा के लिये खत्म हो जायगा।

वर्तमान समाज में हर नारी की जो कमोबेश स्थिति है, वही शोभी की भी थी। वह भी समाज का शिकार बन गयी थी। उस बेचारी पर कोई भी दोष लगाना गङ्गाजल को अपवित्र कहना होगा। प्रेम कौन नहीं करता? पर उस प्रेम को सफल बनाने की क्षमता इस समाज में रहते कितनों को प्राप्त होती है, कितनों में इतना साहस होता है, कि वह समाज को लाँघ जाय? आज तक समाज ने किनके प्रेम को अच्छी नज़र से देखा है? और यही तो कारण है, कि हमारे कितने ही मौजवान और युवतियाँ बरबाद होकर रह जाती हैं। उन्हीं बरबादों में शोभी भी एक थी और शायद बरन भी एक था। पर दोनों की परिस्थितियों में बड़ी अन्तर था जो एक सक्षम और अक्षम में हमारे समाज में होता है।

अपढ़, गवार शोभी इन बातों को क्या समझती? वह तो जो जानती थी, वह भाग्य के सिवा कुछ भी न था। जब उसने सब-कुछ देख लिया, सब-कुछ सह लिया, तो भाग्य पर सब-कुछ छोड़ एक तरह से निश्चिन्त हो गयी! मरना होगा, तो मर जायगी। बचना होगा, तो बच जायगी। उसकी चिन्ता के लिये अब रह ही क्या गया था जीवन में? हाँ, इस अवस्था में भी उसे अपने बरन की याद जब कभी आ जाती थी, तो वह ज़ार-ज़ार रो पड़ती थी। जब से वह उससे अलग हुई थी, उस की कोई भी खबर उसे न मिली थी। कभी-कभी यह सोच कर वह बड़ी दुःखित होती कि पता नहीं वह किस हालत में हो। कही उसकी भी हालत उसकी-ही जैसी न हो गयी हो, यह ख्याल आता, तो वह जैसे पागल हो जाती और अपनी सन्तुष्टि के लिये ही अपने से कहती, कि नहीं, उसके बरन को कुछ नहीं होगा और वह ईश्वर से बरन को सुखी रखने की विनती करती।

कभी-कभी यह सोच कर कि वह जरूर मर जायगी उसे बरन को एक बार देख लेने की बड़ी तीव्र इच्छा हो आती, पर हाथ रे, भाग्य ! वह माथा ठोक कर रह जाती ।

१८

किसी जमाने में किसी राजा की एक कुमारी कन्या ने अपना प्रेम असफल हो जाने के कारण यहाँ समुद्र में कूद कर अपनी जान दे दी थी । इसी-लिये वहाँ एक मन्दिर स्थापित कर उस स्थान का नाम कन्या कुमारी दे दिया गया था, जो अब तक चला आ रहा है । यह कोई शहर या कसबा नहीं है । सौ-पचास घरों की एक मामूली बस्ती है । लेकिन भारत माता के चरणों में बसी हुई यह छोटी बस्ती उतनी ही सुन्दर लगती है जितनी किसी सुन्दरी की एड़ियों में रचा हुआ साधारण महावर । पूर्व, पश्चिम और दक्षिण में लहराता हुआ सागर चौबीसों घंटे भारत माता के चरण पखरता रहता है । तट के त्रिकोण पर पक्के घाट हैं । इन्हीं घाटों के पास समुद्र में जो छोटी-बड़ी कुछ चट्टानें पानी की सतह के ऊपर सिर उठाये पड़ी हैं, उनमें से सब से बड़ी चट्टान को 'विवेकानन्द राक' कहते हैं । विवेकानन्द जब यहाँ आये थे, तो इसी चट्टान पर खड़े हो, उन्होंने यहाँ के लोगों को दर्शन दिये थे, और वचनामृत पिलाये थे । इसलिये इस चट्टान का सम्बन्ध उनके नाम से जोड़ दिया गया । इन घाटों पर खड़े हो, प्रातः में सूर्योदय और सन्ध्या को सूर्यास्त एक ही स्थान से देख सकते हैं । लोग इन्हीं घाटों पर स्नान करते हैं और कपड़े भी साफ करते हैं । इन घाटों के ऊपर मोटी रेत की लम्बी-चौड़ी फर्श बिछी है, जिस पर बिना कपड़े गन्दे किये सुबह-शाम समुद्र की हवा लेने के लिये लोग इधर-उधर बैठे दिखायी देते हैं । इस फर्श पर कहीं-कहीं काली और लाल रेत के चप्पे दिखायी देते हैं । घाट से करीब पचास कदम उत्तर कन्या कुमारी का छोटा मन्दिर है । इसकी छत और दरवाजे बहुत नीचे हैं ।

छोटे-से-छोटे आदमी को भी भुक कर अन्दर जाना पड़ता है। अन्दर जाने पर काली छत सिर से थोड़ी ऊचाई पर रह जाती है, जो बहुत बुरी लगती है। मन्दिर में चौबीसो घंटे अन्धकार छाया रहता है। रोशनी आने के लिये कोई खिडकी नहीं है। अन्दर के कक्ष में पश्चिम की ओर एक छोटे अंधेरे कमरे में एक दीया जलता दिखायी देता है, जिसकी रोशनी में कन्या कुमारी की नन्ही, काली मूर्ति पास ही आसीन देख सकते हैं। मूर्ति में कोई कला या असाधारणता नहीं है बल्कि दीये की टिमटिमाती रोशनी में लाल सिन्दूर का श्रृङ्गार किये वह छोटी, काली, कुगड़ मूर्ति कुछ भयकर ही दिखायी देती है। दक्षिण भारत के हर मन्दिर में प्रवेश पाने के लिये धोती को छोड़ सब कपड़े उतार देना जैसे आवश्यक है, वैसे ही यहा भी है। मूर्ति की तरह ही काला एक पुजारी यहा बराबर रहता है। मन्दिर से थोड़ी दूर पूर्व में हट कर समुद्र-तट पर एक और पक्का घाट है, जहा से पैर धोकर देवी का दर्शनार्थी मन्दिर में प्रवेश करता है।

मन्दिर से उत्तर की ओर घरों का सिलसिला चला गया है। ये घर बिल्कुल मामूली हैं। इन्ही घरों में से कुछ में छोटी दुकानें हैं, जिनमें खाने की साधारण जरूरतों की चीजें बिकती हैं। इस सिलसिले के पीछे पश्चिम की ओर पक्की सड़क है, जिस पर तिन्नेवली और त्रिवेन्द्रम से रियासत की बसे बराबर आली-जाती रहती हैं। इन बसों का सफर इतना आरामदेह है, कि सैकड़ों मीलों का सफर भी यात्री बड़े मजे में काट देता है। जहां बसें रुकती हैं, उसके पास ही पूर्व में वह धर्मशाला है। सड़क के पश्चिम, कुछ दूर हट कर एक साहबों का आलीशान होटल है। पूरी आबादी में यही एक होटल है, जिसे इस पुरानी बस्ती में आधुनिक कहलाने का गर्व प्राप्त है। सड़क के किनारे दूर-दूर तक हरे, लहराते धान के लम्बे-चौड़े खेतों का सिलसिला चला गया है, जिनके बीच-बीच में नारियल के वृक्षों के झुण्ड-के-झुण्ड इधर-उधर सिर किये खड़े बड़े ही भले लगते हैं।

शहर के शोर और व्यस्तता का यहां नाम नहीं है। ठण्डी-ठण्डी सामुद्रिक हवा में शांति की साँसें लेता, समुद्र के नैसर्गिक गर्जन के गीतों को सुनता यहां का वातावरण बड़ा ही मोहक है। और सच तो यह है कि यहां के कुछ छोटे-छोटे दुकानदारों और कामकाजियों को छोड़ कर पूरी आबादी ऐसे आते-जाते लोगों, तीर्थ-यात्रियों और दर्शकों या आराम का समय बितानेवालों की है, जिनके जीवन में कोई हलचल नहीं।

यह जगह जितनी अच्छी है, उतनी ही यहाँ के निवासी कुरूप और गरीब हैं। कोई भी आकर्षक चेहरा यहाँ नहीं दिखायी देता, न किसी के शरीर पर सुलभा हुआ कपड़ा। जीवन का स्तर अति निम्न है। बाहर से आनेवाले लोगों की बात और है। यहाँ के लोग अधिकतर मलयालम बोलते हैं। यों अंग्रेजी कुछ न कुछ सभी जानते हैं।

धर्मशाला के पास ही बरन ने एक घर किराये पर ले लिया। घर छोटा था, पर आरामदेह था। दो प्राणी बहुत अच्छी तरह रह सकते थे। पहली रात के परिचित कुली को उसने नौकर रख लिया। और धीरे-धीरे जरूरी सामान जुटाने में लग गया।

सुबह उठ कर जरूरियात से फारिग हो, वह बच्ची को नया फाक पहनाता, उसके बालों में कंधी करता, चेहरे पर पाउडर लगाता, पैरों में मोजा और जूता पहनाकर उसे गोद में ले चूमता और फिर नीचे उतार कर उसकी उंगली पकड़ समुद्र तट पर टहलने निकल जाता।

तट पर खड़े हो वह स्वयं सूर्योदय का दृश्य देखता और बच्ची को संकेत से दिखाता। उस वक्त ठंडी-ठंडी हवा चलती रहती, सागर कुछ शान्त रहता, पूर्वी आकाश पर रंग बिरंगे बादल उड़ते रहते। धीरे-धीरे पूर्वी क्षितिज की लालिमा बढ़ने लगती। उस वक्त बरन की निगाहों के सामने केवल क्षितिज का वह स्थान रहता, जहाँ सूरज निकलने को होता और उसका ध्यान सूरज का निकलना देखने में इतना एकाग्र हो

जाता, कि सागर और उसकी गर्जती लहरों का जैसे अस्तित्व ही मिट जाता। सहसा ऐसा लगता, जैसे क्षितिज पर पिघले सोने की तरह चमकते जल पर नीचे से किसी ने सोने का एक बड़ा गोला उछाल दिया हो। यह क्षणों का दृश्य इतना मनोहर, मुग्धकारी और हृदयहारी होता कि बरन के रोम-रोम में जैसे खुशी और स्फूर्ति की एक लहर दौड़ जाती। वह उत्फुल्ल हो उस वक्त बच्ची को गोद में उठा लेता और सुनहले प्रकाश में उसके चमकते मुखड़े को चुम्बनों से भर देता। बच्ची खुशी के मारे हंसते-हसते दोहरी हो जाती। जिस नयी दुनिया में बच्ची की आँख इस बार खुली थी, उसमें उसके लिये जैसे खुशी-ही-खुशी भरी थी।

इसके बाद बालू पर वह तेज कदमों से चलता और बच्ची उसका हाथ पकड़े उसके साथ दौड़ती रहती। करीब दो घंटे के बाद जब वह थर लौटते, तो नौकर दूध गरम किये रहता और होटल से इडली (चावल के आटे की भाप में से रीची हुई दियरी के आकार की टिकिया, जिसे मिर्च की बुकनी, घी या सांभर, दाल की तरह की चीज के साथ मद्रासी नाश्ते के वक्त बड़े शौक से खाते हैं) या टोस्ट, मक्खन लाये रहता। बच्ची ही को क्या बरन को भी मद्रासी खाना अच्छा न लगता। रोटी तो बिल्कुल ही नहीं मिलती थी। सांभर, रसम (दाल के पानी को छौंक कर बनाई हुई पानी की तरह की चीज) मूठा और चावल ही वहाँ मिलता था। तरकारियाँ भी अजीब स्वाद की होती। पर बरन क्या करता? बच्ची को खिलाते वक्त उसे उसकी माँ से भी अधिक मनुहार करना पड़ता, तब जाकर कहीं दूध-भात, या दूध में भिगोई पाव-रोटी वह खाती। बस के ड्राइवरों और कण्डक्टरों से वह बराबर फल वगैरह बाहर से मंगाया करता। इस तरह उनका खाना विशेषकर भात, दूध और फलों का ही होता। भात वह होटल से मँगा लेता। ग्वाला उसके दरवाजे पर गाय ला दूध दुह कर दे जाता।

नाशता लेकर बरन उसे खेल-खेल मे ही अपने पास बैठाकर जबानी ही कुछ पढाता । फिर अपने हाथ ही से उसे नहला-धुला कर उसके कपड़े बदलता । बालों मे कँधी कर उसकी चोटी बनाता । चेहरे पर पाउडर लगाता । और उसे बाजुओं से पकड कर इधर-उधर घुमाकर देखता और निहाल हो-हो जाता । यह सब करने में उसे असीम आनन्द मिलता । माँ को अपनी बच्ची का शृंगार करने मे जो आनन्द मिलता है, उससे वह आनन्द भिन्न था । उसका आनन्द उस श्रेणी का था जो एक प्रेमी को अपनी प्रेमिका का शृङ्गार करने मे मिलता है । उसके नन्हें-नन्हे अंगों के स्पर्श मे उसे वही खुशी मिलती, जो कभी शोभी के गदराये अंगो के स्पर्श मे उसे मिलती थी । कभी-कभी उसका शृङ्गार करते-करते वह अपने से आठ दस वर्ष आगे निकल जाता, और उसे लगता कि उसके हाथों में पड़े बच्ची के छोटे-छोटे बाल ऐसे लम्बे, घने और काले हो सहसा लहरा उठे हैं, जैसे उसके सिर से बालो का फव्वारा फूट पड़ा हो । कभी-कभी उसके बाजुओ को पकड़े-पकड़े उसे लगता, कि सहसा वे बाजु जवान हो वैसे ही गोल, चिकने और लुभावने हो गये हैं, जैसे शोभी के थे । और सच तो यह है कि इसकी कल्पना, कि इन नन्हें-नन्हें अंगों से ही एक दिन उसके हृदय के प्रेम की देवी निकलेगी, उसे चौबीसो घटे एक जादू के संसार मे रखती थी । उसे खिलाने-पिलाने, चूमने-चाटने, उसके अङ्गो को सहलाने, उसके हर स्पर्श और उसके साथ के हर व्यवहार मे बरन को वही आनन्द मिलता, जो एक प्रेमी को अपनी हृदय की रानी के साथ मिलता है ।

शोभी का रूप-रंग तो इस बच्ची मे उसे यों ही मिल जायँगे, पर शोभी में जो न था, उसे भी वह बच्ची में पाना चाहता था । वह चाहता था कि शोभी का रूप-रंग लिये यह बच्ची आधुनिक भी हो, पढ़ी-लिखी, समझदार, आधुनिक तत्त्वो से पूर्ण रूप से सुसज्जित, यानी सोने पर सुहागे की तरह । इसके लिए वह शुरू से ही उसे अपने साचे में ढालने लगा ।

मासूम बच्ची को खाने-सोने, खेलने-नाचने, अच्छे-अच्छे कपड़ों और खिलौनों के सिवा क्या चाहिये था ? उसे वह सब प्रचुर मात्रा में मिल रहा था। बरन एक क्षण के लिए भी उसे अकेला न छोड़ता। सदा कुछ-न कुछ लेकर उसके साथ उलझा रहता। कभी उसे खेलाता, कभी उसके साथ हसता, कभी दौड़ता। लोरिया गा-गा, थपकिया दे-दे उसे सुलाता। कभी भी किसी प्रकार का उसे दुख न होने देता। बच्ची दिन-दिन खिलने लगी, रोज-रोज निखरने लगी, सुन्दर, सभ्य, और शिष्ट बनने लगी।

खाने की जब बहुत तकलीफ होने लगी, तो उसने पत्रों में एक रसोइये के लिये विज्ञापन दे दिया। साथ ही बच्ची को पढ़ाने-लिखाने, शऊर सिखाने, सौंदर्य-साधन के ज्ञान कराने के लिये एक आधुनिक तरीके की अध्यापिका के लिये विज्ञापन करा दिया। रुपये की कोई कमी थी नहीं, भोगने वाला उसके सिवा था ही कौन। दादा का बराबर पत्र आता, कि वह कोई तकलीफ न उठाये ! रुपये यह बराबर जितना भी चाहे भेजते रहेगे !

उस रात जब वह बच्ची को सुला चुका, तो उसकी बगल में लेट गया। उसे ख्याल आया कि दो आदमी और इस घर में बढ़ जायेंगे। उनसे अपने और बच्ची को परिचित कराना होगा। वह अपना क्या रिश्ता उससे बतायेगा ? अध्यापिका बच्ची से उसे क्या कहलवायेगी ? नौकर क्या कह कर बच्ची को पुकारेगा, उसे उसका क्या कह कर उसके विषय में बातें करेगा ? यह सवाल उसे बड़ा पेचीदा और परेशान करने वाला मालूम हुआ। साधारणतः कोई भी उस बच्ची को उसके साथ देखेगा, तो उसे उसकी बेटी नहीं, तो छोटी बहन ही तो समझेगा। कोई वह कैसे समझता कि उसकी वह...भला वह कैसे चाहे कि कोई उसे उसका पिता या भाई कहे ? यह रिश्ता तो उसका उसके साथ है नहीं। और

बच्ची भी तो उसे एक दिन कुछ-न-कुछ कह कर ही पुकारेगी । क्या कह कर पुकारेगी वह उसे ? भैया, पिता जी, कह कर तो उसे वह हरगिज न पुकारने देगा । फिर.....और वह घंटो इस मसले को लेकर परेशान होता रहा । कोई हल इसका मिल ही नहीं रहा था । भारतीय संस्कार पढ़ने-लिखने से ही तो उसके खून से निकल नहीं गया था । जिसे वह अपनी प्रेमिका मानता है, वह उसे भैया या पिता जी एक बार भी कहे, ऐसे वह कैसे चाहता ? आखिर बहुत सोचते-सोचते वह इस नतीजे पर पहुँचा कि उनके पुकारने के शब्द ऐसे होने चाहिये, जो किसी भी प्रकार एक-दूसरे के सम्बन्ध-सूचक न हो । अब वह उन शब्दों के विषय में सोचने लगा, कि आखिर वे शब्द कौन होंगे । उसके दिमाग में बाबू, मालिक, सरकार जैसे बहुत से शब्द आये, पर उसके मेल के बच्ची के लिए कोई शब्द ढूँढे से भी न मिले । बबुआइन, मालकिन या सरकारिन कह कर उस बच्ची को कोई कैसे पुकारेगा ? फिर उसने सोचा, कि बच्ची का कोई नाम ही क्यों न रख दे । पर नौकर उसे उसके नाम से पुकारे, ऐसी बदतमीजी की बात वह कैसे होने देगा ? फिर.....सोचते-सोचते सहसा उसे अपने एक प्रोफेसर की बात याद आ गयी । वे अपने घर में 'साहब' कह कर पुकारे जाते थे । उनकी पत्नी, नौकर, सब उन्हें साहब ही कह कर पुकारते थे और उन्हीं का सम्बोधन सुनते-सुनते उनकी बेबी भी उन्हें साहब ही कहने लगी थी । यह याद कर उसे बहुत खुशी हुई कि इतनी आसानी से उसकी मुश्किल हल हो गयी । ठीक है, वह अपने को 'साहब' कहलायेगा और बच्ची को 'बेबी' । बच्ची को कल से ही वह 'बेबी', 'बेबी', कह कर पुकारने लगेगा, ताकि वह इस शब्द को सुन मुखातिब होने की अभी से अभ्यस्त हो जाय । और खुद को 'साहब'.....मगर कैसे ? और उसे याद आया कि उसका मद्रासी नौकर उसे 'सर', 'सर' कह कर पुकारता है । कल उसे भी बताना होगा, कि वह 'सर, सर' न कह कर अब 'साहब, साहब' कहा करे । बच्ची इधर उसके मुँह से 'सर, सर' सुन कर

उसकी तरफ देखने लगती थी। अब उसके मुंह से 'साहब, साहब' सुन कर वह भी उसे कालान्तर में 'साहब, साहब' कहने लगेगी।

निश्चित हो वह बच्ची को आहिस्ते से अपनी छाती से लगा, सो जाने को हुआ कि सहसा उसे ख्याल आया, कि यह तो ठीक है, पर वे नौकर दूसरो के पूछने पर उनका आपस का क्या सम्बन्ध बतायेगे? अब यह एक दूसरी आफत खड़ी हुई, जिसका कोई हल उसके दिमाग में आता ज्ञात न हुआ और वह पहले ही की तरह फिर परेशान हो उठा, लेकिन बहुत सोचने के बाद उसकी समझ में यह बात आ गयी, कि इसमें परेशान होने की कोई बात नहीं। वह नौकरो को किसी भी तरह मुह न लगने देगा। वह सदा उन्हें गज भर दूर ही रखेगा। बाहर के अपरिचित लोगो से मिलने का उन्हें कम मौका देगा। और वे उन अपरिचित लोों से कुछ-का-कुछ कहेंगे, तो कहें। उसे उसका क्या बिगड़ने वाला है। उसे यही सदा थोड़े रहना है। जब वह वक्त आयेगा, तो कही और जाकर वह रहेगा।

इस तरह की झूझ की बातें सदा कुछ-न-कुछ उसके दिमाग में उठा करती थी। उन बातों से कभी-कभी वह परेशान भी हो जाता था। पर उनका कोई-न-कोई हल वह अवश्य ढूढ़ कर निकाल लेता था। अपनी योजना को पूर्ण करने में वह इतना तत्पर, सावधान और दृढ़ रहता था, कि कोई कठिनाई उसे कठिनाई न लगती थी। यहाँ तक कि आठ-दस साल प्रतीक्षा भी उसे कोई लम्बी न लगती थी। उसे उस बच्ची के साथ रहते कभी कोई कमी खटकती ही न थी। धीरे-धीरे वह सब बातों का अभ्यस्त होता जा रहा था।

रात काफी गुज़ार गयी थी। निस्तब्धता के ऊपर सागर की लहरों के शोर में झलसाहट आ गयी थी। ठण्डी हवा में कुछ-कुछ जोर आने लगा था। बच्ची भीठी नींद में बेसुध थी। उसके हाथ में वह गुड़िया पड़ी हुई थी, जिसे लिये-लिये वह सो गयी थी। बरन ने धीरे से उठ

कर लालटेन की बत्ती कम कर दी। धीमी-धीमी रोशनी में उसने बच्ची का मधुर मुखड़ा निहारा, उसके गालों को चुपके से होठों के किनारे से चूमा, ललाट पर धीरे-धीरे हाथ फेरा और कलेजे से उसे लगा लेट गया। फिर उसके हाथ से गुड़िया ले, दूसरी ओर उसे रखते मन्द-मन्द स्वर में गुनगुनाया —

सो, मेरे दिल की रानी, सो !
 ला रख दे ये घोड़े-हाथी,
 जागृति के ये तेरे साथी,
 सपने में तो तुझे मिलेगी
 वह परियो की रानी, सो !
 सो, मेरे दिल की रानी, सो !

और वह उसके नन्हे गाल पर अपना गाल हल्के-से रख निद्रा को आह्वान करने लगा।

१६

बिटुरते-बिटुरते शोभी के शरीर का जैसे सारा मांस पेट पर ही चढ़ कर लटक गया। हाथ-पैर इतने पतले और पीले पड़ गये कि देख कर आँखें सिकुड़ जातीं। चेहरे पर नंगी चट्टान की तरह पिचके गालों की हड्डियाँ उभर आयीं। आँखें सफेद हो, सिकुड़ कर कोटरों में घुस गयीं। पतली गर्दन पर बड़ा सिर भारी बोझ की तरह मालूम पड़ता। छाती की दिखती पसलियों के ऊपर ढली छातियाँ ऐसे लटक गयीं, जैसे खजूर के तने से ताड़ी के बर्तन।

कई रोज़ से उसके पेट में रह-रह कर प्राण-लेवा दर्द उठता था, इसलिये दाना-पानी करीब-करीब छूट गया था। वह अलस्त हो अपने गन्दे बिस्तर पर पड़ी रहती। मक्खियों की भीड़ का आक्रमण उस पर होता रहता। भनभन की मनहूस आवाज़ कोठरी में गूँजा करती। पर उसके हाथ एक बार भी उन्हें उड़ाने को न उठते, जैसे उनमें ज़रा भी

शक्ति ही न रह गयी थी, जैसे मक्खियों के अपने शरीर पर रेंगने, काटने और भनभनाने का उसे कोई एहसास ही न हो। वह चुपचाप निर्जीव सी आंखें मूढ़ पड़ी रहती। आंखों के कोरों से पानी की धारे कनपटियों के नीचे आप ही बहती रहती। सासु और ननद उसके पास खाने के समय ही छन भर को आतीं। पर उस वक्त भी उनसे दया या सहानुभूति का एक शब्द भी उसे न मिलता। निस्सहाय, बेबस शोभी चुपके-चुपके उनकी रूखी-फीकी, भुंभलाहट और श्रापो से भरी बातें सुन लेती और जो रुचता, खा-पीकर फिर उसी तरह पड़ जाती। घर का वह कोना जैसे अब उन घर वालों के लिये अस्पृश्य हो गया था। उसके बचने की कोई उम्मीद अब किसी को न रह गयी थी। इसलिये उसके लिये एक छोटा काम करना भी किसी को सह्य न था। सब यही मना रहे थे, कि किसी तरह बच्चे से देह छुड़ाकर जल्द वह मर जाय, तो छुट्टी मिले।

फागुन की एक रात के दो बजे थे, कि सहसा शोभी दर्द के मारे पेट को दोनों हाथों से पकड़ चीख उठी। कमर टूट रही थी, दम घुट रहा था। साँस ऐसे फूल रही थी, जैसे बहुत दूर दौड़ने पर फूल जाती है। वह छटपटा-छटपटा कर कभी उठ बैठती, कभी लेट कर इधर से उधर करवट बदलती। पर किसी पहलू भी एक पल को चैन न मिलता। उसके जी में आता कि मुक्का मार कर उस फूले पेट को फोड़ दे, जिससे दर्द का पानी बह जाय। पर कई बार हाथ उठा कर भी वैसा न कर पाती। पेट पत्थर की तरह कड़ा हो गया था, और लगता था, कि उसका दम अब टूटा, अब टूटा।

चीखों और कराहों को सुन कर सासु गाली बकती उठी। उसके पास जा देखा, तो प्रसव के सब चिह्न मौजूद थे। “चुड़ेल ने यही वक्त चुना था बच्चा जनने का !” खीझ कर बकती-भकती वह बाहर जा अपने मर्द को चमाइन बुलाने को भेज, शोभी के पास आ उसे खटोले पर से उतार जल्दी-जल्दी सब सामान बाहर निकालने लगी। जैसे शोभी को

संभालने से अधिक जरूरी और महत्वपूर्ण काम उन सामानों को बाहर करना ही था। ननद को अभी कोई बच्चा नहीं हुआ था, इसलिये उसको पास न बुलाया।

सब सामान जब कोठरी से बाहर कर लिया और वहाँ शोभी के सिवा और कुछ भी न रह गया, तो दौड़ी-दौड़ी एक फटा-पुराना बोरा ला मिट्टी के नम फर्श पर बिछा दिया और जल्दी-जल्दी शोभी की साड़ी खोल, उसे एक चिथड़ा पहना दिया। शोभी दर्द के मारे चीख रही थी। रह-रह कर हाथ-पैर पटक-पटक कर फर्श पर सिर दे मारती। सासु पास खड़ी उसे डाँटने-डपटने लगती कि उसे चुपचाप पैर के पंजों पर कमर फँला कर बैठना चाहिये, नहीं तो और भी तकलीफ बढ़ जायगी, बच्चा निकलने में और भी कठिनाई होगी। पर उसे गोद में ले संभालने की हिम्मत उसमें न थी। शोभी का चेहरा उस समय वैसे ही विकृत हो गया था, जैसे मृत्यु के समय आदमी का हो जाता है।

शोभी का यह सौभाग्य था, कि चमाइन बेचारी खबर पाते ही भागी-भागी आ गयी और उसको संभालने में जुट गयी।

छटपटाते-छटपटाते जब शोभी का अंग-अंग शिथिल हो गया, और दर्द ने चढ़ कर जब उसके कलेजे पर अपना पूरा अधिकार जमा लिया, तो वह बेहोश हो गयी। वह निर्जीव-सी हो चमाइन की गोद में लुढ़की, तो चमाइन ने उसे संभाल कर अपनी गोद में बैठा लिया, और आगे से उसके दोनों पैरों को समेट कर ऊपर ला फँला दिया। फिर धीरे-धीरे पीठ के ऊपरी हिस्से और छाती को नीचे की ओर सहलाने लगी। सासु को गरम पानी और आग तैयार करने को इसी बीच उसने कह दिया था। यह ऐसा वक्त होता है, जब दुनिया भर के भूत-पिचास सौर के दरवाजे पर आ खड़े होते हैं ! दरवाजे पर आग रखना जरूरी होता है, क्योंकि आग से ही भूत-पिचास डरते हैं !

सासु ने अनमने भाव से सब कुछ किया। चमाइन के आ जाने पर उसे कुछ आशा बँध गयी थी, कि शायद बच्चा बच जाय। पतोह की फिक्र

तो उसे कभी हई ही नहीं। काफी दिन चढ़ आया, तो अन्दर से एक बार 'के' की हलकी आवाज़ आयी। सासु ने हुलस कर कमरे के अन्दर मुह डाल कर पूछा—“लड़का है?” पर दूसरे ही क्षण बिना जवाब सुने ही गरम खून के भभके और महीनों से रोगी पड़े रहने वाले के शरीर से जैसी बू निकलती है, वसी ही बू की लहर से उसकी नाक ऐसे भर गयी, कि मतला कर उसने अपना सिर पीछे हटा लिया।

चमाइन ने जच्चे-बच्चे को सभालते, व्यस्त-सी हो कहा—“मालकिन, नार काटने वाली हसिया तो देना।”

आँगन के कोने की ताक पर वर्षों से नार काटने वाली हंसिया बारिश और धूप खा-कर सड़-गल गयी थी। न जाने कितनी की नार वह काट चुकी थी, और न जाने कितनी की नार वह और काटेगी! सासु का दिल धुक-धुक कर रहा था, कि कहीं लड़की न हो। बिना धोये-माजे उसने हसिया नाक पर आँचल रख अन्दर बढ़ाते फिर पूछा—“अरी; क्या हुआ? तू ने तो बताया ही नहीं?”

चमाइन ने हाथ बढ़ा हसिया लेते कहा—“तेल-हल्दी का इन्तज़ाम करो मालकिन। बेटा हुआ है। अहिवात को बड़ी कमज़ोरी है। अब तक बेहोशी पड़ी है। पर अब चिन्ता की कोई बात नहीं। शरीर-हल्का हो गया, तो राम जी की कृपा से सब ठीक हो जायगा। जल्दी, हो तो, पुराना मीठा लगा कर ज़रा गरम दूध दो। उसके सिर पर रखने को गरम तेल दो। और राख, कपड़ा-लत्ता जो भी हो जल्द लाओ, ताकि जल्दी सफ़ाई कर में उसे सभालूँ।’

जो पतोहू सदा से एक गयी-बीती नाचीज़ थी सासु की नज़र में, वह सहसा ही इस क्षण इतनी उठ गयी, कि सासु उसके लिये ऐसे व्यस्त हो गयी, जैसे क्या-कुछ न कर डाले उसके लिये! वह सामान इकट्ठा करते चीख-चीख कर सारे मुहल्ले में यह ख़ुश-ख़बरी छन में ही फैला आयी। देखते-देखते ही घर में औरतों की भीड़ जमा हो गयी। और सोहर की कड़ी गूजने लगी—‘राजा दसरथ घरे बाजे ला बधावा हो रामा...’

ननद भी खुश हो जैसे नाचने लगी। ससुर के होठों से खुशी के मारे पानी चूने लगा। सब-के-सब कुछ-न-कुछ करने में व्यस्त हो गये। ससुर दवा लाने पंसारी की दूकान की ओर भागा। सासु और ननद के पैरों को जैसे पंख लग गये।

पइलवठी की बात थी। चमाइन बड़ा इनाम पाने की धुन में खूब लगन से काम कर रही थी। उसकी सावधानी, मेहनत और सेवा से ही अब तक जच्चे-बच्चे खैरियत में थे। शोभी को होश न था, किन्तु उसका शरीर काफी गरम था। सास भी अब ठीक-ठीक चल रही थी। काफी देर तक उसके सिर में मालिश वगैरह करने पर उसने अपनी सफेद आँखें खोलीं तो उनसे डूबी-डूबी, मद्धिम-मद्धिम, कमजोर नज़रें निकलने लगीं। चमाइन ने धो-पोछ कर चूहे की तरह नन्हें, दुबले-पतले बच्चे को धीरे से फूल की तरह उसकी बगल में रखते कहा—“नया जनम मिला है, बहू। ज़रा देखू तो तुम्हारी छाती।”

छाती में देखने लायक क्या था जो वह देखती। कितना ही गारा, पर पनछे के सिवा कुछ न निकला। उसके शरीर में ही क्या था, जो दूध उतरता। फिर भी उसने उससे कुछ कहा नहीं। उसने सासु से रूई और दूध मांगा। फिर रूई का फाहा साढ़ी साफ किये दूध में भिगो कर बच्चे के होंठों पर रख उसे ध्यान से देखने लगी। धीरे-धीरे बच्चे के अदृश्य-से होंठों में हरकत आने लगी। और थोड़ी देर में उसे चभर-चभर दूध चूसते देख वह खुश हो बली—“भगवान की लम्बी बाहें होती हैं, बहू! पेट में ही सब-कुछ सिखा कर बच्चों को बाहर भेजते हैं। नहीं तो हमारा क्या बस। अब ज़रा तू भी यह पी ले। शरीर में कुछ ताकत आ जाय। खायेगी, पियेगी, तो दूध भी ज़रूर उतरेगा। तू कुछ चिन्ता न कर, मैं सब-कुछ ठीक कर लूंगी।”

शोभी के सुन्न-से कानों में चमाइन की बातें धीरे-धीरे पड़ीं और धीरे-धीरे ही जब उन बातों का मतलब उसकी समझ में आया, तो जैसे

किसी बात पर भी उसे विश्वास न हो रहा था। मृत्यु के द्वार पर खड़ी शोभी यह निश्चय करने में बिल्कुल असमर्थ थी कि सचमुच उसने एक बेटा जन्मा है, जो उसकी बगल में लेटा चभर-चभर दूध चूस रहा है। वह तो अन्धकार के जाने किन खोहों में अन्धी बन कर भटक रही थी। उसे क्या मालूम कि उन घड़ियों में क्या-क्या हुआ था। पर अब तो किसी बात में भी अविश्वास करने की कोई गुंजाइश ही नहीं है।

जैसा चमाइन कह रही है, सचमुच उसने एक बेटा जन्मा है, जो उसकी बगल में लेटा नन्ही-नन्ही साँसे ले रहा है। यह स्थाल आना था, कि न जाने कहाँ से उसमें वात्सल्य उमड़ पड़ा था। जिसके पेट में रहते सदा उसने उसे कोसा ही किया, आज बाहर आ जैसे वह उसके कलेजे का ज़िन्दा टुकड़ा बन गया। वह क्षण में जैसे सब कुछ भूल गयी। उसके हृदय में जैसे सहसा ही मोह और ममता की धाराये फूट पड़ी। घूम कर उसे देखने की एक तीव्र इच्छा उसमें उमड़ पड़ी। उसने कोशिश भी की, पर इतनी ताब कहाँ थी।

चमाइन ने उसे रोकते कहा—“घबराओ नहीं। लो यह पी लो। धीरे-धीरे ताकत आ जायगी।”

दो दिन बाद चमाइन ने उसकी छातियों की ओर देखा तो यह देख कर उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा, कि उनमें काफी तनाव आ गया था, और अन्दर से जैसे दूध उबल-उबल कर बाहर को फटा पड़ता था। उसने उन्हें साफ कर बच्चे को धीरे से उठा एक से उसका मुँह लगा दिया। बच्चा जब उसे चूसने लगा तो वह उसकी दूसरी छाती पर जिससे दूध व्यर्थ में बह रहा था, अपना हाथ रख उसे दबाने लगी। शोभी जैसे एक अजीब सुख में डूबने-उतरने लगी। धीरे-धीरे उसने अपना एक हाथ उठाया और धीरे-धीरे ही उसे बच्चे की पीठ पर रख दिया। माता के हाथ जैसे जीवन का एक बड़ा सहारा आ लगा। मरती नारी में जीवित मातृत्व ने प्राण फूका। दुख ऐसे तिरोहित हो गये, जैसे आँधी बादल को उड़ा ले जाती है। अब तो केवल सुख है, ऐसा सुख,

जिसे पाकर मां नरक-यातना भी सरलता से सह ले ।

अब जाकर चमाइन का हृदय हल्का हुआ । वह शोभी की आंखों से निकलती दुर्बल नज़रों में मोह और जिन्दगी की चमक देख आशा से भर उठी । उसे पूर्ण रूप से अब विश्वास हो गया, कि जच्चा-बच्चा अब खतरे से बाहर आ गये ।

खुश-खुश उसने कड़ुआ तेल, हल्दी, मीठा और दूध का उसे काढ़ा पिलाया । गला जल रहा था, फिर भी शोभी गट-गट लेटी-ही-लेटी उसे ऐसे पी गयी, जैसे वह जिन्दगी का जाम हो ।

चमाइन सब-कुछ ठीक कर तौले में गलीज ले बाहर निकली, तो सब के होंटों पर खुशी देख खुद भी निहाल हो उठी । गलीज फेक कर हाथ-मुंह धो, मालकिन को समझा-बुझा बड़े इनाम की बातें कर, शाम को फिर आने की बात कह वह चली गयी । रास्ते में जिस-जिस से वह मिली, उससे कहती गई—“सब भगवान की दया है, बाबू, नहीं तो क्या बचा था बहू में !”

सासु ने जितनी उपेक्षा शोभी की की थी, उतना ही अब उसका मान बढ़ गया । अब एक बेटे को जन्म देने वाली वह लायक पतोहू बन गयी थी । जब वह अन्दर गयी और पहली ही बात बोली, तो शोभी को वह बिल्कुल बदली हुई लगी । उसे आश्चर्य हुआ, पर आज वह भी इस मनःस्थिति में न थी, कि कुछ और सोचती । आज तो जैसे वह अपने में ही इस तरह पूर्ण हो गयी थी, कि उसे किसी और का कोई ख्याल ही नहीं रह गया था । आज वह सब को माफ कर सकती थी ! आज वह सब के किये अत्याचारों को भूल चुकी थी ! आज उसका एक नया जीवन हुआ था, जिसमें सब कुछ नयी तरह से ही शुरू करना होगा ।

सासु ने बड़े स्नेह से बच्चे पर हाथ फेरा । फिर उसके चेहरे को सहलाया और उस पर आशीर्वादों की वर्षा कर दी । ननद ने

चमकती आँखों से खुशी छलकाते उसे भौजी-भौजी कह उसके दिल को खुशी से भर दिया। फिर दोनों मन-प्राण से उसकी सेवा-शुश्रूषा में लग गयी।

यह शोभी का ब्याह के बाद पहला सौभाग्य था, जो उसने एक बेटे को जना था। आज उस बेटे के कारण ही वह ठीकरे से हीरा बन चमक उठी। कही उसने बेटे के बदले बेटी को जन्म दिया होता, तो उसकी क्या दशा होती? मृत्यु के द्वार पर खड़ी शोभी को किस तरह मौत के मुँह में बेदरदी से ढकेल दिया जाता यह सहज ही हमारे समाज का कोई व्यक्ति भी समझ सकता है। बेटे-बेटी का यह अन्तर उनके समाज में जमाने-जमाने से चला आ रहा है। यह अन्तर उनके जन्म से लेकर मृत्यु तक बराबर उनके साथ रहता है। कही भी इसमें कोई व्यतिक्रम नहीं होता। लड़का जहाँ समाज का वरदान बन फलता-फूलता है, वहीं लड़की उसका अभिशाप बन सड़ती-गलती रही है। लड़कियों के प्रति लोगों के व्यवहार देख कर तो कभी-कभी यह आश्चर्य होता है, कि हिन्दुस्तान में कैसे कोई लड़की जीवित रह बड़ी हो जाती है। बड़े लोगों की लड़कियों के विषय में कोई बात करना व्यर्थ है, क्योंकि ऐसे बड़े लोग हमारे देश में हैं ही कितने? गाँवों में बसने वाले लाखों और करोड़ों लोगों की लड़कियों की ये बातें हैं। प्रकृति पता नहीं कैसे, उन्हें जीवित रखने में समर्थ होती है, वरना आदमी तो उन्हें मार डालने में भी कभी कोई कसर उठा नहीं रखते। माम्रों की यहाँ बात करना उचित नहीं, क्योंकि कितनी माम्रों की पुरुषों के आगे यहाँ घर में चलती है। फिर यहाँ ऐसी माँ भी कौन है, जो बेटे और बेटी का लालन-पालन एक-सा करे, उनसे एक-सा स्नेह, मोह, ममता रखे? इस अन्तर का कारण भी यही हमारी सामाजिक व्यवस्था है, जिसमें नारी का कोई अपने अधिकार नहीं, पुरुष का पिछलगुआ बन उसे सारा जीवन उसके सहारे चलाने के लिये विवश होना पड़ता है। पुरुष नारी को ब्याह लाता है, और उसके पिता से जैसे बेटी पैदा करने के जुर्म में कुछ क्या, काफी दंड

एँठ लाता है। बेटी माता-पिता के लिये व्यर्थ का एक ऐसा भार होती है, जो जब तक उनके सिर पर रहती है, उनकी कमाई खाती रहती है, और जब सिर से हटती है, तो भी एक खासी अच्छी रकम साथ लिये जाती है। भला ऐसे भार को अपने सिर पर रखना कौन चाहेगा ? दहेज- प्रथा के टूट जाने से ही लड़की की यह समस्या हल नहीं हो जाती। उसके साथ जाने वाली रकम की ही तो केवल एक समस्या नहीं है। समस्या जो है, वह उसकी उसके माता-पिता के लिये एक करीब-करीब व्यर्थ के भार की है, जिसे ढोते रहने से उन्हें उससे बेटे की तरह कोई लाभ नहीं होता। यही लाभ का स्वार्थ और उत्तराधिकार का प्रश्न है, जो पुरातन से बेटे-बेटी में अन्तर डाले हुए पैर तोड़कर हमारे समाज के सिर आ बठा है। जब तक बेटी समाज का उतना ही उपयोगी अंग माता-पिता के लिये नहीं बन जाती, जितना बेटा होता है, तब तक यह समस्या हल नहीं होती। और ऐसा करने के लिये यह आवश्यक है, कि उस विवाह की सस्था का परिष्कार किया जाय, जो जवान होने पर बेटी को उसके माँ-बाप से छीन लेती है, उनकी बेटी के लालन-पालन की सारी मिहनत को व्यर्थ कर देती है। ऐसा करने से सवाल उठ सकता है, कि फिर घर कैसे बसेगा ? लड़की और लड़के में से किसी-न-किसी को तो अपना घर छोड़कर दूसरे के घर में जाना ही पड़ेगा। यदि लड़की का दूसरे घर में जाना बन्द कर दिया जाय, तो घर बसाने के लिये लड़के को लड़की के यहां जाना पड़ेगा ऐसी हालत में जो दशा आज लड़कियों की है, वही दशा लड़कों की हो जायगी। इसलिए यदि दोनों पर बराबर का ध्यान करना है, तो इसका हल केवल एक है, और वह यह कि माता-पिता केवल बच्चों के जन्म के ही साथी रहे। बाद में वे बच्चे राष्ट्र के धन हो जाय। उनके पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा का सारा भार राष्ट्र पर ही रहे। इस तरह माता-पिता के अपने स्वार्थ का कोई सवाल ही नहीं उठता। संयुक्त कुटुम्ब की इकाइयों के स्थापित होने का कोई अवसर ही नहीं मिलेगा। सारा राष्ट्र ही एक कुटुम्ब हो जायगा, जिसमें मदद होंगे,

औरते' होगी, बच्चे होंगे जिनके आपसी निस्वार्थ सम्बन्ध होंगे और जिनकी जिन्दगी की सारी जिम्मेदारियाँ राष्ट्र की राज्य-व्यवस्था पर सदा आधारित रहेगी। माता, पिता और बेटे का आज का सम्बन्ध टूट कर राष्ट्र और उसके सदस्यों का ही सम्बन्ध रह जायगा। घर बसाने और कुटुम्ब के लिये कमाई करने का प्रश्न केवल पुरुषों का नहीं रह जायगा, पुरुष और स्त्री समान रूप से उत्पादन और भोग करेंगे। स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध उनके मन और चुनाव के अनुसार बहुत साधारण नियमों के अन्दर मुचारु रूप से स्वभावतः चलाने की व्यवस्था होगी। उसके फलस्वरूप उत्पन्न बच्चे राष्ट्र के धन होंगे।

जब तक यह व्यवस्था नहीं आती, तब तक बेटे-बेटी के इस अन्तर को मिटाया नहीं जा सकता और तब तक कितनी ही शोभियों की जिन्दगी सयोग के हाथों पड़ी रहेगी। यह सयोग नहीं तो और क्या था कि शोभी को बेटी न होकर बेटा हुआ। शोभी खुद क्या इस बात को न समझती थी? आखिर वह भी तो हमारे समाज की एक सदस्य ही थी। उसके बेटी होने पर उसके सासु-ससुर का उसके प्रति जो रुख होता, वह तो साफ ही जाहिर है, पर इसकी प्रतिक्रिया स्वयं शोभी पर भी निरुत्साहित करने वाली न होती, यह कैसे कहा जाय।

शोभी ने पहले-पहल बच्चे को जब 'मेरा बेटा !' कह कर पुकारा, तो क्या उसमें उसके हृदय की सस्कारगत वे सारी बातें नहीं बोल रही थी, जो हमारे समाज में एक बेटे को लेकर उसके माँ-बाप की सारी अपेक्षाओं से सम्बद्ध होती हैं? जो भी हो, शोभी आज खुश थी, बहुत खुश ! आज वह पुरानी बातें भूल गयी थी ! आज नये तौर पर उसने समझा था कि उसके जीवन का भी कोई मकसद है। आज बेटे की जिन्दगी से बंध कर अपना जीवन भी उसे प्रिय हो गया था। वह जियेगी, अपने बेटे के लिये जियेगी !

२०

अवसर आदमी को क्या से क्या बना देता है। एक गांव के मामूली किसान की एक बच्ची आज कन्या कुमारी के तट पर खुशनमा जूते, ऊनी मोजे, रेशमी फ्राक, जिसके उठे हुए कलप किये दामन और परो की तरह फैले हुए कन्ध देख किमी परी की बच्ची का भ्रम होता। कलाइयो में सोने की नन्ही-नन्ही, सुन्दर-सुन्दर चूड़िया, गले में सोने की जजीर, कानों में हीरे के बुन्दे, सिर पर श्वेत रेशमी फीते से आकर्षक ढग से बंधे सुनहले, चिकने, चमकते, सुगन्धित छोटे-छोटे वालो के गुच्छे, मुखड़े पर खुशबूदार पाउडर हल्के-हल्के लगाये, अपने नन्हे-मुन्ने हाथ से साफ-सुथरी, अघेड़ आयु की आया का हाथ पकड़े तितली की तरह फुदकती हवाखोरी के लिये निकली है, इस बात पर कौन विश्वास कर सकता है? इस अवस्था में उसे देख कर कौन कह सकता है, कि यह एक गरीब किसान के घर में पैदा हुई बच्ची है, जिसे न अच्छे कपड़े नसीब होते थे, न स्वस्थ खाना। और चीजों की तो बात ही करना व्यर्थ है। अपने बाप के घर में पड़ी यही बच्ची अपने भाग्य से बड़ी हो, एक दिन शोभी बनती और शायद उसी की तरह समाज की वेदी पर बलि चढ़ा दी जाती। उसे क्या मालूम होता, कि जीवन क्या है, जीवन के सुख क्या हैं; यह ससार क्या है, इस ससार की चीजें क्या हैं; शिक्षा और ज्ञान क्या है, इनसे जो प्रकाश मिलता है, वह प्रकाश क्या है, जिससे संसार और प्रकृति के रहस्य आखों के सामने खुल जाते हैं! वह तो बैसे ही मर जाती, जैसे पैदा हुई थी, जैसे एक जानवर पैदा होता है, जीता है और मर जाता है, जैसे हमारे देश के करोड़ों लोग पैदा होते, जीते और मर जाते हैं। लेकिन ऐसी बातें अब इस बच्ची के विषय में नहीं कही जा सकती। इसे अब जीवन के सब सुअवसर प्राप्त हैं। अच्छा घर, अच्छे खाने, अच्छे कपड़े, शिक्षा के लिये सुशिक्षित अध्यापक, खेलाने और लालन-पालन, सेवा-शुश्रूषा के लिये

सफाई-पसन्द, होशियार आया, और सब के ऊपर एक सुसम्पन्न, सुशिक्षित गार्जियन जो आठो पहर उस पर नजर रखता है, उसकी बेहबूदी की चिन्ता करता रहता है। इस परिस्थिति में पल कर, पढ़-लिख कर, बड़ी हो यह बच्ची कैसी बनेगी, इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है। बहुत-से लोगो की कल्पना में यह बच्ची बढ़ कर एक आधुनिक कालेज की लड़की के रूप में आ सकती है और उसे उस रूप में देखकर बहुत-से लोग नाक-भौं सिकुड़ा सकते हैं। पर एक अप्रद, गवार, चिथड़ों में अपनी मुर्दा जवानी लपेटे, जिन्दगी और उसकी बातों से बेखबर युवती के मुकाबले में इस युवती को किस मुंह से वे खड़ा कर सकते हैं? चरित्र और नैतिकता की बातें ऐसे मौकों पर सहज ही उठा दी जाती हैं, किन्तु इसकी जड़ में हमारे समाज में लड़के-लड़कियों के मिलने-जुलने की जो आजादी हमेशा के लिये खत्म कर दी गयी है उस पर किसी का ध्यान नहीं जाता। चरित्र और नैतिकता बेशक मूल्यवान् वस्तुएँ हैं, किन्तु वे बन्धनों में जकड़ कर नहीं बन सकते। उनका निर्माण भी सहज रूप से आजादी की हवा में ही हो सकता है। इसलिये दुश्चरित्रता और अनैतिकता के लिये आपको कीचड़ उछालना ही है, तो आप उस समाज पर उछालिये, जिसकी व्यवस्था में लड़के-लड़कियाँ ऐसा होने को विवश हैं। केवल इसी बात को लेकर आप आधुनिकता की खिल्ली तो हरगिज़ नहीं उड़ा सकते। हर बुराई की जड़ में पहुँच कर जब तक आप उसे समूल नष्ट नहीं कर देते, तब तक ऊपरी बन्धनों की बन्दिश से उसे आप दूर कर ही नहीं सकते। इन्सान की प्रकृति लाख बन्धनों में भी अपनी आवश्यकता को पूर्ण कर ही लेगी। अतएव आवश्यकता है, इन बन्धनों को दूर कर एक ऐसी व्यवस्था कायम करने की, जिसमें इन्सान स्वभावतः पले, बढ़े और आजादी से अपनी सब आवश्यकताओं को पूर्ण करने में समर्थ हो। तभी उसे सच्चा जीवन और उसका सच्चा सुख और शांति नसीब होगी। ऐसा करने के लिये आवश्यक है, कि राष्ट्र जीवन में सब को बराबर अवसर दे, सब को उसके प्राकृतिक गुणों के उभरने और पुष्ट

होने का अवसर दे और उसके उपयोग के लिये समुचित क्षेत्र दे। केवल इसी अवस्था में इन्सान-इन्सान बन सकते हैं, वरना जहाँ करोड़ों शोभी की तरह एडियाँ रगड़-रगड़ जिन्दगी बिताते रहेंगे, वहाँ चन्द इस बच्ची की तरह भी फूलों की सेज पर भी जिन्दगी का वृत्तपयोग कर सकते हैं।

बरन करीब-करीब अब निश्चिन्त हो गया है। गाड़ी लीक पर लग गयी है। सीधी सड़क सामने है। एक रफ्तार से वह चलती रहेगी, जब तक मजिल पर न पहुँच जाय। गोआ का एक महाराज अब खाना बनाने आ गया है। वह जैसा बरन चाहता है, अच्छे-अच्छे खाने बनाया करता है। बस से शहर जा वही सब सामान भी लाया करता है। वह टूटी-फूटी हिन्दी और अंग्रेजी बोल लेता है। यहाँ के लोगो की भाषा नहीं जानता, यह भी अच्छा ही है। मद्रास की एक अघड़े, इसाई आया भी आ गयी है। वह साहबी हिन्दुस्तानी और अंग्रेजी बोल लेती है। लम्बा फ्राक पहनती है और ऊँची ऐड़ीवाली जूती। साज-शृङ्गार का उसे काफी शौक है। बच्ची का शृङ्गार करने के बाद वह अपना भी शृङ्गार करना कभी नहीं भूलती। उसकी आवाज़ बहुत मीठी और बारीक है। बरन से बातें करते कभी-कभी वह शरमा भी जाती है। अपने पहले के कितने साहबों की बातें बात-बात पर उदाहरण की तरह वह बराबर पेश किया करती है। उसके हाथों बच्ची का लालन-पालन, साज-शृङ्गार सौंप कर बरन छुट्टी पा गया है। शुरू में बच्ची उसे देख कर बिचकी थी, किन्तु उसने धीरे-धीरे बड़े ही अद्भुत ढंग से उसे पोल्हा लिया और अब तो शायद बरन से भी अधिक उसे मानने लगी है। उसका कहना भी वह बड़ी खुशी से मानती है। हर घड़ी उसी के पल्ले बधी रहती है।

उसे सुबह में एकाध घंटा पढ़ाने के लिये वह केरली युवती आ जाया करती है, जो होटल के मालिक के लड़के को पढ़ाती है। वह यहाँ के स्कूल में मास्टरानी है। पहले बरन ने एक अब्गा ही मास्टर रखने का सोचा था। उसने उसके लिये विज्ञापन भी दिया था, मगर बाद में जाने

क्यों, इरादा बदल दिया। और होटल के मालिक के कहने पर इसे ही ठीक कर लिया। यह मास्टरानी युवती है। इसका मुह छोटा है, इतना कि मुट्ठी में आ जाय। पर उसके चेहरे पर काफी मलाहट है। वह सुन्दर लगती है। रंग गेहूँआ है। कमर के नीचे जरी के पाठ की ढाई गजी धोनी बड़े अकर्षक ढंग से बाँधती है। उसके नीचे बँधी हुई काँच नितम्बों पर झलकती रहती है। उसके ऊपर चोलीकस पर धोती के कपड़े का ही ढीला ब्लाउज पहनती है, जिसकी बाहों पर उसी की किनारी की गोठ रहती है। उसकी छातियाँ बहुत छोटी-छोटी मालूम देती हैं। गला पतला और छोटा है। सिर भी छोटा ही है, पर गोल है। लम्बे-लम्बे, काले-काले बालों की लम्बी, मोटी चोटी कमर के नीचे तक जैसे उसकी पूरी लम्बाई नापती पीठ पर झूलती रहती है, उसके निचले सिरे पर लगे रिबन को वह रोज बदलती रहती है, कभी सफेद, कभी काला, कभी पीला, कभी लाल। और ऊपरी सिरे को फूलों से सजाना वह कभी नहीं भूलती। पता नहीं इतने सारे ताजे फूल उसे कहाँ से हमेशा, हर वक्त मिल जाते हैं। बरन को पता नहीं, कि कुछ फूल सदा-बहार होते हैं। इनके गजरे गूथ कर मद्राम की ओरते कई-कई दिन तक बालों में लगाती रहती है। रात को उन्हें उतार कर भीगे कपड़े में रख देती हैं। इस फूल का ताजापन कई दिन तक बदस्तूर बना रहता है। वह कन्धे पर रेशमी पाठ का दुपट्टा ओढ़ती है। उसकी शादी नहीं हुई है। उसका बाप किसी बूढ़े नम्बोदरी के पल्ले उसे बाधना चाहता था। यह जान कर वह एक रात भाग खड़ी हुई और यहाँ आकर स्कूल में नौकरी कर ली। वह सदा बनी-ठनी रहती है। उसकी आखें जैसे सदा किसी को खोजती रहती हैं। वह हर आदमी से जब बातें करती है, तो यों भी शरमा-शरमा जाती है और पैर के अंगूठे से धरती खुरचने लगती है। उसकी बोली बहुत मीठी है। वह अंग्रेज़ी की एस० एल० सी० पास है। अपनी भाषा मलयालम भी वह अच्छी तरह जानती है। कुछ हिन्दी की स्वबोधनी किताबें मंगा कर स्वयं ही हिन्दी भी पढ़ती है।

उस मास्टरानी को जब बरन देखता है, तो उस पर उसे बहुत तश्स आता है। वह हमेशा सहानुभूति से भर कर उससे बातें करता है। उसने बच्ची को अंग्रेजी पढ़ाना शुरू कर दिया है। हिन्दी स्वयं बरन ही उसे पढ़ाता है।

वह पहले दिन वाला नौकर अब भी है। कुछ ऊपर के काम और सफाई वगैरह वह किया करता है।

इस तरह अब घर जम कर गुलजार हो गया है। हमेशा भरा-भरा रहता है। सब काम सुचारु रूप से चलता रहता है। बरन का ज्यादा समय अब अखबार, उपन्यास, कहानियाँ या और किताबें पढ़ने में व्यतीत होता है। उसे अब किसी तरह की चिन्ता नहीं। रुपये के लिये दादा को चिट्ठी लिख देता है। जितनी जरूरत होती है, दादा से मंगा लेता है। कभी-कभी उसे दादा की बहुत याद आती है। उन्हें वह देखना भी चाहता है। पर कैसे जाय ? दादा को भी वहाँ से टलने का एक मिनट का भी अवकाश नहीं, नहीं तो उन्हें ही बुला लेता। उनका एक तीर्थ भी हो जाता।

यो निश्चिन्त हो जाने पर भी एक हल्का खदगा बराबर उसके दिल में बना रहता है, कि किसी प्रकार किसी को उसके विषय की कोई बात मालूम न हो जाय। एक दिन आया ने रात के समय कहा था—“बेबी का बेड अलग लगाना चाहिये। यो साब सोने से उसके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ेगा।”

सुनकर बरन घबरा गया था कि कहीं आया ने कुछ ताड तो नहीं लिया है। पर दूसरे ही क्षण उसने उसे डाँट दिया था यह कह कर—“चल, काम देख अपना। तुझे क्या मालूम कि उसे या मुझे किसी को अकेले नींद नहीं आती। रात को एक क्षण को भी अपने से उसे मैं अलग नहीं करना चाहता !”

यह बात सच थी। बरन रात को कभी भी अकेले सोने की कल्पना न कर सकता था। सोने के समय बेबी को अपने कलेजे से लगा, उसे

प्यार कर, उसके गालो, हौटो को चूम कर, उसके बालो से निकलती सुगन्ध से अपनी साँसो को भर कर, उसके अग-अग के स्पर्श से पुलकित हो वह वही आनन्द और सुख पाता था, जो कभी शोभी से उसे प्राप्त था। इस सुख और आनन्द के सहारे ही, सच पूछा जाय तो, वह जी रहा था। इससे वचित हो जीते रहने की कल्पना ही वह न कर सकता था। उसे इसमे जो सुख और आनन्द मिलता था, उसे किस कोटि में रखा जाय, यह समझना मुश्किल है। किन्तु इतना तो कहा ही जा सकता है कि इससे उसकी भोग-कामना का एक रूप से तृप्ति हो जाती थी। उसमे वह सभी कुछ पा लेता था। उसे वह अपनी प्रेमिका की तरह ही हर पहलू से समझता था। और उससे एक तरफा जो कुछ भी ले सकता था, लेता था। भोली बेबी उसके मन की बात को क्या जानती थी। उसके लिये उसका चूमना-चाटना एक खेल मात्र था या प्यार या स्नेह का प्रदर्शन मात्र। वह उसकी गोद मे वैसे ही लिपट कर सो जाती, जैसे वह अपनी माँ की गोद मे सोती थी। वह उससे उसी तरह रूठती, मचलती, जैसे कोई बच्चा अपनी माँ से करता है। पर बरन उन सब बातों को एक दूसरे ही रूप मे देखता। उसके उन सब कामो मे उसे शोभी की ही शोख हरकते दिखायी पड़ती। इन बातों मे वह किसी प्रकार शर्मिन्दा होने की आवश्यकता महसूस न करता। हा, कुछ भय जरूर खाता था, कि कही कुछ कोई ताड़ न ले। इसलिए वह काफी सावधानी इन बातों में भी बरतता था।

होटल का मालिक मद्रासी अय्यर है। सूरत-शक्ल मे ही काफी चतुर मालूम पड़ता है। इस युग मे भी आधे कपार की चोटी और त्रिपुण्ड उसका साथ दे रहे हैं। फिर भी ब्यालों से वह काफी आधुनिक और खुशमिजाज है। चार साल हुए उसकी बीबी मर गयी थी। एक लड़का भर है उसके। लड़के की उम्र आठ साल है। उसे वह बहुत चाहता है। लड़की की तरह सजाकर रखता है। धीरे-धीरे बरन में और उसमे

मित्रता हो गयी है । वह अग्रजी बहुत अच्छी बोलता है । मिलनसार भी खूब है । शुरू-शुरू में बरन से उसने काफी फायदा भी उठाया था । शाम को वह अपने होटल के काम में बर्बाद रहता है । पर सुबह में वह जरूर तट पर सैर करने को आता है । साथ में उसका लड़का भी रहता है । यही तट पर ही रोज-रोज की देखा-देखी के बाद उनकी दोस्ती हुई है । अब तो वे एक दूसरे के यहां आने-जाने भी लगे हैं । वे बैठ कर मौसम की, राजनीति की और जमाने की बातें किया करते हैं और बेबी और उसका लड़का आपस में कोई खेल खेलते रहते हैं ।

एक दिन शाम को घाट पर बैठे अग्रजर ने पास ही बैठे बरन से कहा—“देख रहे हैं न अपनी बेबी और मेरे अनन्तम को ! एक दूसरे की भाषा नहीं जानते । बेचारे आपस में कोई बात-चीत भी नहीं कर सकते । फिर भी किस तरह हिल-मिल कर रहते और खेला करते हैं, जैसे आपस में विचार-विनिमय, हृदय-प्रकाश के साधन, भाषा, की इन्हें कोई आवश्यकता ही नहीं । निर्मल हृदय और मासूम दिमाग लिये जैसे गूंगे रह कर भी ये एक-दूसरे को मूक संकेतो से ही समझने में समर्थ हो, जैसे एक दूसरे के हृदय की बात समझने के लिए इन्हें बोलकर समझाने की जरूरत ही न हो ।”

बरन ने मुस्करा कर कहा—“ठीक कहते हैं आप । यों अभी इनकी नन्ही दुनिया में करने की बात ही क्या होगी । गुडियो और घरोंदों की दुनिया की भाषा शायद सारे ससार में एक ही होती है, वरना ये कैसे यों एक-दूसरे की भाषा जानें बिना खेल पाते ? बड़े होकर हम यह सर्वदेशीय भाषा भूलकर अपनी-अपनी भाषा बोलने लगते हैं । कदाचित् इसी कारण हमारे हृदयों में भाषा की यह दीवाल ऐसे खड़ी हो जाती है, कि हम आदमी-आदमी होते भी एक दूसरे से भिन्न, एक दूसरे के लिये अबूझ हो जाते हैं ।”

“यही तो कारण है, कि दक्षिण वाले उत्तर वालों के विषय में और उत्तर वाले दक्षिण वालों के विषय में इतिहास की कुछ मोटी और व्यर्थ

की बातों के सिवाय कुछ भी नहीं जानते । अगर आप और हम अंग्रेजी न जानते होते, भला यों मिलकर किसी भी हालत में एक-दूसरे के मित्र बन पाते, एक ही जगह रह कर भी हम एक-दूसरे के सामने विदशी और अपरिचित नहीं बने रहते ?” अय्यर ने कहा ।

“हा साहब, राष्ट्र की जिन्दगी में एक अन्तर्प्रान्तीय भाषा का बड़ा महत्व होता है । एक भाषा के न रहने से ही तो हमारे देश के हिस्सों में वह समन्वय न हो सका, जो होना चाहिये था । हमारे बीच का एक टूटा-फूटा माध्यम यह अंग्रेजी न रहनी, तो पता नहीं हम जो आज इतने नजदीक खिच आये हैं, यह कैसे होता । पर यह भी इसलिये हुआ है कि हमारे नेता अंग्रेजी जानते हैं । एक दूसरे की बात समझने-समझाने में समर्थ हैं, जिसे समझ-बूझ कर वे अपनी भाषाओं में यहाँ प्रचार कर देश के संघर्ष में इकाई स्थापित किये हुए हैं । पर इसी से काम न चलेगा । हमारे यहाँ की जनता की भी एक अन्तर्प्रान्तीय भाषा होनी चाहिये, जिससे देश की सारी जनता एक सूत्र में बँध जाय । तभी देश का एक दिल बनेगा ।” बरन ने कहा ।

“गांधी जी ने यही समस्या हल करने के लिये मद्रास में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा खोली है । हिंदी प्रचार का काम शुरू होगया है । मैंने भी अनन्तम की मास्टरानी को हिन्दी सीख लेने के लिये कहा है, ताकि वह अनन्तम को भी हिन्दी पढ़ा सके । यह हर बच्चे के लिये आवश्यक है । बच्चे कोई भी बात बहुत जल्द सीख लेते हैं । अनन्तम को इसमें कोई भी कठिनाई न होगी । हा, अब तो कुछ स्कूलों में भी यहाँ ऐच्छिक रूप में हिन्दी पढ़ाई जाने लगी है । अगले साल अनन्तम को किसी अच्छे स्कूल में भर्ती कराना है । अभी तक कुछ तै नहीं कर पाया हूँ । आप भी तो बेबी को कही पढ़ने को भेजेंगे ?” अय्यर ने पूछा ।

बरन सवाल सुन कर अकचका-सा गया । क्या जवाब देता उनकी बात का ? एक घड़ी भी बेबी से अलग हो वह रह नहीं सकता, गंद बात कैसे कहता उनसे ?

उसे कुछ बोलते न देख अय्यर ने ही फिर कहा—“मेरा तो ख्याल है, कि इन दोनों को एक ही स्कूल में भेजा जाय, तो अच्छा रहे। साथ-साथ ही रहेंगे, तो घबरायेंगे, नहीं। हमारे लिये भी सहूलियत रहेगी। एक भी जाकर दोनों को देख आया करेगा साहब, जैसे आपकी बेटी आपके लिये अकेली है, वैसे ही मेरा अनन्तम भी है। एक क्षण को भी आँखों से ओभल होने देने को जी नहीं करता। इसकी मा बड़ी अच्छी, बड़ भोली थी। उसे मैं बहुत प्यार करता था। उसकी यह एक निशानी है। इसे कलेजे से लगा कर मैं उसका सब दुख भूल जाता हूँ। पर क्या करूँ? मोह में पड़ कर इसकी जिन्दगी का ख्याल तो नहीं भुला सकता। आपको भी जरूर मेरी ही तरह अपनी बेबी से मोह होगा। पर क्या करेंगे? इनकी तलीम-तरबीयत भी तो जरूरी है। यहाँ कोई अच्छा स्कूल होता, तब तो कोई कठिनाई ही न होती। कभी जी में आता है, कि इसी काम के लिये मद्रास जा कर रहने लगूँ। पर, साहब, शहर की हवा में दम घुटता है। यहाँ अकेले पड़े आराम से दिन कट जाता है। आप भी तो शान्ति की खोज ही में न यहाँ आ पड़े हैं। खैर, आपने कुछ कहा नहीं?”

टालने के लिये बरन ने कह दिया—“अभी तो काफी दिन हैं। सोच लेंगे। अच्छा, अब चलेंगे। शाम हो गयी।”

“जो भी हो, साहब हम तो नहीं मानने के। आपको मेरी यह बात तो माननी ही होगी। अगर आप तैयार न हुए, तो कही मेरी हिम्मत भी टूट न जाय। आपको इन बच्चों की जिम्मेदारी समझनी ही चाहिये।” अय्यर ने जोर देकर कहा।

“अच्छा, अच्छा,” कुछ घबरा कर ही बरन ने कहा।

फिर दोनों मुड़ कर पश्चिमी क्षितिज पर एकटक देखने लगे। सागर का लहराता पानी सोने के पिघले पानी की तरह झलझल-झलझल कर रहा था। आकाश का बादलों का सतरङ्गा बाग सागर के लहराते पानी के झूले पर पेगें मार रहा था। पश्चिमी क्षितिज के छोर पर तपे हुए

अगारो के बीच, गले हुए सोने का पानी भरे बड़ी घरिया की तरह, सूरज का गोला दमक-दमक कर लाल पानी के ऊपर तरंगित हो रहा था। सारी मृष्टि का सौन्दर्य उस समय जैसे स्वर्णिम आवरण ओढ़ आकाश के उस कोने में आ सुनहरी मुस्कान की आभा में उल्लसित हो थिरक रहा था। वातावरण झूम रहा था। हवा जैसे शान्त हो गयी थी। सागर की लहरे जैसे निस्तब्ध हो गयी थी। सब कुछ जैसे उस सौन्दर्य-सुषमा पर मूक हो न्यौछावर हो रहा था, कि सहसा लगा, जैसे क्षितिज के नीचे के सागर से किसी ने मछुए की तरह किरणों के विशाल जाल को तेजी से समेटना शुरू कर दिया। एक क्षण में ही सूरज सागर में डुबकी लगा गया। चारों ओर फैली सतरंगी किरणें सिमटने लगी। आकाश में रङ्गों का बाग ऐसे उजड़ने लगा, जैसे जादू से लगाया गया हो, और अब जादू से ही क्षण में ही उजाड़ दिया जा रहा हो। चारों ओर बेगनी रंग पुतने लगा। और देखते-देखते ही स्याही का पर्दा आकाश पर पड़ गया। सागर का लहराता पानी काला पड़ गया। ऊँची-ऊँची लहरों के ऊपर छाया भाग ऐसी लगने लगी, जैसे चिंगघाड़ती हुए लहरों क्रोध में बड़े-बड़े दात दिखा उस शक्ति को चबा डालने को धमकी दे रही हो, जिसने उनकी सुनहली सुषमा लूट ली हो।

उगे-से ही दोनों ने उधर से आँखें फेरी। बेबी आया का हाथ पकड़ बरन के पास खड़ी थी और अनन्तम अय्यर के पास।

“अच्छा, तो हम चले !” बरन ने अय्यर से कहा और हाथ जोड़ दिये।

“अच्छा, लेकिन आप मेरी बात न भूलें !” कह कर अनन्तम का हाथ पकड़ वे मुड़े, तो आया ने बेबी से अपना हाथ हवा में उठा बिदा देने का जैसे संकेत करते कहा---“बेबी, इन्हें ‘गुड बाई’ बुलाओ !”

बेबी ने उसके उठे हाथ को देख धीर-धीरे अपना हाथ उठाया और जैसे थाह-थाह कर बोली ---“गु-ड-ब-अ-आई !”

सब लोग हंस पड़े।

२१

ऐसा लगता था, कि शोभी के दिन फिर आये। महीनो में ही घँसे हुए गाल उभर आये, शरीर पर मांस चढ़ गया। निस्तेज, सफेद पड़ी आँखों में पुनः जीवन और आशा की चमक झलकने लगी। देखने वाले कहते कि उसे नया जन्म मिला है। बेटा भाग्यवान है, जो मरती हुई माँ को पलटा लाया। सासु और ननद का भी रवैय्या बिल्कुल बदल गया। शोभी यो भी पहले उनके गुस्से का कारण न थी। यह तो परिस्थिति और संयोग की बात थी, जो सासु में और उसमें गाँठ पड़ गयी थी। आज शोभी एक बेटे की माँ बन कर उस गाँठ का खोल चुकी थी। बच्चे को सासु, ससुर और ननद हाथो-हाथ लिये फिरते। शोभी के खाने-पीने की भी पूरी ताकीद रखते, ताकि बच्चे के लिये दूध की कमी न हो।

शोभी ने नारी बन कर जो दुख उठाये थे, आज उसे माँ बन कर जैसे उससे भी अधिक सुख मिल गये। लाख अनचाहा वह क्यों न हो, पर वह उसके खून और मांस से बना था। उसके साथ की स्मृतियाँ कटू और दुःखमयी थी, किन्तु इसमें उसके लाल का क्या दोष है, जो वह उसे दडित करे ! वह तो अपनी माँ की ही कोख से जन्मा वे सब आशाएँ लिये हुए, जो एक बच्चा माँ से रखता है। उसे वह किस हृदय से कुछ भी अस्वीकार कर दे। उसे क्या मालूम कि किस कुपडी में वह अपनी माँ के पेट में आया था, उसे क्या मालूम कि माँ उसे क्यों नहीं चाहती थी ? वह तो एक भगवान की देन है। भगवान ने उसे भेज दिया, तो वह कैसे न आता ? भगवान के दिये फल को शोभी कैसे ठुकरा दे ? इन सब बातों के ऊपर एक ऐसी आन्तरिक और स्वाभाविक भावना भी थी, जो उसे उस बच्चे को छाती से लगा लेने को विवश करती थी। इस भावना को वह समझ न पा रही थी, फिर भी यह भावना शायद सब

से बलवती थी, जिसके समक्ष तर्क करना व्यर्थ था। यह नैसर्गिक मातृत्व की भावना थी। आज नारीत्व मातृत्व का वरदान पा ऐसे बदल गया, कि जैसे उसका अलग कोई अस्तित्व ही न हो, जैसे मातृत्व में ही वह अपने को लय कर केवल मा रई गया हो, जिसका बच्चा ही सर्वस्व बन गया हो।

सचमुच शोभी जैसे इस बच्चे को पाकर अपना सब खोया पा गयी। वह उसमें ब्यस्त हो, अपने को एक ऐसी दुनिया में पाने लगी, जिसमें कोई कमा न हो। इसका एक जबर्दस्त मनोवैज्ञानिक कारण भी था। वह यह कि जब से वह ब्याह कर यहा आयी थी, उन सब को जिन्हे वह अपना समझती थी खो चुकी थी। ससुराल में सब पराये होते हैं। अपना कोई बनता है, तो वह पति होता है। अभागी शोभी उसे भी अपना न बना पायी थी। यहा तो जैसे वे सब उसे पराये उतरते समय मिले, वैसे ही आज तक रह गये। बल्कि पराये से भी बढ़कर शत्रु बन गये। वैसे ही स्थिति में उसे एक बेटा मिला, जिसे वह डके की चोट पर अपना कह सकती थी। इसे पाकर जैसे वह एक जीने का बड़ा सहारा पा गयी।

मा के यहाँ उसके बच्चे होने की खबर पहुचते-पहुचते पहुच गयी थी। वह जल्दी ही पाहुर और बच्चे के लिये कुछ भेजने वाले थे, पर कटिया-पिटिया में बन्ने रहने के कारण न कर सके। दाँ-मिस कर फुर-सत मिली, तो उसका बाप बच्चे के लिये चादी के कड़े और छीट का कुरता और शोभी के लिये साड़ी और चूड़ी और समधियाइन के लिये एक मोटरी गुड़ और तेल का पका ठकवा लेकर आ पहुचा।

शोभी को जैसे ही बापू के आने की खबर मिली, भूली हुई सारी बातें एक क्षण में उसके दिमाग में चक्कर लगा गयी। वह चीख-चीख कर रो पड़ी। भेट करने के लिये हाथ-पैर धोकर उसका बाप उसके पास पहुचा तो उसका पैर दोनों हाथों से किचकिचा कर पकड़ कर जब वह

रोने लगी, तो ऐसा लगा, कि उसका तार कभी भी टूटने को न आयागा, आँसुओं की धारा नदी बन कर बहने लगेगी ।

माँ को रोता देख ज़मीन पर पड़ा बच्चा बिलबिला उठा, तो नाना ने उसे अपनी गोद में उठा लिया । अनजानी गोद में वह और भी हाथ-पैर पटक-पटक कर चीखने लगा ।

समझाते-समझाते बाप थक गया, रोते-रोते शोभी बेहाल हो गयी । पर जैसे रह-रह कर एक-एक हूक रुलाई की लहर बन उसके भरे, दुखे दिल पर आक्रमण करती थी और वह फिर जोर-जोर से चीख-चीख पड़ती थी ।

सामु परेशान थी, कि कहीं पतोह पुरानी गाथा अपने बाप के सामने खोलकर न रख दे । पर शोभी को इतना होश कहा था ? उसका कसकता मन उसी पुराने घर, उन्हीं पुराने खेतों, उन्हीं सखी-सहेलियों और उन्हीं शुरू के प्यार की यादों में भटक रहा था, और एक-एक पग पर उसे रुला रहा था । आज घाव की पपड़ी छिल गयी थी । शोभी आँसू नहीं, खून रो रही थी ।

आखिर जब हिचकियाँ बधने लगी, गला और जीभ सूखने लगे, तो बाप किसी तरह अपने पैर उसके हाथों से छुड़ा, बैठ कर बिलखते बच्चे को उसकी गोद में दे, उसके माथे पर स्नेह का हाथ फेरते उसे समझाने लगा ।

आँचल से आख-नाक पोछ, शोभी घूँघट नीचे कर सिसकने लगी । बच्चा उसकी गोद में उसका मुँह निरखता, कुछ भी न समझ वैसे ही रोये जा रहा था ।

“अकेली जान ठहरी, शोभिया, इसीलिए न आ सका । देख न आज यहां आया हूँ और प्राण अटके हैं घर पर ही । ऊख का बिया लेना है । खेत तैयार है । देर हो रही है ।” बाप ने कहा ।

“तो क्यों आये ? मैं तो मर ही गयी थी न तुम लोगों के लिये !” सिसकती हुई मचल कर गुस्सा दिखाने शोभी बोली ।

“ऐसा न कह, बेटी । तू तो खुद ही सपम्भदार है । घर में तेरा कोई भाई न हुआ, वरना ऐसे कैसे छोड़ देता । तेरी माँ तुझे याद कर-कर के बराबर घुला करती है । तुम्हें शायद नहीं मालूम कि ... वाकी बात को अचके में उसने होठों में दबा लिया । उसका मुँह उदाम हो गया ।

शोभी ने अकचका कर उसकी ओर देखा । फिर तडा कर पूछा — “मुझे क्या नहीं मालूम, बापू ? तुम क्या कहते-कहते रुक गये ?,”

“कुछ नहीं, बेटी, कुछ नहीं ! ओर सब तो कुशल-छेम रहा न ?” उसने बात बदलने की गरज से कहा ।

“आग डालो मेरी कुशल पर ! तुम अपनी बात तो कहो ।” मन-ही-मन घबराती शोभी बोली । उसका हृदय किसी आशका से काप रहा था ।

“क्या बताऊ, बेटी, तेरे यहाँ आने के अभी कुछ ही दिन हुए थे, कि तेरी छोटी बहन एक शाम को जाने कहा गायब हो गयी ।” कह कर उसने सिर झुका लिया ।

शोभी फिर फफक-फफक कर रो पड़ी । बहन उसकी आँखों के सामने घूम गयी । रोते ही बोली—“तुमने ढंढवाया नहीं, बापू ?”

“मब किया, बेटी, पर कहीं कोई खबर न मिली । पता नहीं, उसे क्या हो गया । तभी से तेरी माँ बराबर उसके लिए कूलहा करती है ।”

“तुमने हमारे यहाँ खबर तक न की, बापू !” और फिर वह बिलख-बिलख कर रो पड़ी ।

“अब रोने से क्या होगा, बेटी । धीरज धरो । भगवान की यही मर्जी थी ।” कह उसने शोभी के सिर पर हाथ रख दिया ।

“मुझे लिवा चलो, बापू । माँ को देखने को तडप-तडप कर रह गयी । यहाँ की बातें तुम्हें क्या बताऊ ? कुछ दिन के लिये तो लिवा चलोगे, न बापू ?” आँसू-भरी आँखों से उसकी ओर देखते शोभी ने कहा ।

“तेरी माँ ने भी तो कहा है । भगत जी से मैं कहूँगा ।” उसने कहा ।

“गन्ना घन्ना नहीं । नहीं लिवा ले चले, तो फिर मेरा जिन्दा मुंह देखने को तुम लांगो कां न मिलेगा, समझ लेना । मैं सिर फाड़ कर जान दे दूगी हा ।” शोभी ने धिरा कर कहा ।

“ऐसी बातें नहीं करते, बेटी । मैं भरसक कोशिश करूंगा ।” कह कर वह उठने को हुआ, तो शोभी ने उसे फिर बैठा लिया । उसने बैठ कर पूछा—“हा, रे, भगत जी कहते थे, कि महीनो में कोई चिट्ठी-पत्राई उमकी नहीं आयी ?”

“उमकी बात छोड़ो, बापू । तुमने तो कसाई के खूटे से बाँध दिया मुझ को । इसमें तो अच्छा होता, कि किसी कुएँ में ढकेल दिया होता ।”

“क्यों रे, ऐसी बातें भला क्या है ?” उसने कुछ जानने की गरज से पूछा ।

“यह सब एक लम्बी कहानी है बापू । कही वह सब हमारी बातें मुन न रहे हो वरना अच्छा, तो जानो, पर याद रखियो कि हमें न ले चले, तो जान दे दूगी, हाँ !,,

“अच्छा, अच्छा, ऐसे न बबरा । मैं तुम्हें लिवा चलूंगा ।” कह कर उसने बच्चे के चेहरे पर हाथ फेरा और उठकर बाहर चला गया ।

यह पूरी बातें इतनी दबी आवाज में हुई थी, कि लुक-छिप कर भी ननद ने कुछ भाँप न पाया । सासु बेचारी तो पास फटक ही नहीं सकती थी । इसलिए जब बूढ़ा बाहर चला गया, तो लपक कर दोनों उसके पास आ गयीं । सासु ने पूछा—“क्यों रे, कोई शिकायत तो नहीं की है न ?”

शोभी ने तुरन्त कर कहा—“शिकायत काहे की करती? मुझे कौन दुख है यहाँ ? और दुख हो या सुख, रहना तो इसी घर में है न ?”

“ठीक है । अपने घर की शिकायत नहीं करनी चाहिये । अब तो तू एक बच्चे की माँ भी बन गयी । तेरे मुँह से समुराल की शिकायत शोभा न देगी, वहूँ ।” सासु ने सन्तोष की साँस लेकर कहा ।

“एक विनती है, अम्मा जी किरपा करके दो-चार दिन के लिये मुझे बापू के साथ जाने दीजिये। मां को देखे बहुत दिन हो गये।” कह कर शोभी ने उसके पांव पकड़ लिये।

“अरे, मेरे दिल में भी दर्द है रे। मैं अपने ही दिल-सा तेरी मां का भी समझती हूं। जा, तू उसमें मिल आ। हाँ, जरा बच्चे की चिन्ता है, कि कही वहाँ...”

“नहीं-नहीं अम्मा जी, इसे मैं जान के पीछे रखूंगी।” विधिया कर शोभी ने कहा।

“अच्छा तो मैं तेरे ससुर से कहूंगी।” वह आज खुश हो कह गयी। पतोहू ने उसकी शिकायत नहीं की है, इसमें वह काफी सन्तुष्ट थी, वरना क्या कभी वह ऐसी मीठी-मीठी बाने पनोडू को विदा करने के बारे में कभी कह सकती ?

दामाद के घर शोभी के बापू को खाना-पीना न था। वह घर से जो चना-चबेना लाया था, उसी को खाकर गाव के सिवाने के बाहर के कुएं का पानी मगा, पी कर रात को सो गया। शोभी की बिदाई के बारे में वह भगत जी से बात कर चुका था। भगत जी ने शोभी की सासु की राय लेकर सुबह शोभी को विदा करने की बात कर दी थी।

आज रात को शोभी की आव-भागत सासु और ननद ने वैसे ही की, जैसे उन्होंने उस दिन की थी, जब पहले-पहल दुलहिन बनकर शोभी उनके घर उतरी थी। उससे कोई भी काम न लिया। खिलाने के लिये दालपूरिया और खीर बनी। ननद ने उसे लोटा भर के पानी दिया। सासु ने बैठ कर, पूछ-पूछ कर, खूब-खूब खिलाया। बाद में सासु ने ही बच्चे के तेल-उबटन किया, काजल लगाया। और चूम-चाट कर उसे शोभी की गोद में देते कहा—“मेरा प्राण इसी में बसा रहेगा। तू इसका पूरा-पूरा ख्याल रखना। अगर इसे कहीं कुछ हुआ, तो तुभी से पूछूंगी। ले, इसे दूध तो पिला दे, नहीं तो खराई हो जायगी।”

ननद ने कहा —“आम्मा, भाँजी, कधी-चाटी कर दू । सुबह न पता नहीं वक्त मिले, न मिले ।”

उनकी बातें सुन-सुन आज शोभी का दिल जल रहा था । आज कैसे-कैसे उसकी दिलजोई हो रही है । अरे बाप रे इन चुड़ैलों ने तो उसे मार ही डाला था । आज इस डर से कि कही जाकर वह अपनी मा से इनकी शिकायत न करे यह सब किया जा रहा है । वह खूब जानती है । पर इस वक्त कुछ कहेगी नहीं । एक बार तो इनके चगुल से निकल जाय फिर तो देख लेगी वह सब । अब बच्ची नहीं रही वह । खाने को क्या दो जून उसका बाप न जुटा सकेगा ? मसलहतन मन की बात मन में ही दबा कर वह बोली —“इसे मुला, कर लगी मैं खुद ही । हा, ज़रा तेल दो तो अम्मा जी के पाँवों में लगा दू ।”

“रहने दे, बहू । आज यह सब मेरी बेटी ही कर लेगा ।” कह कर उसने अपनी बेटी की ओर देखा ।

“हाँ, हाँ, मा, आज भाँजी को मैं कुछ न करने दूँगी ।” कह कर तेल, कँधी, चाटी ले उसने शोभी के पास बैठ, उसका माथ उधार दिया, तो शोभी ने भी चुप ही रहना बेहतर समझा ।

खूब रच-रच कर ननद ने माँग काढ़ी । फिर चाटी गूथती बोली —“भाँजी के बाल बहुत छोटे हो गये हैं ।”

सामु ने कहा—“ऐसा हो जाता है, मेरे पहला हुआ था, तो सब बाल झड़ गये थे । फिर बढ़ जायगे ।”

शोभी ने मन-ही-मन दात पीस कर सिर हिलाया ।

रात को बहुत देर तक सामु उसे लाखों बातें समझाती रही । पास ही के खटोले पर लेटी शोभी चुपचाप ज़हर का घूट पीती उसकी एक-एक बात सुनती रही । आखिर सामु ने कहा — “अच्छा, बहू अब तू सो जा । सुबह तडके उठना है । कपड़ा-लत्ता भी तो ठीक करना है ।” कह कर करवट बदल वह सो गयी ।

पर शोभी को आज नींद कहा ? आज तो एक क्षण को भी उसका दिमाग स्थिर न रहता था । अपनी छोटी बहन के खो जाने की बात उसके दिल को कचोट जरूर रही थी, फिर भी उसे खुशी थी, कि वह फिर अपने घर जा रही है । घर की, गांव की एक-एक चीज उसके दिमाग में अपनी पुरानी यादें लिये उठ रही थी । वह उन्हें देखने को मचल-मचल उठती थी । कब सुबह होगी ? कब वह अपने घर पहुँचेगी ? कब वह चीजें देखेगी । इसी सिलसिले में अपने पुराने साथी बरन की भी याद आयी । उसके बारे में उसे इधर कुछ भी नहीं मालूम हुआ था । पता नहीं कैसे है बेचारा । उसके घर आने की बात सुनेगा, तो जरूर लुक-छिप कर उससे मिलने आयगा । वह भला कैसे अब मिलेगी उससे ? कैसे अब बातें करेगी उससे ? यह बच्चा..... ऊँह, मिलेगी क्यों नहीं ? भला इस तरह कही 'लगी' भी छूटती है । उसके दिल में तो कोई मेल नहीं आयी है । वह तो अब भी जैसे बरन को पहल ही की तरह चाहती है । उससे वह जरूर मिलेगी । अपने दुख-सुख की बातें करेगी । पता नहीं, उसकी शादी हुई कि नहीं । नहीं हुई होगी, तो वह उसे कर लेने को कहेगी । और.....

और न जाने क्या-क्या बातें सोचते-सोचते उसे भपकी-सी आ गयी । और फिर अचानक वह चिहुक कर उठ गयी । बाहर कोई पिहकता हुआ जा रहा था—“लागी नाही छूटे रामा चाहे जिया जाय...”

२२

जहां आदमी रहने सहने लगता है, वहाँ उसका एक सामाजिक जीवन बन जाता है । बरन के लिये ऐसा जीवन बनने में काफी विलम्ब लगा, क्यों कि मसलहतन वह किसी से मिलना-जुलना ठीक न समझता था । उसे सदा यह भय लगा रहता था, कि कहीं वैसे करने से उसकी निर्धारित योजना रहस्य खुल जाने से नष्ट भ्रष्ट न हो जाय ।

साथ ही अपने जुर्म के कानूनी पत्रलू का भी उसे ज्ञान काफी था । फिर भी धीरे-धीरे वह वहाँ के लोगो का और वहाँ के लोग उसके देखने सुनने, रहने-सहने, बर-व्यवहार के अभ्यस्त हो गये, तो सहज ही भय धीरे-धीरे कम होता गया । सच तो यह है, कि वहाँ के लोगों ने बरन की किसी भी व्यक्तिगत बात में कोई दिलचस्पी न ली । उन्हें एक क्षण को भी यह सन्देह न हुआ कि बेबी भगा कर लायी हुई बच्ची है । वह उसके घर की कोई होगी, ऐसा ही समझ कर किसी ने किसी तरह की उत्सुकता या आशका न दिखायी । फिर भी लोगो ने उससे बरन का सम्बन्ध न पूछा हो, हिन्दुस्तान ऐसे देश में यह कैसे सम्भव था, जहा नाम के बाद जाति जानना भी आवश्यक समझा जाता है । ट्रेन के लोगो को जब जो जी में आया था, बरन ने बता दिया था । यात्रियो से उसका साथ सामयिक था । इसलिये उसमें कोई कठिनाई भी उसे अनुभव न हुई । पर यहाँ की बात दूसरी थी । यहा के लोगो से भले ही उसका कोई सम्बन्ध न हो, पर यहाँ उनके साथ चौबीसों घंटे का रहना-सहना था । वैसी धाँधली से यहा काम न चलता । इसलिये यहा के लोगो को उसने बता दिया था, कि बेबी उसकी हाल ही की मरी हुई बीवी की छोटी बहन है । उसकी ससुराल में उसे पालने वाला कोई नहीं है, इसलिये उसने उसे अपने ही पास रख लिया है । उसका मन ससार से पत्नी-वियोग में उचट गया है, इसीलिये वह यहा मन बहलाने के लिये कुछ दिन के लिये चला आया है । बेबी चूँकि उससे पहले ही से बहुत हिली थी, इसलिये उसे भी साथ लेता आया है ।

बरन के दिल में चाहे जो भी गुथी हो, बेबी का दिल साफ था । बच्चो को अपना सामाजिक जीवन अजनबियों में भी शुरू करते देर ही कितनी लगती है । स्वाभाविक रूप से बेबी में यह जीवन विकसित भी हुआ । समुद्र-तट पर सुबह-शाम बड़ों के साथ लड़के-लड़कियों की भीड़ कम न होती । वहाँ बड़े जहाँ अपने गपशप में व्यस्त रहते, बच्चे वहा अपने खेल-कूद में । इस तरह बेबी के परिचर्तों की संख्या बढ़ते देर न लगी । बरन के लिये वहाँ की भाषा सीखना मुश्किल था, किन्तु बच्चों

के साथ खेलते-कूदते बेबी को वहा के बच्चों की टूटी-फूटी भाषा सीखते बहुत दिन न लगे। वह यों खेलती-कूदती सब के साथ, पर अनन्तम के साथ खेलना उसे सब से ज्यादा पसन्द था। अनन्तम भी उसे बहुत चाहने लगा था। सुबह-शाम के अलावा भी वह दिन में कई बार बेबी के घर आता-जाता रहता था। अनन्तम का बाप चूँकि बेबी को बहुत मानता था, इसलिये बरन भी अनन्तम का किसी प्रकार अनादर या तिरस्कार न कर सकता था। अय्यर ने सचमुच अपनी मिलनसारी से बरन के साथ घरापा स्थापित कर लिया था। बरन के लिये भी यह आवश्यक ही था, क्योंकि उसे वहाँ काफी दिनो तक रहना था। दुख-सुख में जान-पहचान ही तो काम आती है। फिर अय्यर उसकी तबीयत बहलाने का भी एक अच्छा साधन था। वह वहा के स्थानों से पूर्ण रूप से परिचित था। इसलिये कभी वह उन्हे लेकर पिकनिक वगैरह पर भी जाया करता था, कभी अपनी कार पर सिनेमा वगैरह भी दिखाने के लिये ले जाया करता। एक तरह से उसका सम्बन्ध अब बरन के लिये आवश्यक हो गया था।

जो भी हो, बेबी को मद्रास के कानवेट में उसके लडके के साथ भेजने के प्रस्ताव को बरन मानने के लिये तैयार न था। पर कैसे इस बात से वह नकर जाय, कोई ऐसा तरीका उसकी समझ में न रहा था। बेबी के बिना दिन काटना उसके लिये एक असम्भव बात थी। यह एक बड़ी ही अजीब बात लगती है, पर उसके लिये यह बिल्कुल सच थी। बेबी को वह अपने सारे प्राणों से प्यार करता था। वह प्यार भले ही कुछ अजीब हो, पर जिस रूप में यह उसके हृदय में अंकुरित हो, पनपा था, उसका वैसा होना तनिक भी अस्वाभाविक न था। इसलिये बेबी को दूर न करने का कोई-न-कोई ऐसा उपाय तो उसे करना ही था, जिससे उसके और अय्यर के सम्बन्ध में कोई बल न आये।

बिल्ली के भाग्य से छींका टूटा। एक दिन सुबह मालूम हुआ, कि वह मास्टरानी, जो बेबी और अनन्तम को पढ़ाया करती थी, एक युवक

मास्टर के साथ लापता हो गयी। शाम को घाट पर जब अय्यर और बरन मिले, तो अय्यर ने कहा—“अब क्या किया जाय, भाई ? इस मास्टरानी के रग-डंग कुछ ऐसे ही थे। पर भाई पढ़ाती खूब थी ! दो साल के अन्दर ही मेरे लड़के को उसने थर्ड फार्म (आठवी कक्षा) के लायक तैयार कर दिया। फिर भी अभी स्कूल खुलने में डेढ़ महीने की देर है। इस बीच अगर लड़के की पढ़ाई रुक गयी, तो सब भूल-भुला कर रख देगा। आखिर आपको भी तो बेबी के लिये कुछ करना पड़ेगा। कहिये तो दूसरा मास्टर ठीक करूं ?”

बरन तो इस अवसर की प्रतीक्षा में मुबह से ही था। उसने कहा—“बस, हम तो थक गये। इन मास्टर और मास्टरानियों का कोई ठिकाना नहीं, चाहे वे घर पर पढ़ाने आये या स्कूल में। भला आप ही कहिए न कि ऐसे चरित्र-भ्रष्ट मास्टर-मास्टरानियों का अनजान रूप से भी हमारे बच्चों पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? आज मुबह से ही बेबी मुझसे पूछ रही है कि मास्टरानी जी कहां गयी ; भला आप ही बताइये न, कि उसका जबाब मैं क्या दू ? यह तो मानी हुई बात है कि किसी-न-किसी से उसे मालूम हो ही जायगा, कि वह भाग गयी एक मास्टर के साथ। फिर इससे आगे बढ़ कर वह पूछे कि क्यों उसने ऐसा किया, तो उसका जवाब उसे क्या दिया जायगा ? इन समझ में न आने वाली बातों का भी असर बच्चों पर पड़ता है, अय्यर जी। मैंने तो अब तै कर लिया है, कि खुद ही बेबी को पढ़ाऊंगा। आखिर मेरा पढ़ना-लिखना किस काम आयेगा। और कोई काम भी तो नहीं है मुझे।”

“ऐसा अगर हो सके, तो इससे अच्छा क्या हो सकता है। पर, साहब, मैंने कई बार कोशिश करके देख लिया है, कि ऐसा होता नहीं।” अय्यर ने मुंह बनाकर कहा।

“मैं तो करूंगा साहब !” बरन को तो कहना ही यह था।

और सचमुच दूसरे दिन से अपनी मुश्किल हल करने के लिये उसने बेबी को पढ़ाना शुरू कर दिया, तो अय्यर ने तीसरे दिन अनन्तम को

भी किताब के साथ उसे एक चिट दे उसके यहां सुबह ही भेज दिया ।
बेबी बंठी पढ़ रही थी । अनन्तम को देख खुश हो खिल पड़ी ।

अनन्तम ने अपन पिता का दिया चिट बरन की ओर हाथ से बढ़ा दिया, यद्यपि उसकी आँखे बेबी की खिली आँखों पर ही टिकी थी ।

बरन ने चिट पढ़ा—

‘प्रिय बरन जी’

तब तक बेबी के साथ अनन्तम को भी घेरिये । तकलीफ तो होगी, पर यह भी तो आप ही का लडका है । धन्यवाद । —अय्यर’
बरन की भीहें सिकुड़ तो गयी, पर वह इनकार कैसे कर सकता था ?
कहा—“बैठो ।”

उस दिन जितना मन लगा कर बेबी और अनन्तम ने साथ-साथ पढ़ा, वैसा शायद कभी भी अकेले उन्होंने न पढ़ा था ।

बरन को भी जैसे घत लग गयी । जो भी हो, वह अब अपने निश्चय, से डिंगेगा नहीं । अनन्तम क्या अय्यर भी पढ़ने आने लगे, तो भी यह त्रम वह कभी तोड़ेगा नहीं ।

और बेबी और अनन्तम को तो जैसे पढ़ना-लिखना भी खेल हो गया । वह घंटों साथ-साथ बैठे पढ़ा करते, अगर स्वयं ही बरन उकता कर न कहता, कि ‘बस, आज की पढ़ाई खत्म ।’

उस वक्त बेबी और अनन्तम कुछ उदास हो जाते । बेबी अपनी किताब वगैरह वैसे ही छोड़ अनन्तम को अपने दरवाजे तक पहुँचाने चल पड़ती । दरवाजे पर जाकर वह आया की सिखायी बात कहनी अनन्तम की आँखों में देख कर—“बाइ-बाइ !” और अपना हाथ हवा में उठा कर मुस्करा देती ।

अनन्तम की उदासी छूट जाती । वह कहता—“शाम को घाट पर आओगी न ?”

“हां”, बेबी कह कर सिर हिला देती ।

अनन्तम मुड़-मुड़कर उसी देखता अपने घर की ओर बढ़ जाता ।

यह क्रम जुलाई तक एक रूप चलता रहा । बेबी और अनन्तम की गाँठ धीरे-धीरे अनजाने रूप में बँधती गयी ।

नौ जुलाई को अय्यर ने एक बार फिर बरन के सामने प्रस्ताव रखा, बेबी को अनन्तम के साथ मद्रास के कानवेट में भोजने का, पर बरन यह कह कर टाल गया, कि बेबी की पढाई का सिलसिला उसने शुरू कर दिया है । बाद में कुछ बड़ी हो जायगी, तो देखा जायगा । अय्यर ने भी ज्यादा जोर न दिया, क्योंकि वह स्वयं देख चुका था उसकी पढाने की लगन ।

अय्यर ने आखिर जब देखा कि अनन्तम को अकेले ही भोजना है, तो उसने कानवेट में उसे न भेज कर मद्रास के पाडे बाजार वाले रामकृष्ण मिशन स्कूल में उसे भर्ती करा दिया । उस स्कूल में उसका एक सम्बन्धी भी मास्टर था, उसके लडके पर उसका ब्याल रहेगा, यही सोच कर उसने ऐसा किया ।

अनन्तम और बेबी विरह की बात क्या जाने ? फिर भी जब वे अलग-अलग हो गये, तो घाट पर या घर पर बेबी का मन अब वैसे न लगता । वह कुछ-कुछ उदास-सा चारों ओर अनुभव करती । उसकी आँखें जैसे सदा अनन्तम को खोजा करती । अकेले बैठकर पढने में भी उसका जी न लगता, उसे लगता कि जैसे उसका कोई बहुत अधिक प्रिय खिलौना खो गया है । फिर भी उसकी यह उदासी कुछ ऐसे उभरी हुई न थी, कि बरन को उसकी चिन्ता करने की आवश्यकता पडती । बरन ने तो उसकी इस उदासी को लक्ष तक न किया ।

बेचारा अनन्तम भी कुछ-कुछ बेबी की ही तरह अपने स्कूल और बोर्डिंग में अनुभव कर रहा था । उसका मन भी उचटा-उचटा रहा । पढने बैठता, तो बेच पर अपनी बगल में जैसे बेबी को खोजता । छुट्टी होने पर शाम को जब लडके खेलते, तो वह जैसे अपने खेल की साथी

बेबी के लिये तड़प उठता । जब कही मन न लगता, तो पास के पनगल पार्क की ओर निकल जाता । वहा भी जब वह लड़के-लड़कियों को साथ-साथ हसते-खेनते, नाचते-कूदते देखता, तो जैसे उसके दिल में एक हूक उठती । वह किसके साथ इस तरह हसे-खेले, नाचे कूदे; और उस समय बेबी की याद इस तरह उसे आती कि उसकी भोली आंखों से मासूम आंसू की बूंदें ढुलकने लगती । उसके जी में आता, कि वह भाग कर बेबी से जा मिले । पर कितनी दूर है वह जगह ! कितनी देर लगी थी उसे बस में, फिर रेलगाड़ी में ! ओह, कैसे पहुंच सकेगा भला वह वहाँ !

२३

शोभी को नैहर आये आज सात साल गुजर गये !

इस बीच उसका सपुर् कुछ नही, तो बीस बार उसे लिबाने के लिये आया, किन्तु शोभी ने एक बार जो वहा जाने के नाम पर 'ना' किया तो उसकी जान के पीछे लग गया । मा-बाप समझाते, टोले-पड़ोस के लोग समझाते, पर वह टस-से-मस न होती । एक बार उस नरक से निकलकर फिर उसमें जाने से वह जान दे देना ही अच्छा समझती थी । हर बार जब उसे जाने को मजबूर किया जाता, तो वह यही कहती कि अगर उसे इस घर से बाहर किया गया, तो रास्ते में कुए-पोखर बहुत मिलेंगे । मा से उसने अपनी ससुराल की एक-एक बात कह सुनायी थी । मा का कलेजा वह सब सुनकर फट गया था । उसके बस शोभी ही अब एक मात्र सन्तान रह गयी थी । इसलिये सारी मोह-माया-ममता उसी पर केन्द्रित हो गयी थी । वह स्वयं भी नही चाहती थी कि उसकी लाइली बेटी फिर उस कसाइन के पास लौट कर जाय । वह अब उसे अपने ही पास रखना चाहती थी । पर लोक-लाज के कारण वह भी सब के सामने बेटी को ऊपरी मन से समझानी-बुझाती । बाप तो उसे डाटने से

भी न चूकता। पर शोभी अब वह शोभी न थी, जो पत्थर की मूरत की तरह दुलहिन बना कर डोली पर चढ़ा कर भेज दी जाती। अब तो वह जान पर खेलने के लिये तैयार हो शेरनी बन गयी थी। उसे अब किसी का डर नहीं था। बच्चा भी बड़ा हो गया था, इसलिये मरने के बाद उसकी भी चिन्ता करने की ज़रूरत वह न समझती थी। उसे जितनी ही पति, सासु और ननद के अत्याचारों, कठोरताओं, और निर्दयताओं की याद आती, वह उतनी ही अपने निश्चय में दृढ़ होती जाती।

उसके पति का इधर सालों से कुछ भी पता न था। कोई चिट्ठी-पत्री तक उसकी न आती थी। बाप ज़िले पर कई बार दौड़-धून कर चुका था कि आयाद वहाँ कुछ पता चल जाय, पर वहाँ भी कुछ मालूम न हो सका। यह एक बड़ा हथियार हाथ लग गया था शोभी के माँ को। जब सम-झाने-बुझाने सब हार जाते और शोभी को ससुराल जाने को तैयार न कर पाते, तो माँ कहती शोभी के बाप से—“जाम्मो उनसे कह दो कि शोभी का आदमी जब आयेगा, तभी वह उसके साथ जावगी।”

बेचारे बूढ़े के पास इसका जवाब क्या होता? वह खिसियाता, बुरा-भला भी कहता और अपना मुँह लेकर वापस भी चला जाता।

एक बात और भी थी, जिसके कारण शोभी जान पर खेलने वाली बन गयी थी। एक दिन गन्ने के खेत में वह अपने बच्चे को मेड़ पर बैठाये पानी बरा रही थी।

घर में बाप के सिवा और कोई काम करने वाला न था। इसलिये शोभी लडकपन से ही कुछ-न-कुछ काम बराबर कर बाप का हाथ बटाया करती थी। यो उसकी माँ भी कम काम न करती थी। शाम का वक्त हो रहा था। उसे इस वक्त बरन की याद आ रही थी। ज़्यादातर इसी वक्त तो बरन अपने घोड़े पर चढ़ इस पगडंडी से टाप-टाप करता उससे मिलने आया करता था। यहाँ अपने घर जब से वह आयी थी,

बात सुनेगा, तो जरूर किसी-न-किसी तरह उससे मिलने आयेगा। इसी आशा में क्या घर, क्या बाहर, वह हरदम उस पगडंडी की ओर आशा-भरी आँखों से देखा करती थी। पर जब बहुत दिन गुज़र गये, और बरन की एक झलक भी उसे न मिली, तो निराश हो, पता नहीं क्या-क्या कुशका की बातें वह उसके विषय में सोचने लगी। कितनी बार उसके जी में आया, कि वह किसी से उसके बारे में कुछ पूछे, पर कभी ऐसा साहस न कर पायी। निराश तो वह हो चुकी थी, फिर भी, न जाने क्यों, उसके मन में कोई बराबर यह कहता रहता, कि बरन अगर इस दुनिया में होगा, तो एक-न-एक दिन जरूर उसके पास आयेगा वह ऐसा किये बिना रह ही नहीं सकता। इसलिये अब भी वह बराबर उसकी प्रतीक्षा किया करती थी। एक तरह से उसकी यह आदत ही बन गयी थी!

जब शाम भुंकने लगी, तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब सहसा उसके कानों से टाटा-टाप...की आवाज़ आ टकरायी। वह हाथ की कुदाल फेक, आवाज़ की दिशा की ओर शरीर की सारी चेतना आँखों में ला, अन्धकार को चीरती देखने लगी। सचमुच एक घुड़सवार पगडंडी से उसी की ओर आ रहा था। बरन के सिवा और कौन आ सकता है? शोभी की आँखों में उस समय जैसे दुनिया की सारी खुशी सिमट कर छलक पड़ी। वह अपने को, अपने बच्चे को भूल कर उस ओर अनियन्ति-सी दौड़ पड़ी। उसे उस समय अपने आंचल की भी सुध-बुध न थी। घोड़ा उसे पगडंडी पर सामने देख कर ठिठक गया, तो शोभी ने सुना—“अरे, पागल है क्या रे, जो घोड़े के सामने मरने चली आ रही है?” यह बरन की आवाज़ न थी। शोभी की आँखें जब सवार पर उठी, तो जैसे आसमान से वह ज़मीन पर आ गिरी। उसकी सारी खुशी हवा हो गयी। उसे लगा की इस निराशा की ठोकर से वह बेहोश हो कर गिर पड़ेगी, पर धीरे-धीरे उसने अपने को संभाल लिया और आंचल संभाल, एक ओर हट, सिर झुका कर खड़ी हो गयी।

“कौन है तू ?” सवार ने उसकी ओर सदय दृष्टि से देखते कहा ।

पर शोभी कुछ न बोली, तो सवार फिर बोला — “अरे, बोलती क्यों नहीं रे ? कहां भागी जा रही थी इस तरह। इसी गाँव की तो तू मालूम होती है । मुझे नहीं पहचानती क्या ?”

शोभी ने अनचाहे ही उसकी ओर एक बार आखे उठा कर गौर से देखा । उसे लगा, कि उस बूढ़े सवार को वह जरूर पहचानती है । याद करने पर सहसा उसे यह ख्याल आ गया, कि उसने इस सवार को बरन के साथ ही कहीं देखा है । जी में आया कि वह उससे बरन के बारे में कुछ पूछे । यह शायद कुछ बता सके । उसने यह सोच कर एक बार अपने चारों ओर देखा । कहीं कोई नजर न आया, तो उसने सिर नीचे कर धीरे से पूछा—“आप बरन ठाकुर को जानते हैं ?”

सवार और कोई नहीं, बरन के दादा ही थे । बरन का नाम उसके मुह से सुनकर वह घोड़े से उतर कर बोले — “तू शोभी तो नहीं है ?”

“जी, मैं शोभी ही हूँ”, शोभी ने धीरे से ही पैर के अंगूठे से ज़मीन खोदते कहा ।

“मैं बरन का दादा ठाकुर हूँ । मुझे पहचानती नहीं ?” दादा ने कहा ।

“अब पहचान गयी । बरन बाबू कैसे हैं ?” पूछते हुए जैसे उसका कलेजा धक से कर गया ।

दादा ने एक आह भर कर कहा—“उसकी तुम्हें क्या बताऊँ ? जिस दिन तू अपनी ससुराल गयी, उसके कुछ ही दिनों के बाद एक दिन वह घर से ऐसे गायब हुआ, कि उसकी आज तक कोई खबर ही न मिली । उसका दिल टूट गया था । पता नहीं...”

“दादा जी !” शोभी जैसे चीख-सी पड़ी—“क्या आप यह ठीक कह रहे हैं ?”

“पगली ! तुझे क्या मालूम कि उसके बिना मेरी क्या हालत है ? खंर, तू तो अच्छी है न !” दादा ने जैसे उसकी थाह लेने के लिये पूछा ।

शोभी फफक-फफक कर रो पड़ी और धीरे-धीरे खेत की ओर बिना कुछ कहे, हाथ से छाती दबाये बढ गयी ।

दादा उसकी ओर हसरत-भरी नजरों से देखते घोड़ा बढा अन्ध-कार में ओझल हो गये ।

उस रात शोभी आँचल से मुंह ढंके घंटो सिसकती रही । आह, उसी के कारण तो बरन की यह हालत हुई ! जाने कहाँ-कहा, किस हालत में डोल रहा होगा ! अलग होते समय उसने कितनी उसकी मिन्नत की थी, कि वह अपने को संभालेगा, पर आखिर जो उसे डर था, वह हो ही कर रहा । उसने स्वयं भी कितनी कोशिश की थी बरन को भूल जाने की, पर क्या ठीक तौर पर उसे कभी भुला सकी ? फिर कैसे वह उम्मीद करती थी, कि बरन उसे भूल कर एक नयी राह पर अपनी जिन्दगी लगा सकेगा ? ओह, अगर उसी समय यह बात वह सोच पाती, तो...पर वह क्या कर लेती ? उसने उसके लिये अपनी जिन्दगी बरबाद कर ली । एक राज का सुख वह उसके लिये छोड़ कर आज दर-दर ठोकरे खाता होगा । कौन जाने कहीं...और जैसे उसका कलेजा फटने-सा लगा । “नहीं नहीं, ऐसा नहीं हो सकता ! मेरा दिल कहता है, ऐसा कभी नहीं हो सकता ! वह आज भी जरूर किसी धरती के कोने में पड़ा मेरा इन्तजार कर रहा है ! मुझे उसके पास जाना चाहिये ? पर कहाँ ? जहाँ भी है । वह मुझे जरूर मिल जायगा ! वह जरूर खिच कर मेरी खोज की राह में आ जायगा ! मेरी आवाज़, वह जहाँ भी होगा, जरूर सुन लेगा ! ओह, आज तक, आज तक...”और वह फिर बिलख-बिलख कर रो पड़ी । उसके अन्दर एक निश्चय रूप ले रहा था । वह एक संकल्प पर अपने को

मन-ही-मन खड़ा करने लगी। पर वह कैसे उसकी खोज में निकले ? कैसे ? सहसा उसकी निगाह बगल में सोये अपने बेटे पर पड़ गयी। उस वक्त उसे लगा, कि उसके पैरों की सबसे मजबूत जजीर वही है। और सब, और सब तो वह उसी दिन तोड़ चुकी थी, जिस दिन उसने ससुराल की चौखट से बाहर पैर रक्खा था। उमे अब किसी की चिन्ता नहीं ? पर यह उसका बेटा ? क्या इसकी भी उसे चिन्ता नहीं ? क्या इसे भी वह औरो की तरह छोड़ सकती है ? क्या अपने लाडले का त्याग वह बरन के लिये कर सकेगी ? और यह सबाल जैसे विकराल मुह खोले उसके सामने खड़ा हो गया। ओह, वह क्या करे ? क्यों यह पैदा हुआ उसकी कोख से ? अगर आज यह न होता .पर...पर... क्या वह इसी के लिये बरन को यो छोड़ देगी ? नहीं ! नहीं ! तो ?

और उसी से अपने निश्चय को वह दृढ़ करने लगी। उसमें रोज़ा-रोज़ा एक विद्रोह, एक क्रोध, एक निर्भयता भरने लगी। अब वह किसी की न सुनती थी, किसी की परवाह न करती थी। मा-बाप उसे दुखिया समझ कर कुछ न कहते। पास-पड़ोस के लोग समझते कि पति का कुछ पता न मिलने से उसका मस्तिष्क विकृत हो गया है। फिर भी शोभी आज भी इस परिस्थिति में न थी कि अपने बेटे को छोड़ अपने दीवाने बरन के फिराक में निकल जाती। वह बेटे को दूर-दूर रखती, उसे डांटती-डपटती रहती, फिर भी जब मचल कर वह उसकी गोद में मुंह गड़ा देता, तो तो जैसे छाती में कुछ दबा उभर पड़ता, और वह एक अजीब खिजलाहट से भर जाती, जो पता नहीं अपने पर होती या बेटे पर या और किसी पर।

पर एक दिन ऐसा भी आया, जब उसके पांव की यह जजीर आप ही खुल कर दूर चली गयी। उसका ससुर फिर एक दिन धमक पड़ा। वह समाचार लेकर आया था, कि शिमला से खबर आयी है, कि उसका फौजी बेटा लड़ाई के दौरान में कहीं लापता हो गया है। उसकी तनख्वाह अब घर पर ही आयेगी। खबर दे वह रोने लगा। शोभी की मां भी खबर सुन रोने

गयी। बाप उदास हो उठा। पर शोभी? शोभी तो जैसे कभी का उसे मरा समझ चुकी थी उसके खोये जाने की, खबर पा उसे क्या होता? वह न रोयी, न बिलखी। घर में लगी भीड़ उसे देख कर चकित थी, पर शोभी ऐसे बैठी थी। जैसे वह किसी पर क्रुद्ध बाघ की तरह उछल पड़ेगी। उसकी उस अवस्था को देख कर औरते कहती चली गयी, “बेचारी कही पागल न हो जाय।”

बूढ़े ने गिड़गिड़ा कर पोते के सिर पर हाथ रख कर कहा—“जब से यह खबर आयी है, इसकी दादी की हालत खराब हो गयी है। वह सिर पटक-पटक कर जान देने पर उतारू है। लोगो ने कहा कि पोते को लिवा लाओ। उसका मुह देख कर बुढ़िया को डारस बधेगा। बहू से कहिये कि मेरे साथ चले। नही, तो वह मर जायगी, मर जायगी!”

उसके पास इकट्ठी भीड़ में से एक ने कहा—“ठीक है। पोते को देख कर उसका मन जरूर बदलेगा।” फिर शोभी के बाप को ओर देख कर कहा—“जाने दो, भाई। ऐसे वक्त पर भी न जायगी, तो कब जायगी?”

बाप ने अन्दर जा शोभी की रोती मा से राय ली। दोनों ने मिल कर शोभी से कहा। पर शोभी तैयार न हुई। पर न जान कैसे उसके मुंह से निकल गया—“ले जाय अपने पोते को!”

बूढ़े को पोते से ही तो मतलब था। उसे डर था, कि कही उसके बेटे के न लौटने पर वे लोग उसके पोते को अपने ही यहाँ न रोक ले, क्योंकि उसके नाना के भी कोई लड़का न था। वह तैयार हो गया और उसी दम लड़के को कन्धे पर रख चलता भी बना। लड़का रो रहा था। ‘माँ-मा’ चिल्ला रहा था। खड़ी भीड़ की आँखों में करुणा की छाया उभर रही थी। उसकी नानी दरवाजे पर खड़ी आँचल से आसू पोछती सिसक रही थी। नाना एक ओर उदास खड़ा था। और शोभी? शोभी का तो जैसे कलेजा ही बेटे के साथ उसके शरीर से निकल कर चला जा रहा था। वह फर्श पर ऐसी बेहाल हो पड़ी थी जैसे उसका दम टूट रहा हो।

जिस बन्धन से वह मुक्त होना चाहती थी, वह बन्धन गवय ही उसे मुक्त कर चला गया, तो उसे ऐसा लगा, जैसे वह बन्धन ही उसका जीवन था उसके बिना वह निष्प्राण है, व्यर्थ है।

अब सचमुच ही उसे किसी बात का होश न था। अगर वह उस समय रो लेती, बिछख लेती, तडप लेती, तो उसका मन कुछ हल्का हो गया होता। हृदय का दुख घनीभूत हो उसकी सारी चेतना पर जैसे पहाड़ बन कर बैठ गया। वह सुन्न हो गयी। उसका मस्तिष्क जड़ हो गया।

माँ ने उसे बहुत समझाया, कि उसके बेटे को वह थोड़े दिनों के बाद बुला लेगी। उसे इस तरह देह नहीं छोड़ना चाहिये। पर उसकी कोई बात जैसे उसके कानों में गयी नहीं।

दो दिन तक उसने न कुछ खाया, न पिया। आधी रात को धीरे-धीरे उसके मस्तिष्क की रंगें कुछ ढीली हुई, तो जैसे उस वक्त उसी बात की याद आयी, जो वह इतने दिनों से अक्सर बच्चे से मुक्त हो करने की रात-दिन सोचा करती थी। उस वक्त उसे और किसी बात की भी याद न आयी। वह आप ही सामने देखती, ऐसे उठी, जैसे सामने कोई उससे उठने का इशारा कर रहा हो। फिर धीरे-धीरे हाथ आगे पसारते ऐसे कदम उठा आगे बढ़ने लगी, जैसे उसका हाथ पकड़ कर कोई एक अन्ध की तरह बढाये जा रहा हो।

सुबह शोभी का घर में पता न चला, तो माँ पछाड़ खा कर धरती पर गिर पड़ी। बाप की आँखों में पहली बार आँसू दिखायी पड़े। लोगों ने यह समझ कर संतोष कर लिया, कि अभागी शोभी किसी कुएं या तलाब की भेट चढ़ गयी।

२४

आदत के अनुसार अब भी बेबी बरन के पास वैसे ही सोती थी, जैसे कोई बड़ी लड़की अपनी माँ के पास सोती है। पर बरन अब पहले-सी

हरकते करने का साहस अपने में न पाता था । बेबी की नीद में अब बचपन की वह बेखबरी और मासूमियत न रह गयी थी । अब तो जैसे उसे भी नीद में मीठे-मीठे सपने आने लगे थे । रह-रह कर वह नींद में भी कभी-कभी ऐसे आखे खोल देती थी, जैसे सपने की खोयी किसी प्यारी चीज को जाग कर भी खोज रही हो । उसके आखे मूढ़ लेने पर बरन उसे एकटक देखता—उसके गालों पर उभरती गुलाबी, भौंहों में आता बाँकपन, पलकों में बढ़ता तनाव, नाक की साफ होनी रेखायें, अधरों में भरता रस, चिबुक के बीच में बनती यौवन बिन्दु, गले में गढ़ती सुडौलता, बाजुओं में बढ़ता मांस, छातियों में निखरती गोलाई और उठान, कमर का कम होता पतलापन, टांगों का मोहक होता गदरापन, ऐडियों में महावर लगाती खून की लाली, नन्हें-नन्हें, सुन्दर-सुन्दर, कबूतर के सफेद पंखों से आकार में ढबते पाँव और सबके ऊपर काले-काले, घने-घने, लम्बे-लम्बे बेअख्तियार होते कमर के नीचे तक लहराते हुए बाल ! बरन के जी में आता, कि वह उन बालों को मुट्टियों में भर, उनकी सुगन्ध से अपनी आत्मा के कण-कण को भर ले । उसका मन ललक उठता, कि वह उन गुलाबी गालों को चूम ले । उसके प्यासे होट फडक उठते कि वह उन रस-भरे अधरों में लहराते अमृत को छू ले । उसके दाँत उस चिबुक को काटने को मचल पड़ते । वह चाहता कि उस सुडौल गरदन में बाँहें डाल कस ले । पर...पर...उसकी हिम्मत न होती थी । यह वह बेबी थी, जिसे जैसे चाह था, उसने प्यार किया था, पर अब उसे लगता था, कि वह वैसे अब उसे प्यार नहीं कर सकता था । वह अब डरता था, कि ऐसा करने पर कहीं बेबी, उसके मन में चोर था. वरना बेबी उसके प्यार को वैसे ही खुशी से स्वीकार करती, जैसे एक जवान लड़की अपनी माँ का प्यार स्वीकार करती है । बरन बेबी के लिये माँ-बाप हो सकता था, पर बेबी तो बरन के लिये पुत्री न थी । वह उसकी प्रेमिका थी । वह उसे एक प्रेमिका की तरह प्यार करना

चाहता था । पर बेबी कैसे उसके प्यार को एक प्रेमी के प्यार की तरह ग्रहण करती ? वह बेबी का प्रेमी नहीं था । यह बात अब बरन के दिमाग में उभरने लगी थी । पहले उसने कभी भी यह न सोचा था । उसने तो सोचा था, कि बेबी बड़ी होकर शोभी बनेगी, उसकी प्यारी शोभी । वह उससे ब्याह करेगा । सुख के दिन बितायेगा । पर अब उसके दिमाग में यह बात भी आ गयी, कि उसके लिये बेबी शोभी तो जरूर बन गयी, पर क्या वह बेबी के लिये वही बरन बना है, जो शोभी के लिये था ? ओह, कितनी बड़ी गलती हो गयी उससे ! इस पक्ष से तो उसने कभी इस समस्या पर विचार ही नहीं किया । और उसे वह सब पुरानी बातें याद आती, कि कैसे-कैसे उसके और शोभी के बीच प्रेम विकसित हुआ था, कैसे वह शोभी को और शोभी उसे बराबर की गर्मी से ही प्यार करने लगे थे । वह बेबी को उसके बचपन से ही प्यार करता है ठीक उसी तरह, जैसे उसने शोभी को किया था । पर क्या बेबी भी उसे उसी तरह प्यार करती थी, जैसे शोभी उसे किया करती थी ? उसने कभी यह विचार बेबी के दिल में अपने प्रविष्टि उठाने का अवसर भी कहा दिया था ? यह वह कर भी कैसे सकता था ? बेबी से वह कैसे कहता कि 'बेबी' मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, तुम भी मुझे प्यार करो, और आओ हम एक सूत्र में बंध जाय ? जिस हवा का निर्माण कर वह वहाँ रह रहा था, उसमें क्या कभी वह वैसा करने की हिम्मत कर सकता था ? उसने लोगों से बताया जरूर था, कि वह उसकी साली होती है, पर क्या वह बेबी के देखने में उससे वह वैसा व्यवहार एक क्षण के लिये भी कर सका था, जो एक बहनोई अपनी साली के साथ करता है ? फिर इसका अवसर ही कहा था ? बेबी इस योग्य ही कहाँ थी, कि वह उसके उस तथाकथित सम्बन्ध का अर्थ समझती । और अब जब वह कुछ समझने लायक हुई है, तो बरन कहाँ इस योग्य रह गया है कि वह उससे उस तरह की बातें नये सिर से शुरू कर सके ? कैसे

इस उम्र में आ कर वह उस अधखिली कलौ से इस तरह के सम्बन्ध की चर्चा करे ? और क्या वह जानता नहीं, कि उसके प्रति कौसी भावना अपने हृदय में लेकर बेबी इतनी बड़ी हुई है ? आह, अब बरन क्या करे ?

बेबी उसके पास ऐसे सोया करती, जैसे उसे बरन से तनिक भी डर न हो, तनिक भी शका न हो। और उसे इस तरह की सम्भावना को अपने हृदय में जगह देने की आवश्यकता ही क्या थी ? उसने कब बरन को अपने पालने वाले पिता के अतिरिक्त और कुछ समझा था ? नींद में करवट ले कभी-कभी वह अपना हाथ बरन पर फेंक देती, तो बरन काप-सा जाता और अपने शरीर को ही हटा उसके हाथ को अलग हो जाने देता। वह रात भर खुली आँखों से उसे देखता रहता और ऐसे ही न जाने क्या-क्या सोचा करता और परेशान हुआ करता। पर जरा भी उसे छूने का साहस न करता। उसे लगता, कि उसके पास बेबी नहीं एक आग की पुतली सो रही है, जिसके अग-अग से शोके फूट रहे हैं। उसने हाथ लगाया नहीं, कि उसका हाथ भुलस जायगा, शरीर जल जायगा। और उसके पास लेटे रहने पर उसे ऐसे अनुभव होता, जैसे उसकी दौक से वह रात भर तपता रहता है, भुलसता रहता है, छटपटाता रहता है, एक क्षण को भी चैन नहीं मिलता, नींद नहीं आती।

बरन के स्वास्थ्य और दिल और दिमाग पर भी इसका असर पड़ना शुरू हो गया। अब दिन भर उदास बैठा रहता उन्हीं विचारों में खोया हुआ। उसके चेहरे की कान्ति ऐसे उड़ गयी, जेम्स सहसा वह बूढ़ा हो गया। वह किसी से कुछ न बोलता। बस, अन्दर-ही-अन्दर घुला करता। क्या करे, क्या न करे वह ?

इसके विपरीत बेबी ऐसे खुश रहती, जैसे बाहर आने पर किसी फूल का पौधा। अब वह अपना सब काम खुद करती। खुद रोज नयी-नयी तरह से अपना श्रृंगार करती, नये-नये ढंग से बाल संवारती।

जुसकी आमा दिन भर बैठी-बैठी ऊंधा करती, या उसके हुकमो की तामील किया करती। वह अब बिलकुल बूढ़ी हो गयी थी।

इधर जब से बरन का दिमाग चिन्ताओं से भर गया था, बेबी का पढ़ना-लिखना बन्द हो गया था। बरन ने अग्र्यर से जो उसके पढ़ाने के विषय मे कहा था, उसे पूर्ण रूप से सही कर दिखाया था। बेबी अब काफी पढ़ चुकी थी। हिन्दी और अंग्रेजी भाषाओं का ज्ञान उसे काफी अच्छा हो गया था। इधर जब उसे फुरसत मिलती थी तो वह अनन्तम की भेट की हुई कहानी और उपन्याम को पुस्तको को भी पढ़ा करती थी। अनन्तम जब भी छुट्टियो मे आता था, उसके लिये कितनी ही पुस्तकें और उपहार की अन्यान्य वस्तुये लाया करता था। वे पुस्तकें और वस्तुएं बेबी के लिये विशेष प्रिय थी। एक दिन उसने अकेले मे उसे अपना एक चित्र भी दिया था, जिसे बेबी छिपा कर अपने बक्स मे रखे हुए थी। बक्स खोलते समय सब की नजरे बचा कर वह एक बार अवश्य उस चित्र को देख लिया करती थी। अनन्तम छुट्टियो मे जब भी आता, उन दोनों का अधिक वक्त साथ ही कटता था। पर इधर बरन उन पर निगरानी रखवे लगा था और परोक्ष रूप से बेबी को उससे मिलने को भी मना किया था। पर वे किसी-न-किसी तरह आया की मदद से मिलने-जुलने का अवसर निकाल ही लेता। मद्रास से अनन्तम आया के माम पत्र भी बेबी को लिखा करता था और बेबी भी आया के पत्र के बहाने ही अपने पत्र भी उसे भेजा करती थी। आया को इसके लिये अनन्तम बराबर जब आता, कुछ-न-कुछ इनाम जरूर दिया करता। और बेबी भी उसके बूढ़ी भैंस की तरह बराबर अलस्त पड़े रहने पर भी उसे कुछ न कहती।

बरन को उदास देख कभी-कभी वह उसके पास जा पूछती—
“साहब, कैसी तबीयत है?” कह कर वह बरन के सिर पर हाथ रख देती।

बरन का साख शरीर काँप जाता। वह सिर हिला कर उसका हाथ

नीचे गिरा देता और कपती आँखों से उसकी ओर ऐसे देखता, जैसे वह आँखों की भाषा में ही अपने दिल की बात उससे कह देना चाहता हो । पर मुह से रुबे स्वर में कहता—“कुछ नहीं । ठीक है ।”

एक दिन बरत ने सहसा ही यह निश्चय किया, कि अब उसे यहाँ से कहीं और चला जाना चाहिये । वह अपनी इस योजना पर विचार करने लगा, तो उसे ख्याल आया, कि वह कहाँ जाय । कहीं भी वह एक युवती लड़की को लेकर कैसे जा सकता है ? वहाँ के लोगों की निगाह क्या उस पर नहीं पड़ेगी ? वह किसी के पूछने पर इसे अपना कौन बतायेगा ? फिर दूसरी जगह भी वह बेबी के साथ कैसे मनचाहा व्यवहार कर सकेगा, जब बेबी ही...यहाँ तो कर्षों से परिचित लोगों में किसी को शक-शुबहे की गुंजाइश नहीं, दूसरी जगह तो पर रखते ही, लोगों की उगली उस पर उठने लगेगी । ओह, वह क्या करे ? और उसे ऐसा लग, जैसे वह एक ऐसे जाल में फँस गया है, जिससे निकल पाने का कोई रास्ता नहीं ।

उसने ऐसे अक्सर पर दादा को पत्र लिखा सब बातें समझा कर । साथ ही अपनी परेशानी और गिरते स्वास्थ्य की बात लिख कर जल्द-से-जल्द उनकी राय माँगी, वह स्वयं सोचते २ परेशान हो चुका था । जवानी के जोश में अनुभवहीनता के कारण जो उसने इतनी बड़ी गलती कर ली थी, सो अब अपनी योजनाओं पर से उसका अपना विश्वास बिल्कुल उठ गया था । वह फिर इस गलती पर और किसी गलती का खड़ा जमाना न चाहता था । ओह इतनी मिहनत कर, इतना जोखिम सह उसने जो बाग लगाया, वह जब फल देने के समय में आया, तो उसे छूने का भी अधिकार नहीं । नहीं, नहीं वह ऐसा न होने देगा ! अपनी जिन्दगी की इस महती लालसा को यो कुचले जाने का अवसर वह कभी न देगा ! इसलिये उसने जमींदारी के दांव-पेच में प्रौढ़ हुए दांड के मस्तिष्क से सहायता चाही ।

फिर भी एक प्रश्न तो अपनी सारी कठिनाइयों को लिये उसके सामने खड़ा ही था । यह तै था, कि बेबी मे उसके प्रति वैसी भावना नहीं, जैसी बरन के हृदय मे उसके प्रति थी । ऐसी परिस्थिति मे क्या बरन को उसकी भावना की चिन्ता न कर उस पर बलात अपनी भावना लादनी ही होगी ? इसका उत्तर बरन के लिये “हाँ” मे ही होना आवश्यक था । पर ऐसी स्थिति मे क्या वह बेबी से वह सब पा सकेगा, जो एक प्रेमी पति अपनी पत्नी मे अपेक्षा रखना है ? क्या बेबी किसी भी तरह उसे पति-रूप मे हृदय से ग्रहण कर सकेगी ? इसका जवाब वह कैसे ‘हाँ’ मे दे ? इस स्थिति मे सम्भव है, उसके जोर से दब कर अपना शरीर उसे समर्पण कर दे, पर उस समर्पण मे...और सहसा बरन को वह रात याद आ गयी, जब अन्तिम बार वह शोभी से विदा हुआ था । उसके पति ने भी तो जोर से ही उसे पत्नी बनाया था । शोभी क्या उसमे खुश थी ? आह, वह कितनी दुखी थी उस दिन ! और बरन जैसे उस रात की बातों को याद कर कुछ क्षणों के लिये उसी स्थान पर पहुँच गया, जहा उमबे शोभी से आखिरी बातें की थी । एक-एक बात उसके मानस-पट पर आसमान की तारिकाओं की तरह जगमगा उठी और उसकी आखें तर हो गयी । इतने दिनों के बाद जैसे पहली बार शोभी उसे उतनी ही तीव्रता से याद आयी थी, जितनी वह उससे अलग होने के कुछ दिन बाद तक याद आती रही थी । उसे आश्चर्य हुआ कि कैसे वह अपनी शोभी को इस तरह भूल गया था ! पता नहीं, उस बेचारी पर कैसे क्या गुजरा । उसने तो अपने लिये एक राह निकाल ली, पर बेचारी शोभी की जिन्दगी उस अनचाही राह पर कैसे चल रही होगी । उसकी इतने वर्षों मे कोई खबर उसने नहीं ली । और शोभी जैसे अपनी सारी मधुरता, सारा आकर्षण, सारा प्यार, सारी कोमलता, सारा सुख लिये एक बार फिर बरन के हृदय पर कुछ क्षणों के लिये ऐसे छा गयी, कि वह अपनी सुध-बुध भूल गया । उसकी आँखों से चुपचाप आसू बहने लगे । आह ! वे दिन भी क्या थे । आह,

वह शोभी भी क्या थी ! और बस्न को ऐसा लगने लगा जैसे उसने शोभी के साथ बहुत बड़ा दगा किया हो, उसे अपना मुँह दिखाने के काबिल न हो । फिर उसे एक-एक कर सब बातें याद आयी ! गत जीवन के पुराने इतिहास के पन्ने पर पन्ने उलटते गये । और फिर बेबी उसके सामने आ खड़ी हो गयी । अब वह क्या करे ? क्या बेबी को भी वह उसी तरह अपनी पत्नी बना ले, जैसे शोभी को उसके पति ने बना लिया था ? पर शोभी और उसके पति की बात और थी । बेबी और बरन की तरह ऐसे वातावरण में न रहे थे, जिनमें शोभी ने उस युवक को अपने पिता के रूप में देखा हो । तब ?

आज बरन की दशा उस प्यास से मरते आदमी की थी, जो समुद्र के किनारे आ पड़ा हो । सामने लहराती हुई अथाह, अनन्त जल-राशि है । उसके नमकीन पानी से प्यास कैसे बुझे ? और प्यास की तीव्रता से अगर वह अत्यधिक घबरा कर चुल्लू से उसे पीना शुरू कर दे, तो जैसे-जैसे वह पीता जाय, वैसे-वैसे बढ़ती प्यास के मारे उसका खून सूखता जाय, और प्यास और भी बढ़ती जाय । यहाँ तक कि अन्त में उस पानी के पीने से ही वह पागल हो कर मर जाय ।

२५

शोभी का मस्तिष्क आज विकृत न होता, तो भला साधारण परिस्थितियों में वह इस स्थान में जीवित रहती, जिस परिस्थिति में आजकल उसके दिन कट रहे थे ? उसकी शारीरिक दशा कुछ ही दिनों में ठीक वैसी ही धिनौनी हो गयी, जैसी बच्चा पैदा होने के पहले उमनी थी । उस वक्त उसके पेट से उसके शरीर में कुछ मास होने का भास भी होता था, पर अब तो जैसे वह केवल हड्डियों की माला बन कर रह गयी थी । बाल मैले-कुचैले हो उसके गन्दे, बेडौल, लम्बे चेहरे पर बिखरे रहते । गडो में घँसी, सफ़ेद आँखों में एक भाव-शून्यता आठो पहर

छायी रहती। साड़ी मैली-कुचैली हो नीचे से फटने लगी थी। कुर्सी ढीली-ढाली हो उसकी सूखी छातियों पर भूल की तरह भूला करती। हाथ-पैर पर मैल की कई तर्हे जम गयी थी।

उसे किसी बात का होश न था। उसे भालूम नहीं कि कितने-कितने दिनों के बाद उसे कोई दयालु खाना दे देता और वह खा लेती। भूख-प्यास से भी जैसे उसे मुक्ति मिल गयी हो। बस, वह चलती रहती, चलती रहती। और जब उसके पैर थक कर बिल्कुल अशक्त हो जाते, तो वह लुढ़क जाती। फिर रात हो या दिन एक बेहोशी की नींद में वह घटो पड़ी रहती। फिर होश आता, तो चलना शुरू कर देती, जैसे चलना ही एक मात्र उसके जीवन का उद्देश्य हो, ऐसा चलना, जिसका जैसे कोई अन्त न हो, कोई मजिद न हो, जो स्वयं ही अपना अन्तिम ध्येय हो।

चलते समय वह अपने चारों ओर चौकन्नी हो शून्य आँखों में देखती जाती। सारी विकृति के ऊपर भी जैसे घटे की चोटों की तरह हरदम उसके मस्तिष्क में एक ही शब्द गूँजा करता, 'बरन ! बरन, और उसकी भाव-शून्य आँखों के सामने केवल एक ही रूप हर घड़ी बना रहता, बरन का। वह हर गुजरते आदमी के चेहरे को घूर कर देखती, जैसे आदमी में उसे बरन के रूप का धोका होता हो। यही उसकी चालक-शक्ति थी, जो उसे इस स्थिति में भी घसीटती जा रही थी, घसीटती जा रही थी।

चलते-चलते वह रेलवे-स्टेशन पर पहुँच गयी थी। वहाँ रोज कई बार बदलते चेहरे को देखते आगे बढ़ जाने की कोशिश करती, पर उन चेहरों का अन्त न होता। एक, जाता तो दूसरा आ जाता; दूसरा जाता तो तीसरा आ जाता और इस तरह यह सिलसिला इस तरह चलता रहता, कि वह खड़ी-खड़ी बस देखा ही करती। और धीरे-धीरे वह वहाँ की स्थायी पड़ी भिखारियों में एक हो गयी। भिखारियों ने उसका स्वागत किया। थोड़े दिनों तक नया और अज्ञानी समझ कर उसका माम किया। उसे

खाने-पीने को दिया । फिर धीरे-धीरे उसे भी माँगना सिखा दिया । यह क्रिया इतने धीरे-धीरे और इतनी स्वाभाविकता लिये सम्पन्न हुई, कि शोभी को कुछ भी दूसरा मालूम न हुआ । यों कुछ समझने की शक्ति भी उसमें कहा थी ?

अब वह स्थायी रूप से वहा रहने लगी । माँगती-चुटती, जो मिल जाता, खाती-पीती और खड़े-खड़े या बैठे-बैठे हर गुजरने वाले का चेहरा घूरा करती । यही काम रह गया था उसका । इसी धारा में अन-जान रूप से उसकी जिन्दगी बहने लगी । उसके दिमाग में न आता, कि उसे आगे बढ़ना चाहिये बरन की खोज में । जैसे उसे अज्ञात रूप से इस बात का भान हो गया हो, कि उसे कही जाने की जरूरत नहीं है । अब तो जैसे वह एक ऐसे स्थान पर पहुच गयी है, जहाँ दुनिया के सारे इन्सान एक धारा में बहते हुए चले आयेगे । उन्ही में एक बरन भी होगा, जिसे वह खोजबे निकली है ।

धीरे-धीरे इस स्थायित्व और रोज कुछ खाने-पीने को मिल जाने से उसके मस्तिष्क का सन्तुलन भी कुछ-कुछ ठीक होने लगा । अब वह कुछ बातों को समझने भी लगी, कुछ चेहरों को पहचानने भी लगी । पहले तो उसे ऐसा लगता था, जैसे समार में वह सिर्फ एक ही चेहरे को पहचानती है, और वह चेहरा बरन का है ; ससार में वह एक ही की बात समझती है, और वह बात बरन की है । पर अब ऐसा बात न रही, अब वह दूसरे जाने-पहचानों के भी चेहरे पहचान लेती है, दूसरों की बातें भी कुछ-कुछ समझ लेती है ।

अब जब किसी पहचाने को आते देखती है, तो भाग कर कहीं छिप जाती है । यह स्टेशन ही बीस मील के इर्द-गिर्द बसे गावों के लोगों को बाहर ले जाने-या अन्दर ले आने का एक मात्र मुहाना था । इसलिये अक्सर वह अपने गांव या आस-पास के गाव वालों में किसी-न-किसी जाने आदमी को गुजरते देखती । उसे डर होता, कि कहीं वह उसे पहचान न ले । इससे उसके अपने लक्ष तक पहुँचने में बाधा पहुँचने

की शका होती कि कहीं उसके मा-बाप को उसकी खबर न लग जाय और उसे वह पकड़ न ले जाय । वह यही बरन की प्रतीक्षा में घर जाना चाहती थी, पर किसी भी हालत में यहाँ से बेमुराद लौट कर वह जीना न चाहती थी । जीवन में सब-कुछ खो कर अब उसने समझ लिया था, कि उसकी वह राह गलत थी, उसे एक क्षण को बरन के बिना सच्ची जिन्दगी नसीब न हुई और न हो सकती है । उसने काफ़ी अपने को धोखा दिया, और अपनी जिन्दगी बरबाद की । अब और नहीं, और नहीं । अब तो वह जियेगी, तो बरन के साथ । वही उसकी जिन्दगी होगी, बरना हर दूसरी जिन्दगी मौत होगी, बल्कि मौत से भी बदतर । इस लिये वह बरन को न पा मर जाना ही बेहतर समझती है । पर जब तक सास, तब तक आस । जब तक उसमें दग है, वह बरन की खोज जारी रखेगी । उसे इस राह से दुनिया की कोई शक्ति नहीं हटा सकती !

यो ही दिन बीतते जा रहे थे । रोज रात वह निराश हो जाती । रोज सुबह होते वह आशा से भर जाती । हर गाड़ी के आने और जाने का वक्त उसे मालूम था । उस वक्त चाहे दिन होता या रात, जरूर फाटक के पास जा खड़ी होती और हर आने-जाने वाले का गौर से देखा करती ।

एक दिन दोपहर की गाड़ी चली गयी, और स्टेशन वीरान हो गया, तो निराश हो वह लौटने लगी । सहसा सामने से गुजरते हुए उसने एक ऐसे आदमी को देखा, जिसमें, जैसे उसे लगा, वह पहचानती है, जैसे उसे कभी बरन के दादा ठाकुर के साथ अपने गांव में देखा था । उसके जो में आया, कि वह उससे कुछ पूछे । शायद बरन की कोई खबर उसे मालूम हो । शायद वह कुछ बता सके । दूसरे ही क्षण उसे डर भी हुआ कि कहीं उसे पहचान न ले । वह यह सोच ही रही थी, कि वह आदमी उसके पाम से होकर गुजर गया । अब उसे डारस बंधा, कि वह उसे बिलकुल नहीं पहचानता । तब वह धीरे-धीरे उसकी ओर बढ़ी । और सहम कर ही पुकारा—“ए, मंबा !”

उस आदमी ने मुड़ कर एक भिखारिन को देख कर कहा—“अरे मेरे पास क्या रखा है, जो मुझे पुकार रही है ? किसी बड़े आदमी को पुकार, तो कुछ मिले भी । यहाँ तो टेट में धेला भी नहीं है ।” कह कर वह बढ़ने लगा ।

शोभी अपने भेष पर जैसे स्वयं ही सकुचित हो गयी । फिर आगे बढ़ कर कहा—“भैया, कुछ मागने के लिये मैंने तुम्हें नहीं पुकारा । मैं...मैं...”

“तो कौन-सा काम अडा है तेरा मेरे बगैर ? चल, हट !” उसने आखे लाल कर कहा । वह जमीदार नहीं था, तो क्या हुआ । उसका नाँकर तो था । हवा का असर कहा जाता ?

‘ब्रूम तो नाहक बिगड़ रहे हो, भैया ! मैं तो जानना चाहती थी, कि क्या तुम बरन ठाकुर के...”

बीच ही में वह बोल पड़ा—“हा तो, मैं उन्ही का आदमी हूँ । भला तेरा कौन-सा मामला पेश है उनके दरबार में, जो...”

“अरे, भैया, जरा मगती समझ कर ही मुझ से ठीक से बोलो न ! मैंने सुना था, कि बरन ठाकुर लापता हो गये थे । भला उनका कुछ पता लगा ? तुम ठाकुर के खास आदमी हो, सोचा तुम्हें जरूर कुछ मालूम होगा, इसीलिये पूछा ।’ शोभी ने आजिजी से कहा

वह उसकी प्रशमात्मक बात से खुश हो बोला—“हा, पता लग गया है । उन्हीं को तार देने आया हूँ । बादा ठाकुर की तबीयत सात-आठ रोज से खराब थी । आज बहुत खराब हो गयी है ।” कह कर वह व्यस्तता दिखाता स्टेशन के अन्दर घुस गया ।

शोभी और बहुत-कुछ चाह कर भी उससे कुछ अधिक न पूछ सकी । तो पता लग गया है बरन का । वह है इसी दुनिया में । और उसे लगा, जैसे उसका रोम-रोम खुशी से भर गया । आखो में हर्ष छलक उठा । वह मैले आचल से आखे पोछती एक ओर हट गयी । उसने सोचा, तार जा रहा है बादा की बीमारी का । वह जरूर ही आयेगा ।

इसी टीसन पर उतरेगा। वह उसे इतने साजों बाद देखेगी। ओह, कैसा लगता होगा वह अब ? पर दूसरे ही क्षण उमे अपनी हालत की याद आ गयी। उसे इस हालत में देख कर क्या सोचेगा ? और उसने अपनी अटी देखी। कुछ पैसे थे। वह साबुन खरीद कर किमी तरह कपडो को साफ करेगी और हर क्षण टीसन पर उसके आने का इन्तजार करेगी। और खुशी से बावली हुई वह बाजार की ओर बढ़ गयी।

२६

वरन ओसारे में आरामकुर्सी पर चिन्तित बैठा था। दादा को लिखे आज बीसवाँ दिन था, पर अभी तक उनका कोई उत्तर न आया था। तार से रुपया ज़रूर आया था। उनको लिख कर एक तरह से वह कुछ निश्चिन्त हो गया था, जैसे सारी परेशानियों का भार उसने उन्हे लिख कर अपने सिर से उनके सिर सरका दिया हो। उसे पूरा विश्वास था कि दादा का प्रौढ मस्तिष्क उसकी गुत्थी को चुटकी मारते सुलझा देगा। पर अभी तक उनकी चिट्ठी नहीं आयी। इतना विलम्ब तो कभी नहीं होता था। अधिक-से-अधिक पन्द्रहवे उनका जवाब ज़रूर आ जाता था। कहीं वहाँ कोई विशेष बात तो नहीं ? वरना दादा इस तरह कभी उसके जवाब में देर न करते थे। उसकी चिन्ताओं पर एक और चिन्ता की तह चढ़ गयी। और वह आज काफी परेशान था। यहाँ डाक क्लब बजे वाली बस से आती है। अभी साढ़े आठ बजे हैं। फिर भी वरन अभी से ओसारे में बैठ डाकिये की प्रतीक्षा कर रहा है।

बेबी नहा-धो कर अपने श्रृंगार में व्यस्त थी। कल शाम को अनन्तम का उसे पत्र मिला था, कि उसकी परीक्षा का फल आ गया। वह बी० ए० पास हो गया। पिता जी बहुत खुश हैं। कल सुबह वह उन

लोगों को दस बजे उसके पास होने की खुशी में चाय देगे। बेबी अपने पिता के साथ जरूर आये। सम्भव है, दो क्षणों के लिये ही वे यहां एकान्त में मिल सकें। बेबी को पत्र पढ़ने के बाद बड़ी खुशी हुई थी। रात भर उसे नीद नहीं आयी थी। सुबह की प्रतीक्षा में न जाने क्या-क्या मीठी-मीठी बातें सोचती उसने सारी रात आँखों में ही काट दी थी। आज सुबह से ही वह व्यस्त है। नहा-धोकर, श्रृंगार करने में जुट गयी है। आज उसे अवसर मिलेगा अपने अनन्तम से मिलने का, इसलिये श्रृंगार में कोई त्रुटि न रह जाय, इस पर वह विशेष ध्यान देने के लिये काफी पहले ही से श्रृंगारदान के पास आ खड़ी हुई है। सहसा बाहर ओसारे में उसे अनन्तम की बोली सुनायी दी। गूथती चोटी हाथ में लिये ही दरवाजे की ओर बढ़ गयी। देखा तो सचमुच अनन्तम साहब के पास खड़ा, उन्हें एक पत्र दे रहा था। वह वही खड़ी खुशी-भरी आँखों से चोरी-चोरी उसे देखने लगी।

बरन ने चिट्ठी पढ़, मुस्करा कर कहा—“तुम पास हो गये, यह जान कर बड़ी खुशी हुई। पर क्या बताऊँ, आज मेरी तबीयत कुछ खराब मालूम होती है।” फिर तनिक रुक कर बोला—“खैर, जब तुम्हारे पिता जी ने बुलाया है, तो जरूर आऊँगा। पर डाक देख कर ही आ सकूँगा। जरा एक जरूरी खत का इन्तजार कर रहा हूँ। अपने पिता जी से कह देना। अच्छा। अब जाओ!”

अनन्तम चलने लगा, तो योंही दरवाजे की तरफ आखे फेद दी। दरवाजे के पीछे दो आँखों ने चमक कर जैसे कहा—“हम आ रहे हैं!”

बेबी फिर मेज़ के पास खुशी से धड़कता दिल लिये चली गयी।

दस बजे डाकिये ने लाकर पत्र दिया। बरन ने घबरा कर उसे देखा, दादा की ही चिट्ठी थी। हड़बड़ाया-सा इधर-उधर देखकर, खोलकर पढ़ने लगा। लिखा था—

‘चिरजीव बरन,

तुम्हारी चिट्ठी आज मिली। पढ़ कर समाचार मालूम किये।

तुम बिना कुछ सोचे-समझे यहां चले आओ। देर न करो। मैं यहां पर सब ठीक कर लूंगा। तुम क्या समझो ये सब बातें। यहां तो खड़े निगलते भी देर नहीं लगती। नाहक तुम इतना परेशान हुए। अरे, तुम्हें सीधे यहां चले आना चाहिये था। तेरा दादा आखिर किस दिन काम आयेगा ?

कल से मेरी तबीयत खराब है। डर लगता है, कि कहीं बीमारी बढ़ न जाय। पका आम ठहरा। जरा भी हवा लगी नहीं, कि जमीन पर आ रहा ! तू आ जायगा, तो तुम्हें देख कर आसानी से मर भी सकूंगा। तुम्हें देखने को बहुत जी चाहता है। तू उसे लेकर जल्द आ जा। मरने के पहले तुम दोनों को आशीर्वाद तो दे लू।

तार से रुपया भी भेज रहा हूँ। बेर न करना, बेटा। पता नहीं जी क्यों घबरा रहा है।

तुम्हारा,
दादा ।'

'सब-कुछ ठीक हो जायगा, वहां सब कुछ ठीक हो जायगा ! मन में हँस कहता बरन उठा और चिट्ठी की चपत जेब में रखता सहसा ही व्यस्त हो बोला—“आया ! महाराज !”

दोनों भागते आ गये, तो बोला—“सुबह की गस से हम बाहर जायगे। शाम तक सफर का सब सामान ठीक हो जाय। सब सामान अभी से बाधना-बूधना शुरू कर दो। समझे ! और, हा शाम को तुम लोगों का हिसाब कर दूंगा।”

“तो, साहब,” महाराज ने हकलाते कहा—“क्या हमेशा के लिये ?”

“कोई ठीक नहीं, कोई ठीक नहीं ! जाओ, जाओ, तुम लोग अपना काम जल्द शुरू कर दो !” कह कर वह बेबी के कमरे की ओर बढ़ा, कि अग्र्यर के मौकर ने आ कर कहा—“साहब, साहब ने बुलाया है। कहा है, कि बहुत देर से इन्तजार कर रहे हैं।”

“ओह, लेकिन अब तो वहा जाना नहीं हो सकता । अपने साहब से बोलना—लेकिन रुको ।” उसने पुकारा —“बेबी ! बेबी !”

दरवाजे पर खड़ी बेबी ने उसकी हर बात सुन ली थी । वह बाहर जाने की बात सुन कर सहसा ही आसमान से गिरी-सी हा गयी थी । चेहरा फक पड़ गया था । किसी तरह अपने को सभाल कर वह बाहर आ बरन के सामने जा खड़ी हो गयी ।

बरन ने उसकी ओर देखा । फिर जैसी दो क्षण को किसी सोच में पड़ गया । फिर बोला—“उह, हा, बेबी, अय्यर जी के यहा से चाय का निमन्त्रण आया था । अभी-अभी दादा के यहा से एक जल्दी पत्र आया है । उनकी तबीयत खराब है । हमें जल्द ही वहा के लिये चल देना चाहिये । इसलिए सब सामान आज ही ठीक कर लेना है । मैं वहा चाय पीने नहीं जा सकता । अगर तुम ‘‘हा-हा, तुम चली जाओ । मेरी तरफ से चिट्ठी की बात कह कर माफी माग लेना । और हा, बहुत देर न करना । जल्दी ही चली आना ! ए ! मैं आया को बुलाये देता हू ।” कह कर उसने आया को पुकारा ।

आया के साथ बेबी चली, तो जैसे उसके पैर सीध में पड़ रहे थे । मिनटों में ही जैसे उसकी सारी सजीवनी-शक्ति सूख गयी । उसको रोना आ रहा था । हृदय में जैसे सैकड़ों बछिया-सी चुभने लगी थी । उसे एक असह्य पीड़ा-सी हो रही थी । ओह, वह चली जायगी ! अनन्तम से शायद सदा के लिये अलग हो जायगी ! कैसे जियेगी वह ? ओह, कैसे रहेगी वह ?

अनन्तम और उसके पिता मेज पर बैठे इन्तजार कर रहे थे । बेबी मेज के पास तक पहुंचते-पहुंचते जैसे बेहोश-सी होने लगी । किसी तरह कुर्सी पर बैठ उसने अपना मिर मेज पर पटक दिया ।

अय्यर ‘हा-हा’ कहता उठकर, व्यस्त हो उसके सिर पर हाथ रख बोला—“क्यों, बेटी, क्या हुआ ? बरन साहब कहा रह गये ?”

अनन्तम का कलेजा धक-धक करने लगा । हाय, यह क्या हो गया

बेबी को ! रूआसा हो, भय-लाज छोड़, मुक कर वह चीखने लगा—
“बेबी ! बेधी !”

बेबी ने अपना हृदय हाथों से दबा लिया । और सिर को भकभोर जैसे सारी हया छोड़ बिलख-बिलख कर रोने लगी ।

अनन्तम की आंखों में भी टप-टप आसू चूने लगे । परेशान-मा अथर कभी बेबी की ओर और कभी अनन्तम की ओर देखने लगा । वया बात है, उसकी समझ में कुछ न आता था । आखिर उसने आया की ओर देखा ।

आया ने सिसक-सिसक कर सब वता दिया । फिर बोली—“कल सुबह बेबी के साहब देश चले जायंगे । इनका प्रेम खत्म हो जायगा । दिल टूट जायगे ।” कह कर ऐसे फफक-फफक वह रोने लगी, जैसे एक माली अपने लगाये पौधे को भुलसते देख कर रोने लगता है । सचमुच उन दोनों के बीच प्रेम का बीज डाल उसी ने उसे अकुरित होने, पलने और फलने-फूलने का अवसर दिया था ।

मुनकर अथर एक क्षण की सन्नाटे में आ गया । फिर प्यारे बैँ की आसू बरसाती आखों को देख जैसे क्षण में ही किसी निश्चय पर पहुँच, मुस्कराने की चेष्टा करते कहा—“अरे, तो तुम लोगो ने मुझ से क्यों न कहा ?” फिर बेबी के सिर पर हाथ फेरते कहा—“चुप रह, बेटे, चुप रह ! तू जैसा चाहेगी, वैसा ही होगा । अपनी तरफ से अनन्तम को मे अभी से तुम्हें दे देता हूँ । और अभी चल कर बरन साहब से सब बातें पक्की कर लेता हूँ । वह मेरी बात न टालेंगे । आखिर तुम्हें कही-न-कही तो वह ब्याहेगा ही । फिर अनन्तम ही क्या बुरा है ।” कह कर उन्होंने आया को एक अभूषण दृष्टि से देखा । फिर कहा—“आया, अभी यह बात हमारे ही बीच रहे ।”

आया ने सिर हिला कर मुस्करा दिया । फिर दुपट्टे से आसू पोछने लगी ।

बेबी और अनन्तम को ऐसा लगा, जैसे किसी ने जादू के बल से उन्हें कालों के अम्बार से उठा कर फूलों की सेज पर रख दिया हो । वे स्वप्न

में भी कहाँ सोचते थे, कि उनकी मुश्किल इस तरह हल हो जायगी। उन्होंने हर्ष से चमकती आँखों से एक साथ ही अय्यर को देखा। अय्यर ने दोनों के सिर पर हाथ रख आया से कहा—“जरा मेरे नौकर से कह तो दो, कि जल्दी चाय लाये।”

चाब के बाद स्वयं अय्यर बेबी को साथ ले लौटा। बेबी अपने कमरे में चली गयी और अय्यर आगत में बरन के पास जा खड़ा हुआ, जहाँ सामान बाधने के लिये इकट्ठा हो रहा था। अय्यर को देख बरन ने कहा—“माफ कीजियेगा, मैं आन सका ! दादा की चिट्ठी आयी है।”

“वह सब मुझे मालूम हो गया है,” अय्यर ने कहा।

“आइये, आप बैठक में बैठिये ! मे क्या बताऊँ, सब सामान आज ही ठीक कर रखना है ! कल सुबह ही चले जाना है।” बैठक की ओर बढ़ते बरन ने कहा।

“आखिर सब सामान वगैरह क्यों लिये जा रहे हैं। जल्दी हो, ती आप चले जाइये या फिर लौटने का इरादा नहीं है ?” एक कुर्सी पर बैठते अय्यर ने कहा।

“कुछ कह नहीं सकता। दादा की तबीयत खराब है। बूढ़े हो गये हैं वे बहुत। और कोई तो घर में है नहीं, पता नहीं, वहाँ जा कर किस परिस्थिति से सामना पड़े।” अय्यर के सामने बैठते बरन ने कहा।

“अगर ऐसा हुआ, बरन साहब, तो मेरी तो दुनिया ही उदास हो जायगी। ले-दे कर आप ही तो एक थे यहाँ, जिससे कुछ तबीयत बहल जानी थी। अब आप भी मुझे छोड़ कर चले ?” उदाम हो अय्यर ने कहा।

“क्या करे, अय्यर जी ! यह तो संयोग की बात है। जिसके साथ जितना संयोग हो। जिन्दा रहेगें, तो कभी फिर मिलेंगे।”

“सो तो है ही।” तनिक रुक कर, जैसे सोच कर कि असल बात कैसे शुरू करे, वह बोला—“बरन साहब, अन्नन्म बी० ए० पास हो गया।

बड़ा भी हो गया। अब सोचता हूं, कि वह घर का भार संभाले। घर में किसी लड़की के पाजेबों की छम-छम, हंसी की खिलखिलाहट सुनायी दे। उड़ड़ा घर बस जाय।”

“ठीक तो है। फिर देर जाने की। कोई अच्छी-सी लड़की देखकर अनन्तम को व्याह लीजिये। घर गुलजार हो जायगा।” बरन ने कहा।

“हां, सा तो करना ही होगा। बरन साहब, आपको भी तो बेबी की अब चिन्ता हो रही होगी। देखिये न, कितनी जल्दी आखों के सामने ही वह कितनी से कितनी बड़ी हो गयी!”

सहसा बरन के चेहरे पर धुआं सा उड़ने लगा। आशका से उसका हृदय धड़क उठा। यह अय्यर अनन्तम के ही सिलसिले में बेबी की भी बात क्यों कर रहा है? कहीं कोई बात तो नहीं? पर सभल कर बोला—“देश जाने पर ही इसके विषय में कुछ सोचा जायगा।” कह कर अपने अन्दर एक घबराहट-सी महमूस कर वह उठने लगा।

“जरा बैठिये। मुझे एकाध बात और भी आपसे इस सिलसिले में करनी है।”

बरन ऐसे बैठा, जैसे कांटो पर उसे बैठने के लिये कहा जा रहा हो। बैठ कर आखें चुराता-सा बोला—“जल्दी कहिये! मुझे आज बहुत काम है।”

“उसके लिये आप घबराइये नहीं। मैं सब-कुछ करा दूंगा। हा, तो मैं...मैं कहना चाहता था,” सूखते गले के नीचे जैसे कुछ उतार कर अय्यर बोला—“कि अनन्तम और बेबी का जोड़ा कैसा रहेगा।”

बरन को लगा, जैसे उस पर बिजली गिर गयी हो। वह एक बार जैसे अगूठे से ले कर सिर के बाल तक काप गया। उसका सीना जोरो से धड़क उठा। आखें लाल हो गयीं। नथुने फड़कने लगे। वड़े ही अजीब-से जैसे गुस्से को पीते हुए भाव से वह बोला—“इस तरह की बात आपको न करनी चाहिये, अय्यर जी। आप...आप बहुत

ठहरे। मैं ठाकुर, भला ऐसा भी कही होता है ?” कहकर वह फिर उठने लगा।

अय्यर ने उसका हाथ पकड़ कर बैठते कहा—“क्या आपने कभी किसी से प्रेम किया था ?”

यह अय्यर प्रेम की बात क्यों कर रहा है ? क्या बेबी और अनन्त-में... वह और भी घबरा गया। उसकी सांस जैसे फूलने लगी। पर इस तरह अपने पर उसकी बात की प्रतिक्रिया को दर्शाना उसने ठीक न समझा। उसने भट अनुभव किया, कि इस समय उसे एक पिता का अभिनय करना चाहिये। वरना भावावेश में कोई बात मुह से निकल गयी, तो यह चतुर अय्यर कही कुछ ताड़ न जाय। वह जोर लगा कर, अपने आवेश पर काबू पा बोला—“प्रेम कभी मैंने अपनी बीवी से किया था।”

“प्रेम के शोले क्या होते हैं, यह कभी आपने अपने हृदय में महसूस किया है ?” सीढ़ी-दर-सीढ़ी अय्यर बढ़ा।

प्रेम के शोलो का जो अनुभव अपने हृदय में वरन ने किया था, वैसा दुनिया में शायद बहुत कम लोग कर पाये होंगे। उसे मालूम था, कि उन शोलो ने किस तरह करीब-करीब उसे राख कर के ही छोड़ दिया था। पर इस समय वह कुछ भी सच नहीं बोलना चाहता था। जिस तरह बीवी से प्यार करने की बात उसने झूठ कही थी, उसी तरह इस बार भी बोला—“शोलो की बात मैं क्या जानू। मैं तो समझता हूँ, कि प्रेम वह वस्तु है, जिससे जीवन को चादनी की शीतलता प्राप्त होती है। मेरा तो कम-से-कम यही अनुभव है।”

“प्रेम का यह एक पहलू है। मिलन में ऐसा ही होता है। पर वियोग में चांद भी जैसे शोलों की वर्षा करता है, इसका कभी आपने अनुभव नहीं किया है ?” अय्यर ने जैसे डूब कर कहा। उसकी आंखों की पलकें झुक गयी थीं।

बरन शरारत पर उतर आया था। सो हंस कर बोला—“ऐसा तो मेने कभी अनुभव नहीं किया।”

अय्यर को जैसे गुस्सा आ गया। वह ताव मे आ कर बोला—“तब आप झूठ बोलते हैं। शायद आप कभी जवान न थे, शायद आपने सच्ची मानी मे कभी किसी लड़की से मुहब्बत न की। वरना आपको जरूर अनुभव होता, कि जो प्रेम सफल होकर चादनी की शातलता जीवन के कण-कण मे बिखेर देता है, वही प्रेम असफल होकर हृदय मे ऐसे शोले लगा कर छोड़ देता है, जो जीवन को राख कर के ही दम लेते हैं। यह कहने की बातें नहीं हैं, किन्तु सुन लीजिये कि मेने एक लड़की से प्रेम कर के ही उसे ब्याह किया था। जब तक वह रही जीवन पर चांदनी छाया रही। पर जैसे ही वह मुझे छोड़ गयी, मे उसके वियोग के शोलो मे जल कर राख हो गया। इस वक्त जो अय्यर आपके सामने बैठा है, वह जीवित नहीं है, वह उस अय्यर की राख है!” कहते-कहते उसका गला भर आया। आखो से टप-टप आसू चूने लगे।

बरन के लिये यह कोई नयी बात न थी। कहना चाहता, तो शायद अय्यर से भी बढ-चढ कर उसके पास अपने प्रेम के अनुभव की बातें थी। अय्यर की बातें कितनी सच थी, वह मन-ही-मन सोच रहा था और उसे अपनी वे पुरानी सब बातें एक-एक कर याद आ गयी। उन्ही मे वह कुछ ऐसे अनजाने रूप से खो गया, कि अय्यर की बातों का जवाब देना ही नहीं, बल्कि यह भी भूल गया कि इस वक्त वह एक दकियानूस पिता का अभिनय कर रहा था। शोभी की बात जब भी उसके दिमाग मे भूले से भी आ जाती थी, तो वह इसी तरह सारी दनिया को भूल जाया करता था।

अय्यर ने आखे पोंछ कर कहा—“तो, बरन साहब, सुनते हैं?”

“जी!” ख्यालों से ऊपर आ बरन बोला।

“तो प्रेम वह वस्तु है बरन साहब ! और शायद आपको नहीं मालूम। मुझे भी मालूम नहीं था,” बड़े ही गम्भीर स्वर मे अय्यर ने कहा-

पर अब हो गया है, कि अनन्तम और बेबी एक-दूसरे से प्रेम करते हैं ।”

“प्रेम ?” बरन के मुंह से ऐसी आवाज निकली, जैसे उसके दिल के फटने पर निकली हो । और वह निष्प्राण-सी आंखों से अय्यर की ओर देखने लगा ।

“हा, बरन साहब ! इसीलिये मैं यह प्रस्ताव लेकर आया था । अगर वह अलग हो गये, तो समझ लीजिये कि जल कर राख हो जायगे । मेरे एक ही लडका है । और जैसा मुझे मालूम है, बेबी भी आपकी बड़ी लाडली है । क्या हम उन्हें यो बरबाद होते देख सकते हैं ? नहीं, नहीं, साहब, ऐसा नहीं होना चाहिये । मैंने तय कर लिया है । आप भी अपनी सम्मति अवश्य दे दें !”

बरन का दिमाग फट रहा था । कुछ कहते उससे न बन पड़ रहा था । फिर भी उसने किसी तरह कहा—“इसके विषय मे दादा से राख लिये बिना मैं कुछ भी नहीं कर सकता । इस वक्त आप मुझे और अधिक परेशान न करें । आप चले जायं । मुझे बहुत काम है ।

“यह आप नहीं जानते कि मामला कितनी गम्भीरता की सीमा तक पहुँच चुका है ! इसे हम इस तरह टाल नहीं सकते !” अय्यर ने मिनत की ।

“आप चले जाइये ! ” और अधिक सहने मे असमर्थ हो बरन चीख पड़ा—“वरना मैं चला जाऊंगा ।” कह कर वह आगन की ओर भाग गया ।

सन्नाटे मे आ अय्यर किसी तरह उठ कर पैर घसीटता चल पड़ा । बैठक के पीछे खड़ी-खड़ी सब बातें सुन बेबी बिस्तर पर गिर सिसकने लगी । उसका दिल ऐंठा जा रहा था । बहुत देर तक रोने के बाद रोती-रोती वह अनन्तम को चिट्ठी लिखने बैठ गयी । आसू की बूँदें टप-टप कागज पर गिर अपनी कहानी लिख रही थी और बेबी की कलम अपनी ।

वरन बेहद बौखला गया था। करीब-करीब पागल ही हो गया था। बेबी के कमरे में जाने की उसकी हिम्मत न होती थी। उसके सामने खड़ा होने का साहस उसमें न था, वरना उसका जी करता था, कि उसकी बोटी-बोटी नोच कर समुन्द्र में फेक दे। गुस्से, हिंसा, बदले, धृणा की कितनी ही मिली-जुली भाव-धाराये उसके दिल व दिमाग में तूफानी वेग से बह रही थी। वह किसी भी तरह अपने को सभालने में असमर्थ हो रहा था। जब खड़ा होना असम्भव हो गया, तो नौकरों को समझा कर, अपने कमरे में जा ठंडा पानी पी कर विस्तर पर लेट गया। उताप के मारे जैसे उसकी जान निकल रही थी।

धीरे-धीरे काफी देर में उसका दिमाग कुछ ठंडा हुआ, तो एक-एक कर सारी बातें उसके मस्तिष्क में फिर उभरने लगी। सोचते-सोचते उसे लगा कि बेबी और अनन्तम शोभी और उसके इतिहास को हू-बहू दुहरा रहे हैं। इसी तरह उन्होंने भी तो दुनिया की नज़रों से छिपा कर अपना प्रेम-महल तैयार कर लिया था। पर एक दिन...और उसे ख्याल आया, कि उसके दादा शोभी के बाप के यहाँ ठीक इसी तरह गये थे, जिस तरह आज अनन्तम का बाप उसके यहाँ आया था, और... जिस तरह निराश हो दादा लौटे थे, उसी तरह अग्यर भी निराश होकर लौटा है। ओह, उस दिन उसकी क्या हालत हुई थी। तो... तो क्या अनन्तम की भी आज वैसी ही हालत हुई होगी? और जैसी शोभी की...वैसी ही बेबी की भी?...और उसका ध्यान जैसे बेबी के कमरे की ओर आप ही खिंच गया। ध्यान दे उसने सुना, तो उसे लगा कि बेबी की सिसकियों की आवाज़ धीरे-धीरे उसे सुनायी दे रही है। तो...तो बेबी रो रही है। ओह ! यह क्या हो गया ! और उसने दोनों हाथों से बेकाबू-सा हो अपना सिर पीट लिया और फफक-फफक रो पड़ा।

भुक्त-भोगी बरन लाख-कोशिश करता कि वह अपना दिल कड़ा कर ले। पर जैसे चाह कर भी अपने दिल में बेबी और अनन्तम के

प्रति उठती सहानुभूति को वह दबा न पाता था। वह सोचता कि यदि शोभी का बाप प्रेम-पीर को जानता, तो क्या जान-बूझ कर अपनी बेटी को आग की लपटों में भोंक देता ? शायद नहीं। पर शोभी के साथ दूसरी अडचने भी थी। उसकी मंगनी हो गयी थी, जिसे तोड़ देना सामाजिक व्यवस्था से विद्रोह करने के बराबर है। शोभी के मूर्ख बाप में इतनी समझ या हिम्मत कहाँ थी ? पर...पर बरन तो पढा-लिखा है, समझदार है, प्रेम की पीर को भोग चुका है। क्या वह भी शोभी के बाप की ही तरह बेबी के प्रेम की परवाह न कर, अपने स्वार्थ के लिये पूरी जिन्दगी के लिये आग में भोंक देगा ? क्या उस स्थिति में बेबी जीवित रहेगी ? उसे याद आया, कि किस तरह शोभी से बिछड़ कर वह जीवित-मृत हो गया था। क्या बेबी उसी की तरह एक जिन्दा लाश न रह जायगी। उसकी यह उठती जवानी, उसका यह आकर्षक शरीर क्या उसी की तरह विरह की आग में पिघल न जायगा ? फिर क्या फायदा होगा उसे अपने बन्धन में कस कर, जब एक क्षण को भी वह उसे उस रूप में न देख सकेगी, जिस रूप में वह चाहता है ? तो क्या करे वह ? क्या उसे...

नहीं, नहीं ! और उसे वह सारी परेशानियाँ और मुसीबते याद आयी, जिनसे हो कर वह बेबी को आज जवान कर पाया था। उसने क्या यही दिन देखने के लिये सब किया ? नहीं, नहीं, वह बेबी को छोड़ नहीं सकता ! उसके लिये उसने पूरे दस साल तक तपस्या की है। सिद्धि-प्राप्ति के समय वह क्या इस तरह छल दिया जायगा ? नहीं, नहीं, वह बेबी के बिना जीवित नहीं रह सकता ! वह उसके रोम-रोम में बस चुकी है, प्राण-प्राण में भिन्न चुकी है। उसे छोड़ कर वह कैसे रह सकेगा ?

पर बेबी ! क्या इस तरह बेबी बरबाद न हो जायगी ? हो जायगी तो हो जाय ! वह भी तो उसे सुखी कर बरबाद हो जायगा। एक बार दुनिया ने उसे बरबाद कर दिया। फिर दूसरी बार वह अपने हाथों अपनी बरबादी नहीं कर सकता। वह अब जियेगा, भयङ्कर रूप से जियेगा ! वह किसी

की परवाह अब नहीं करता ! उसे किसी का अब डर नहीं ! उसे किसी की अब चिन्ता नहीं ! उसे बस अब अपनी चिन्ता है, अपने जीवन की चिन्ता है, अपनी खुशी की चिन्ता है ! उसने बहुत दुख उठाया । अब नहीं उठा सकता, नहीं सह सकता ! चाहे इसके लिये बेबी नष्ट हो जाय, सारा संसार नष्ट हो जाय ! उसने बेबी को बनाया है ! उसका उपयोग भी वही करेगा ! भले ही वह टूट जाय, समाप्त हो जाय ! इसकी उसे बिल्कुल परवाह नहीं ! बिल्कुल नहीं ! और जब वह यह दृढ़ निश्चय करके उठा, तो उसका चेहरा भयकर हो उठा था, जैसे खून की उवाल के कारण फूल गया हो । ललाट और कनपटिया लाल हो गयी थी । आखे फैल कर सुर्ख हो गयी थी । नथुने फडक रहे थे ।

उसने आगन में जाकर देखा, सामान बंध रहा था । एक चक्कर लगा कर वह बेबी के कमरे की ओर घूमने लगा, तो महाराज ने कहा--

“साहब, खाना कभी का तैयार है लाऊ !”

“नहीं आज मैं नहीं खाऊंगा । तबीयत ठीक नहीं ।...हा बेबी को खाना खिला दो !”

“साहब, उनसे पूछ चुका हूँ । उनकी भी तबीयत खराब है ।”

“तबीयत खराब है ?” बरन ने भौहो पर बल लाकर कहा—
“खैर, तुम नौकर को सामान ठीक करने में मदद दो” कह कर वह बेबी के कमरे की ओर बढ़ा, पर दरवाजे पर जाते-जाते उसके पैर ठिठक गये । क्षण भर खड़ा कुछ सोचा । फिर मुड़ कर आगन में आ बोला—“आया नज़र नहीं आती ? कहा है वह ?”

“साहब, कपड़े लेकर नहाने गयी है,” महाराज ने कहा । बरन अपने कमरे की ओर बढ़ गया । कमरे में जा अपने कपड़े-लत्ते सूटकेस और बक्सों में ठीक करने लगा ।

अप्यर को उदास लौटते देख अनन्तम ने खुद ही सब-कुछ समझ लिया था । वह अपने बिस्तर पर ऐंठता दिल हाथों में दबाये पता नहीं कब से छटपटा रहा था । तभी आया ने पहुँच कर बेबी का पत्र उसके

हाथों में दे कहा—“बेटा, यो रौने से काम न चलेगा । जल्दी कुछ करो, वरना सब बना बनाया खेल चौपट हो कर रह जायगा । शाम को बेबी वहां पच्छिम की तरफ समुद्र के किनारे, जहाँ चट्टान ह न, आयेगा । तुम आना । और मेरी तो राय है कि तुम लोग एक दो, तीन हो जाओ । साहब की चिन्ता तुम लोग न करा ।...मेरी भोली बेबी का क्या होगा ? उसे गोद मे मेने खेलाया है, इसलिये इतना मोह लगता है । तुम उसको बचाओ बेटा ! वरना तुम लोगो पर जो पड़ेगी, सो तो पड़ेगी ही, मेरा भी दिल टूट जायगा !”

पता नही अनन्तम ने उसकी बात सुनी या नही । चिट्ठी पढ़ कर उसे कुछ सन्तोष हुआ । वह बोला -“तो बेबी वहा जरूर आयेगी ?”

“हाँ, हा, बेटा ! इसका जिम्मा मेरा । पर तुम तब तक कुछ-न-कुछ निश्चय जरूर कर लो । तुम्हारे पिता भी इस बात मे तुम्हारी मदद कर सकते हैं । चाहो, तो उनसे भी पूछ लो । अच्छा, अब मे जाऊगी । नहाने का बहाना करके आयी थी । कही कुछ मालूम हो गया तो...” और वह तेजी से बाहर हो गयी ।

अनन्तम फिर चिट्ठी पढने लगा—

‘मेरे प्यारे अनन्तम,

मेरी हालत इस वक्त ठीक नही है । साहब हर हालत मे मुझे लेकर कल सुबह ही चले जाने को तुले हैं, पर मे हरगिज-हरगिज जाना नही चाहती । तुम्हारे बिना मे अब एक-क्षण को नही जी सकती । आज शाम को उसी चट्टान पर मुझसे मिलो । शायद यह हमारा आखिरी मिलन हो, इसलिये वहा जरूर आओ । मेने निश्चय कर लिया है कि अगर कोई राह न निकली, तो समुद्र की गोद...

तुम्हारी ही,
बेबी ।’

अनन्तम बार-बार पत्र पढ़ता और सोचता । आखिर काफी देर तक

सोचने के बाद एक नतीजे पर पहुँच, वह उठ कर उदास बैठे पिता के पास जा बोला—“पिता जी !”

अय्यर उसकी आवाज सुन घबरा गया। उस आवाज में ऐसे भाव का पुट था जो आदमी में मरने का साहस आ जाने पर होता है। वह आशंकित हो बोल पड़ा—“बेटा, चाहे जो भी करना, लेकिन यह न भूलना कि तेरे एक पिता हैं, जो तुझे खोकर एक पल भी जीवित नहीं रह सकता।”

अनन्तम ने वैसे ही कहा—“कार में कितना पेट्रोल है ?”

“तुम जितना चाहो, भरवा दूंगा ! कई टीन मेरे पास हैं।...हाँ, रुपये भी जितना चाहो, ले लो। पर...पर मुझसे बता कर जाना।” अय्यर ने सब कुछ जैसे समझ कर कहा।

“उसमें जितना पेट्रोल आ सके, भरवा दीजियेगा। और ड्राइवर से कह दीजियेगा, कि शाम को मोटर बिल्कुल तैयार रखे !” कह कर वह आखों में निश्चय की चमक लिये मुड़ने लगा, तो अय्यर ने कहा—“पर, बेटा, तुमने कुछ बताया नहीं। मेरा दिल बहुत छोटा है। बस तू ही एक रह गया है, मेरा सहारा। वरना क्या है मुझमें !”

“सब बता दूंगा, पिता जी !” कह कर वह अपने कमरे में चला गया।

शाम तक सब सामान बँध-बँधा कर आंगन में अम्बार बन कर पड़ा था। सब कमरे खाली हो गये थे। सोने के कमरे में पलंग पर होलडाल में बिस्तर फैला दिया गया था, ताकि सुबह उठते ही उसे समेट लिया जाय। बस बिल्कुल सुबह जाती है। उस वक्त कुछ भी समय नहीं मिलता, इस-लिये सब सामान बिल्कुल ठीक कर लिया गया था। सामानों की जाँच कर, नोट-बुक पर उनकी अदद और कैफियत जब बरन लिख चुका, तो नोट-बुक जेब में रख लीकर से बोला—“इसी वक्त बस आ जाने पर सब सामान उसकी छत पर लाद दिया जाय, तो कैसा ?” बरन को बेहद जल्दी हो रही थी। पता नहीं, उसे क्यों शंका थी, कि सुबह तक कहीं कुछ

आश्चर्यजनक घटना न घट जाय, जिससे उसे रुकना पड़ जाय। अब वह यहाँ एक क्षण भी रुकना न चाहता था। अगर बस शाम को ही जाती, तो वह तभी चल देता। पर बस सुबह ही जाती है। फिर भी उसके दिमाग में यह बात आयी कि अगर पूरी बस का किराया लेकर भी बस इसी वक्त जा सके, तो वह चला जायगा।

नौकर ने कहा -- “ठीक, साहब।”

उसी वक्त हार्न सुनायी दिया। “बस आ गयी, “वह बोला -- “अरे जरा टार्च तो लाओ। मैं कन्डक्टर से मिलकर ठीक कर आऊँ।”

नौकर से टार्च लेकर वरन तेजी से घर के बाहर हो गया।

आया तो जैसे टाही लगाये खड़ी थी। उसे बेबी को भेजने में बड़ी कठिनाई की सम्भावना हो रही थी। पर अवसर आप ही सामने आ गया। वह खुश हो बेबी के कमरे में जा बोली धीरे से -- “साहब बाहर गये। तुम चली जाओ। मैं रसोई की तरफ नौकरो को बभाती हूँ।”

बेबी धडकता दिल, काँपती टांगे, उभरे हुए रोंगटे लिये देर से तैयार बैठी थी। भट उठ खड़ी हुई।

आया ने रसोई की ओर नौकरो को लेकर अपनी और उनकी नौकरी छूटने की बात छेड़ दी, तो धीरे से चौकन्नी आँखों से इधर-उधर देखते बेबी चौखट के बाहर हो गयी।

शाम भुक आयी थी। अंधेरा पक्ष होने से अन्धकार इसी वक्त भयावना और गाढ़ा हो गया था। समुद्र का कोई पक्षी आसमान में जोर-जोर से चीख रहा था। हवा सर-सर चल रही थी। सागर की लहरें जैसे चीत्कार कर रही थी। कहीं किसी का पता न था। निर्जनता भयङ्कर हो जैसे सजीव हो गई थी। बेबी अपने को किसी तरह सभालने में असमर्थ काँपते पैरों से भागती चली जा रही थी। उसके काले कपड़े अन्धकार में एक रंग हो गए थे।

वह बस नहीं थी। वरन ने हार्न की जो आवाज़ सुनी थी, वह किसी की कार की थी। चूँकि बस का वक्त हो गया था, और वरन के कानों में जैसे पहले ही से उसकी पहुँच की सूचना देने वाला हार्न गूँज रहा था,

इसलिये गलतफहमी हो जाना स्वाभाविक था । वह कुछ देर तक वहां बस आने का इन्तज़ार करता, पर बस से भी अधिक ज़रूरी चीज़ वह घर पर छोड़ आया था । वह बेबी को अब एक मिनट के लिये भी अकेला न छोड़ना चाहता था । पता नहीं, कब वह क्या कर बैठे ? असफल प्रेम-जनित दुस्साहसिकता का उसे स्वयं अनुभव था । वह भट पलट पड़ा ।

घर आ कर वह सीधे बेबी के कमरे में घुस गया । मेज़ पर लैम्प जल रहा था, पर बेबी नदारद । उसने दुश्का में कांपती आँखों से कमरे के कोनों में देख कर पुकारा | “बेब ! बेबी !”

कहीं से कोई उत्तर नहीं ! उसने घबरा कर दूसरे कमरे को देखा । कहीं भी बेबी न थी । तब कांपता हुआ ही आँखों में खौफ़ का चीखता सन्नाटा लिये पुकारा — “आया ! महाराज...”

तीनों नौकर उसके सामने आ खड़े हो गये । महाराज और नौकर ने समझा, साहब, हिसाब देने के लिये बुला रहे हैं पर आया की जान सूख रही थी ।

“बेबी कहाँ है ?” उसने कड़क कर पूछा ।

वे कांप उठे । आया के प्राण तो जैसे नखों में समा गये । पर किसी तरह उसने ही कहा—“अपने कमरे में होगी, साहब ।”

“नहीं है कमरे में !” उसने गला फाड़ कर कहा ।

“नहीं है ?” आया व्यस्त-सी हो रोनी-सी आवाज़ में बेबी के कमरे की ओर मुड़ती बोली—“अभी थी ।”

“नहीं है । मैं देख रहा हूँ । कहा जाती है उधर ?” चीख कर जैसे दौड़ो-हवास खो बरन बोला ।

“हजब, मेरी बेबी कहाँ चली गयी ! इस वक्त तो वह कभी कहीं नहीं जाती ।” कह कर वह अपना सिर पीटने लगी । फिर बोली—“अरे, तुम लोग देखो तो, कहाँ चली गयी वह !” और बैठ कर रोने लगी

दोनों नौकर बाहर भागे । उनके पीछे-पीछे बरन भी बाहर हो गया ।

नौकर इधर-उधर घाटो पर खोजने लगे। बरन सीधे अय्यर के होटल की तरफ बढ़ा। वह इस समय होश में न था। बाहर जैसा अन्धकार फैला था, जैसा समुद्र का शोर हो रहा था, वैसा ही अन्धकार उसके मस्तिष्क में भी काप रहा था, वंसा ही तूफानी शोर उसके हृदय में भी मचा हुआ था। उसे याद आयी वह घड़ी, जब अन्तिम बार वह बिछड़ने वाला था। अगर शोभी ने ज़रा भी सकेत किया होता, तो वह उसे घोड़े पर चढ़ा नौ-दो ग्यारह हो गया होता, इस समय उसे वही आशका खाये जा रही थी। उसे भय लग रहा था, कि कहीं अनन्तम और बेबी...

होटल के पोर्टिको में कार की घरघराहट सुन उसका दिल ज़ोर से धड़क गया। वह दौड़ पड़ा। देखा, तो उसमें सिर्फ़ ड्राइवर बैठा था। उसने डाँट कर पूछा—“कौन जा रहा है?”

“मुझे नहीं मालूम, साहब ने स्टार्ट करने को कहा है।” ड्राइवर चे डर कर कहा।

“तुम्हारे साहब अन्दर हैं? यहाँ बेबी तो नहीं आयी?” बरन ने बोखलाये हुए ही पूछा।

“जी, साहब अन्दर ही है। बेबी तो इधर नहीं आयी।” कह कर ड्राइवर ने चोक लिया।

घड़घड़ाता हुआ बरन अन्दर पहुँचा। अय्यर काउण्टर पर घबराया हुआ बैठा हुआ था। बरन को आते देखा, तो सभल कर बोला—“आइये, बरन साहब! चाय मंगवाऊ?”

चिढ़ कर बरन बोला—“चाय पीने नहीं आया हूँ? अभी-अभी बेबी तो यहाँ नहीं आयी थी?”

“जी; नहीं यहाँ तो वह नहीं आयी। क्यों घर पर नहीं है क्या?” अय्यर ने बन कर पूछा।

“अजीब आदमी है आप! घर पर होती, तो मैं दौड़ा हुआ यहाँ क्यों

आबा ? अनन्तम कहां है ?” बरन ने ऐसे पूछा, जैसे योंही पूछ रहा हो ।

“अपने कमरे में ही होगा। पुकारू ? कोई काम है क्या ?” अय्यर ने टालने की गरज से कहा ।

“हा, जरा बुलाइये उसे ।” कह कर बरन फिर पोरटिको की ओर पक पड़ा । वहां कार वैसे ही चढती-उतरती घरघराहट में व्यस्त थी ।

अय्यर काउण्टर पर से उतर ‘अनन्तम, अनन्तम’ पुकारता अन्दर गया । पर अनन्तम वहाँ कहाँ था, जो बोलता । अय्यर को सब मालूम था । वह घबराया हुआ-सा भाग कर, बरन के पास आ बोला— ‘अनन्तम भी नहीं है । हे भगवान् !’ कहा गया वह ! बरन साहब मुझे डर नग रहा है, कि कही वह ओह, मे कह रहा था न आपसे, मगर प्रापने मेरी एक न सुनी । ओह, अब क्या होगा ? हे भगवान् !”

तो बरन को जो दङ्का थी शायद वही हो कर रही । फिर भी हार मानने वाला न था वह । वह टार्च जला कर होटल के अन्दर चारो ओर देखने के बाद बाहर निकला । अय्यर परेशान खड़ा था । कार घर-घराये जा रही थीं । बरन ने ड्राइवर से कार बन्द करने के लिये कहा । और हाथ बड़ा कर स्टार्ट की चाभी निकाल जेब मे रखली । अय्यर ने यह देखा, तो अब-सब-मुच घबरा गया ।

बरन अब टार्च जला गुस्से से काँपता होटल के चारो ओर दूर-दूर तक रोशनी फेक देखने लगा । उसे पूरा विश्वास हो गया था कि कार उन्ही के लिये तैयार थी । वह यही आस-पास जरूर होगा । दूढ़ते-दूढ़ते वह होटल के पीछे की ओर चला गया । इधर-उधर रोशनी फेंक वह आंखें फाड़-फाड़ कर देख रहा था । सहसा पच्छिम की ओर एक चट्टान के पास दो छायाये उसे नजर आ गयीं । वह उधर बड़े-बड़े कदम रखता लपका ।

रोशनी देख बेबी अनन्तम से लिपट गयी । वे दोनों ऊपर चढ़ रहे थे । पर अब ठिठक गये । अनन्तम जरा भी घबरा न रहा था, पर बेबी की बुरी हालत हो गयी थी । अनन्तम उसकी पीठ सहलाता कह रहा था —

तुम घबराओ नहीं, मुझसे अब तुम्हें कोई शक्ति नहीं छीन सकती। जो मरने के लिये तैयार हो उसे डरने की आवश्यकता नहीं !”

“मैं तुम्हारे साथ खुशी से मर सकती हूँ। पर डरती हूँ, कि कहीं तुमसे अलग न कर दी जाऊँ।” कगार पर साहब को देख कर सहसा चीख उठी—“वह आ गया? मुझे बचाओ !” कह कर वह अनन्तम को घसीटती पानी में सगा गयी। लहरे उनके ठेठने के ऊपर चढ़ने लगी।

“रुको !” बरन टार्च की रोशनी उनके ऊपर फेंक उनकी ओर बढ़ता चीखा।

अनन्तम से लिपट बेबी सहम कर अनन्तम को और भी आगे अपनी ओर घसीट ले गयी। अब लहरे उनकी कमरों से टकरा रही थी बेबी की आँखों ने खौफ थर्रा रहा था। अनन्तम हत्-बुद्धि-सा हो रहा था।

सहसा बरन को लगा, कि अगर जरा भी और आगे बढ़ा, तो बेबी अनन्तम को लिये लहरों के मुह में चली जायगी। वह ठिठक कर, सभल कर बोला—“बेबी बाहर आओ !”

अब बेबी को साहस आ गया। वह अनन्तम से लिपटी ही बोली—“नहीं आऊंगी ! और आप आगे बढ़ें, तो हम दोनों...” यह कर उसने बढ़ती आती लहरों की ओर सकेत कर दिया।

बरन को काठ मार गया। वह थक कर वहीं बैठ गया, जैसे खड़ा रहने में असमर्थ हो।

अप्यर तब तक भागा-भागा आ पहुँचा। वह छिपे-छिपे बरन के पीछे लग गया था। दूर से ही जब उसने यह परिस्थिति देखी, तो खड़ा रह तमाशा देखते न रह सका। वह सचमुच बेहद घबरा रहा था, कि कहीं बरन की कठोरता के कारण दो जाने न चली जाय। वह बरन के पास आ बोला—“बचाइये इन्हें ! बचाइये इन्हें ! बरन ये जान दे देंगे ! मैं कहीं का न रहूँगा ! मैं जानता हूँ, बरन साहब, ये जरूर जान दे देंगे ! बचाइये, बचाइये इन्हें ! बचाइये इन्हें !”

“नहीं !” गरज कर बरन ने कहा।

“ओह, आपको बेबी का मोह नहीं ! वह मर जायगी, बरन साहब मर जायेगी ! कम से कम उसकी खातिर तो....” गिड़गिड़ा कर अय्यर बोला ।

“नहीं !” और भी अधिक जोर से गरज कर बरन बोला । उसका दिमाग फट रहा था । हृदय की ऐसी स्थिति थी, जो आवेश और दुःख की अन्तिम सीमा पर होती है ।

“नहीं ? नहीं ?” अय्यर ने भी जैसे कुछ सोच कर जोर से पूछा ।

“नहीं ! नहीं ! नहीं !” कह कर बरन खड़ा हो गया ।

बेबी और अनन्तम की आखे और भी अधिक फट पड़ी । बेबी उससे और भी चिपट गयी । लहरे अब उनकी छातियों के पास टकरा रही थी ।

“तो अब मैं बचाऊंगा ! देखें, मुझे कौन रोकता है ?” कह कर वह बेबी और अनन्तम की ओर देख कर दृढ़ आवाज में बोला—“मेरे बन्धो बाहर आओ ! मैं प्रतिज्ञा करता हूं, कि तुम जो चाहोगे, वही होगा ! और, मैं देख लूंगा इन्हें !” कह कर बरन की ओर मुड़ कर बोला — “आपके कलेजे का टुकड़ा बेबी होती, तो आप समझदार होकर भी कभी इतनी निर्दयता न दिखाते ! मैंने सब समझ लिया ! लेकिन मैं भी अय्यर हूं, दक्खिनी ब्राह्मण !”

“अय्यर !” तैश में आ बरन बोला और उसके हाथ अय्यर के गले की ओर बढ़ने ही वाले थे कि आया की आवाज आयी—“साहब, तार आया है, तार ! यह तार वाला है । एक्सप्रेस है, साहब !” और पहुँच कर उसने तार का लिफाफा बरन के हाथ में दे दिया ।

बरन तार वाले की कापी में जेब से कलम निकाल, दस्तखत कर, कांपते हाथों से लिफाफा खोल टार्च की रोशनी में पढ़ने लगा ।

बरन तार पढ़ कर रुक गया । माथा पकड़ कर वह वही आह काँझ के बैठ गया, जैसे सहसा ही किसी ने उस पर अचानक प्राणलेवा आघात कर दिया हो ।

अय्यर ने उसके हाथ से गिरे तार को लेकर पढ़ा ‘दादा सीरियसली दल कम ऐटवन्स !’

अय्यर ने बरन का हाथ पकड़ कर कहा—“चलिये,चलिमे, मेरे घर चलिये”

“नही मैं अभी चल देना चाहता हूँ । पता नहीं उसकी क्या हालत है ?” और वह सब-कुछ भूल एक बच्चे की तरह फूट-फूट कर रो पड़ा—“दादा ! दादा !...”

“मेरी कार से आप चले जाइये । त्रिवेन्द्रम से रात की गाड़ी पकड़ सकते हैं । यो घबराइये नहीं ! द्रक्ति हो अय्यर ने कहा ।

“बेबी !” बिलखता ही बरन बोला ।

“बेबी ! बेबी ! अनन्तम बेटा ! आओ ! आओ, तुम लोग !” अय्यर ने चिल्ला कर कहा ।

“नही, नही, उन्हें आप सँभाले ! मैं अब-एक क्षण को भी रुकना नहीं चाहता !” कह कर बरन बड़खड़ाते कदमों से पीछे मुड़ कर बढ़ा ।

“चलिये, मैं भी चलता हूँ,” कह कर अय्यर ने मुड़ कर आया से फुसफुसाहट के स्वर में कहा—“तुम इन्हें देखो ।”

२७

कोई भी गाड़ी आती, तो शोभी की आखें आशा और खुशी से चमक उठती । वह बाहर के फाटक से जरा हट कर खड़ी हर मुसाफिर को बाहर आते ध्यान से देखती ! उसे लगता, कि अब बरन निकला, अब बरन निकला । पर देखते-देखते स्टेशन फिर वैसे ही वीरान हो जाता, जैसे गाड़ी आने के पहले रहता था । शोभी की आँखों की चमक तब मन्द पड़ जाती । वह सिर झुकाये एक ओर जा उदास बैठ जाती, और फिर दूसरी गाड़ी के आने का इन्तजार करने लगती ।

उसकी मैली-कुचैली, चिथड़ी बनी साड़ी और भूली इस काबिल न थी, कि वह साबुन से साफ कर लेती । फिर भी जैसा हो सका था, उसने किया था । उस दिन एक जवान भिखारिन से उसकी टूटी कंधी माँग उसने

अपने बाल भी संवारे थे। उस वक्त हृदय में बरन से मिलने की खुशी रहते भी खूब-खूब रोयी थी वह, न जाने क्यों !

आखिर तीसरे दिन सुबह उसने देखा, कि टीसन के बाहर एक घोड़ा खड़ा था। उसने उसे गौर से देखा, तो पहचान गयी यह वही घोड़ा था, जिस पर चढ़ कर बरन उससे मिलने आया करता था। उसे देख कर उसकी आँखों में आंसू भर आये। उसके जी में आया, कि वह दौड़ कर उस घोड़े से लिपट जाय। पर वंसा वह कैसे कर सकती थी ? उसे लगा, कि घोड़ा भी उदास है। घोड़े को देख कर उसे आशा बँध गयी, कि आज बरन जरूर आयागा। यह घोड़ा उसी के लिये आया है।

पर उस दिन भी बरन न आया। साईस घोड़ा लिये वही मुसाफिर-खाने में रात भर पड़ा रहा। शोभी के जी में आया, कि वह जा कर उस साईस से कुछ पूछे। पर रात का समय था। उसे हिम्मत न हुई। वह स्त्री है, यह बात वह जानती थी। लाख घिनोनी थी, तो क्या ? वह बराबर देखती थी, कि कोई मर्द उसे घूरे बिना उसके पास से न गुजरता था।

आखिर सुबह की गाड़ी से बरन आ पहुँचा। फाटक के बाहर खड़ी शोभी ने उसे देखा, तो उसे लगा, कि जैसे वह बेहोश हो रही है। उसका गला सूख गया। कई बार कोशिश कर भी वह कुछ न बोल पायी। हाथ उसकी ओर कई बार उठ-उठ कर गिर पड़े, पर वह उसे पुकार न सकी।

बरन जैसे आंधी की तरह आया, और तूफान की तरह घोड़े पर चढ़ कर चला भी गया। शोभी पथराई आँखों से उसे देखती भर रह गयी।

अभागिन शोभी, तुझे क्या हो गया ? तू क्यों न बोली ? पर शोभी को क्या मालूम कि वह क्यों न बोल सकी। उसे बरन को देख ऐसा लगा, जैसे वह अपनी सुध-बुध ही खो बैठी हो। फिर वह कैसे बोलती ? उसका बरन उसके पास से गुजर गया, और वह...आह, कितनी अभागिन है वह ! जिसके लिये सब कुछ छोड़ा, सब कुछ सहा, और

आज दर-दर की भिखारिन बनी है, उसी को उसने पाकर भी कैसे खो दिया ? अब ?

शोभी एक पेड़ की आड़ में बैठ कर घंटों सिसकती रही । उसके जी में आया कि वह मर जाय । आज, पहिली बार यह भी उसके ज्ञान में आया कि जिसके लिये वह भिखारिन बनी है, कदाचित् भिखारिन बन कर ही उसके अयोग्य हो गयी है । काश, उसकी स्थिति आज पहले-जैसी होती तो क्या वह उसके सामने जा कर खड़ी न हो जाती ? मुंह से कुछ न कहने पर भी क्या उसे सामने देख बरन गल्ले न लगा लेता ?

पर अब यह जान कर कि बरन मसार में जीवित है, उसके लिये मरना आसान न था । वह बरन की तरफ सिर्फ एक बार देख पायी थी । जो उसकी आंखें झुक कर उठी थी तो बरन चला गया था । फिर उसने देखा था, कि बरन बेहद उदास था, उसकी दाढ़ी-मूछ बड़ी हुई थी । चेहरे की वह रौनक न थी और उसे ख्याल आया, कि कदाचित् उसके बिना ही बरन की ऐसी दशा हो गयी है । इस ख्याल से उसे कुछ सन्तोष हुआ । उसने सोचा, कि क्यों न वह बरन की कोठी की ओर चले ? फिर ख्याल आया, कि उसकी कोठी उसके गांव के पास के ही गांव में है । किसी ने उसे देख कर पहचान लिया तो ? अब शोभी की हालत उस प्यासे की थी, जो कुए की जगत तक पहुच गया हो, पर उसके पास कुए से पानी निकाल कर पीने का कोई साधन न हो । फिर भी सन्तोष हुआ, कि इतने पास-पास आ तो गये । नैया-नदी का संगम, वह अब जरूर कभी-न-कभी अवश्य मिल जायेंगे ।

दो दिन के बाद अभी थोड़ी ही रात बीती थी, कि शोभी ने फिर उसी घोड़े को स्टेशन की तरफ आते देखा । उसका दिल एकबारगी धड़कने लगा । उसने उठकर देखा, तो घोड़े पर बरन ही आ रहा था । रात अंधेरी थी, फिर भी जिस घोड़े और बरन को ऐसी कितनी ही रातों में शोभी ने देखा था, उसकी छाया वह न पहचान सके, यह कैसे सम्भव था ? वह उस ओर लपक कर आ गयी ।

स्टेशन के सामने उदास बरन घोड़े पर से उतर गया। उसके चेहरे से गम बरस रहा था। आखे जैसे रोते-रोते सूज गयी थी। बाल बिखरे हुए थे। दाढ़ी-मूछ के बाल और भी बढ गये थे। कपड़े भी गन्दे हो गये थे। वह सरापा दुख की तस्वीर बना था।

शोभी को उसे उस रूप में देखकर रोना आ गया। आखे उसकी ओर लगी थी, पर उसका दिल सचमुच रो रहा था। उसके जी में आता था, कि वह उसके पास जाय, उसके चेहरे पर, आँखों पर, बालों पर हाथ फेरे, और उससे पूछे, बरन, तुमने अपनी यह क्या हालत बना रखी है ?' पर उसके पैर जैसे उठ-उठ कर भी धरती से सट-सट जाते थे। हृदय में इच्छा उठ-उठ कर भी दब जाती थी तो, शोभी, क्या तू इस बार भी चूक जायगी ? नहीं ! पर क्या करे शोभी ? एक दीवार, अनजाना अन्तर- जो उसके और बरन के बीच खिच गया है, उसे कैसे लाँघ जाय शोभी ? एक भिखारिन कैसे एक जमींदार के सामने यो स्टेशन पर खड़ी हो कहे कि वह...वह...पर कहने की जरूरत ही क्या पड़ेगी ? क्या वह स्वयं उसे नहीं पहचान लेगा ? कौन जाने ! जो शोभी स्वयं आज अपने को पहचानने में असमर्थ है, उसे बरन पहचान ही लेगा, यह कैसे कहा जा सकता है ? अगर कही उसने न पहचाना, तो ? जमाने से रुसवा हो-कर वह अपने हृदय में मन्द-मन्द जलती आशा को भी सदा के लिये खो देना नहीं चाहती ! नहीं, नहीं, शोभी वैसा न करेगी ! वैसा कर के जो अपमान उसे मिलेगा, उसे भला वह कैसे सह सकेगी ? तो ? तो वही होगा, जो होना होगा, जो आप ही हो जायगा। पर बरन को क्या मालूम कि शोभी यहा उसके पास ही है ? उसे मालूम होगा। वह उसे मालूम करायेगी।

बरन का साईस सामान ले कर आ गया, तो बरन ने थड़ी देखी। आठ बज गये थे। उसने कहा—“घोड़ा ले जाओ।

“बाबू, कुछ कहेंगे ?” साईस ने सिर झुका कर कहा।

“कुछ नहीं, अभी कुछ नहीं। तुम जाओ !” कह कर बरन स्टेशन

की ओर चल पड़ा। सामान लिए कुली उसके पीछे था।

शोभी ने सार्ईस के पास जा कर पूछा—“ठाकुर कहा जा रहे है ?”

“पता नहीं” लापरवाही से सार्ईस ने कहा —“सदमा पहुंचा है।”

“सदमा पहुंचा है,” शोभी होंठो मे दुहराती टीसन मे घुस गयी।

गाडी आयी। बरन पहले दज के एक डिब्बे मे घुस गया। कुली ने सामान षढा कर एक बर्थ पर उसका बिस्तर खोल कर लम्बा कर दिया। बरन ने उसे पैसा दे दरवाजे को बन्द कर लिया। फिर बिस्तर पर बैठ फफक-फफक कर रो पडा—“दादा, हाय दादा ।” रुदन में लिपटे हुए ये शब्द उसके मुह से बराबर निकल रहे थे। वैसे ही उठ कर उसने रोशनी गुल कर दी और हाथो मे छाती दबाये बिस्तर पर लेटे, तकिये मे मुह गडा सिसकने लगा।

गाडी छूटने को हुई, तो शोभी उमी डिब्बे का दरवाजा खोल घुस गयी। अपने दुख मे डूबे को इसका पता भी न लगा।

बरन के पहुंचने के एक दिन पहले ही दादा ‘राम-राम, के बदले ‘बरन-बरन’ कहते चल बसे थे। बरन की नाव डूब गयी थी। जिस दादा ने उसके लिये अपना जीवन कुरबान कर दिया था, उसके अन्तिम क्षणों में भी बरन उनकी सेवा न कर सका। जीवन मे वे क्षण भी आते हैं जब आदमी के सामने दुनिया और जिन्दगी की बाते कुछ इस तरह नगी होकर, दुखपूर्ण, निराशापूर्ण, होकर खुल जाती हैं, कि वह ससार और जिन्दगी से बेजार हो जाता है। वह इन दोनों से छुटकारा पाना चाहता है। उसकी सारी आशाये खत्म हो जाती हैं, सारा साहस दम तोड़ देता है। उसे चारो ओर दुख-ही-दुख दिखायी देता है, जिससे बेहद घबरा कर वह मुक्ति चाहता है। उसके लिये संसार मे कुछ भी शेष नहीं रह जाता। बरन आज उन्हीं क्षणों से गुज़र रहा था।

बहुत देखा उसने। बहुत सहा उसने। अब क्या रह गया? एक-एक कर सब अलग हो गये। एक थी शोभी, एक थी बेबी और एक थे दादा। यही

तीन तो उसकी जिन्दगी में आये सहारा बनकर। उनके सहारे वह जीता रहा। शोभी छूटी, तो बेबी ने हाथ पकड़ लिया। बेबी छूटी, तो सोचा, दादा हाथ पकड़ लेगे। पर, आह सारे जीवन भर प्यार, स्नेह, सेवा की वर्षा बन जो बरसते रहे दादा, वह भी छोड़ गये। अब कहा जाय बरन? अब कहा सहारा ढूँढे वह? अब कैसे जिये वह? नहीं, नहीं, अब कुछ नहीं। बहुत खेल खेला उसने। अब तमाशा खत्म। जिसके सहारे वह निश्चिन्त हो जो जी में आये, कर रहा था, वह अब रहा ही नहीं, तो वह कैसे कुछ कर सकता है? सब देख लिया। भाग्य में यही दिन देखने को बाकी था, सो भी देख लिया। अब क्या?

दादा जिस अपने विश्वास-पात्र आदमी पर सब-कुछ छोड़ गये थे, उसी पर बरन भी सब-कुछ छोड़, सूनी कोठी त्याग चला आया था। वहा उसकी जान निकलती थी। जान निकल जाय, तो छुट्टी मिल जाय, ऐसा लगता था बरन को पर वहा जान पर बड़ी सासत भी थी। मरना तो वह चाहता था, पर यह सासत? इसे बरदाश्त करने की ताकत उसमें न थी। और उस कोठी के कण-कण में जैसे उसके लिये बस सासत-ही-सासत फैली थी। इसीलिये उससे छुटकारा पाने के लिये वह वहा से भागा जा रहा था।

आज तक उसे याद नहीं, कि उसने कभी भगवान का नाम लिया हो। यों संस्कारवश दुख के क्षणों में कभी उसका नाम आप ही मुंह से निकल गया हो, तो बात दूसरी है। पर, अब वही संस्कार जैसे भूत बन कर उसके सिर पर चढ़ रहा था। दूसरे शब्दों में उसे जीवन और मसार से वराग्य हो रहा था। जीवन के दुखों से घबरा कर ईश्वर की शरण में जाने की परम्परा हमारे देश में बहुत पुरानी है। हमारे देश में ऐसा शायद ही कोई आदमी हो, जिसके दिल में दुख के क्षणों में ऐसी बात न उठी हो। यह दूसरी बात है, कि ईश्वर के लिये कितनों ने संसार का त्याग किया, या त्याग करके कितनों ने ईश्वर की गोद में जगह पायी। पर सारे दुखों का रक्षा-गृह उसकी गोद ही है, ऐसा हम में से कौन नहीं

समझता ? पहले गाव-गाव के पास जङ्गल थे । अब नहीं रहे । आदमी जङ्गल की खोज में कहा जाय ? इसलिये अब वह काशी, प्रयाग की खाक छानता फिरता है । आज बरन भी इसी राह की ओर अग्रसर हो रहा था । ससार और जिन्दगी की कड़वाहट कैसे उसका मुंह ही नहीं, उसके प्राण, उसकी आत्मा इतनी भर गयी थी, कि उनकी ओर देखने का न तो उसका जी ही चाहता था, न उसमें अब साहस ही रह गया था ।

बरन के दिल में हर गुजरी बात एक हूक बन कर उठती और वह रो पड़ता । शोभी एक ओर नीचे फर्श पर गुटभुटा कर बैठी उसे देग रही थी, उसका रोना, सिसकना मुन रही थी और उसका कलेजा टूक-टूक हुआ जा रहा था । ओह, आज वह कितनी विवश है, कि बरन के सामने खड़ा हो वह दो सहानुभूति के शब्द भी नहीं कह पा सकती ।

गाड़ी चली जा रही थी अपनी रफ्तार से । धीरे-धीरे बरन क सिसकनो का तार छोटा होने लगा । थकावट के मारे उसे नींद-सी आने लगी । देखते-देखते सिसकिया बन्द हो गयी । बरन सो गया ।

पर शोभी को कहा चैन था ? वह तो एकटक बरन की ओर वैसे ही देख रही थी, जैसे आदमी अपनी जिन्दगी के कुल सरमाये की ओर देखता है । उसका सब-कुछ उसके सामने ही उससे बेखबर हो अपने दुखों को गले लगाये सो रहा था । और वह उसे उसके अनजाने ही दुखों और सुखों का एक अजब मिला-जुला भाव दिल में लिये सिर्फ देख रही थी, और कुछ कर न पा रही थी । वह सोच रही थी, क्या बरन उसे पाकर अपने दुखों को भूल जायगा ? उसे बरन की वे सब पुरानी बातें याद आ रही थी । कभी उसने कहा था, कि शोभी से ही उसकी जिन्दगी है, शोभी के बिना वह बेजान शरीर रह जायगा । उसे धीरे-धीरे वह भी विश्वास हो रहा था, कि उसके कारण ही बरन की यह दशा हो गयी है, जिसमें सुख नाम की कोई चीज़ नहीं रह गयी

है। वह उसे मिल जायगी, तो जरूर उसकी ज़िन्दगी बदल जायगी।

जब वह निश्चिन्त हो गयी, कि बरन सो गया, तो वह अपने को सभाल न सकी। वह बैठी-ही-बैठी उसकी ओर धीरे-धीरे खिसकने लगी। पास पहुँच कर, सहम-सहम कर, उसने अपनी सास रोक कर हाथ उठाया और धीरे-धीरे उसके बालों पर रख दिया। आह, कितना आनन्द है इस स्पर्श से! कितने युगों के बाद आज उसे वह अवसर मिला है। शोभी की आँखों में हर्ष का पानी छलक उठा। उसका हृदय विभोर हो उठा।

तभी अतीत के किसी सपने के जाल में उलझा बरन अस्फुट स्वर में बरपाया—शोभी। ओह, शोभी...तुम मुझे छोड़ कर कहा चली गयी थीं? तुम्हारे चले जाने के बाद...” और नींद में ही बरन रोने लगा।

भय से कांप कर शोभी ने अपना हाथ खींच लिया था, पर उसकी बाते सुन कर वह हर्ष-पुलक से भर उठी।

बरन रोते हुए ही बरपाये जा रहा था—“बोलो, अब तो मुझे छोड़ कर न जाओगी?”...फिर सिसकियों की आवाज सुन शोभी उससे दूर खिसकने लगी। उसने सोचा, कि कहीं बरन जग कर फिर तो नहीं सिसकने लगा।

अचानक बरन उठ कर बैठ गया। सपने की शोभी को जाग कर वह खो चुका था। अब वह सचमुच रोने लगा।

तभी गाड़ी स्टेशन पर रुकी। न जाने क्या सोच बरन उताव-लेपन में आँखें पोंछ, जल्दी में बिस्तर गोल करते चिल्लाया—“कुली! कुली!”

कुली के सिर पर सामान रख नीचे उतर कर पूछा—“कौन स्टेशन है?”

कुली ने कहा—“बनारस।”

“धर्मशाला में पहुँचा दो,” बरन ने कहा।

जब वह आगे बढ़ गया, तो शोभी धीरे से उतरकर उसके पीछे हो ली।

२८

बरन बाबू तीस-पैंतीस बरन की आयु मे ही वीतराग हो, बरन दास बन गये । घर मे ठाकुर की प्रतिमा स्थापित हो गयी । गंगा-स्नान, पूजा, पाठ, कीर्तन सब कुछ करने लगे । उन्हे आशा थी, कि ऐसा करने से उनकी तप्त आत्मा को शान्ति प्राप्त हो जायगी, व्याकुल प्राणों को चैन मिल जायगा ।

उन्होंने अपना मन बदलने की सब कोशिशें की । पर किसी प्रकार भी उन्हें शान्ति न मिली, चैन न मिला । रात के समय जब मडली की बैठक समाप्त हो जाती, एक-एक कर सब चले जाते, तो सूनेपन मे, अकेलेपन मे रात के नीरव क्षणों मे उनके हृदय के टाके टूट जाते वे ठाकुर के चरणों में पीड़ा-विह्वल हो घटो रोते, चीखते, आहें भरते, सिसकियां लेते, और दुःखाने की आवाजें वैसे ही सो जाते, जैसे कोई गहरे नशे मे बेहोश हो सो जाता है ।

बेबी ने बरन के उजड़े दिल मे जैसे प्रवेश किया था, उसे वह जाते समय वैंसा ही उजड़ा छोड़ गयी थी । सालो बाद बरन पुनः उसी अवस्था मे पहुच गया था, जिस अवस्था में वह बेबी के संसर्ग मे आने के पहले था । बेबी ने स्वाभाविक रूप से अपना स्थान बरन के हृदय मे नहीं बनाया था । उसे तो जबरदस्ती बरन ने खींच कर अपने दर्द की दवा की थी । एक की खाली की हुई जगह पर दूसरे को बैठा उसने अपने दिल को बहलाया था, कि जगह तो खाली न रहे । और बेबी के प्रति धीरे-धीरे जो मोह उसमे पैदा हो गया था, वह कुछ उसी किस्म का था, जो आदमी को अपने कमाये धन, बनाये घर या पाले पुत्र-पुत्री पर होता है । उसे हम प्रेम नहीं कह सकते । बरन भी इस बात को समझता था, ऐसा कैसे कहा जा सकता है ? बेबी के दामन से जो वह अपने को बंधा पा रहा था उसका कारण यही था, कि बस बेबी ही उस समय उसके जीवन का सहारा थी, भले ही वह कृत्रिम ही क्यों न हो । बेबी ऊपर-ऊपर उसके जीवन पर ऐसे छा गयी

थी, कि उसकी छाया के बाहर बरन जीने की कल्पना ही नहीं कर सकता था, ठीक उसी तरह जैसे छाया में जीने वाला पौधा। पौधे को छाया से प्रेम नहीं-होना, किन्तु वह छाया उस पौधे के जीवन के लिये आवश्यक होती है। पौधा उसके बाहर गया नहीं कि मुर्झा जाता है।

पर जब वही बेबी उससे अलग हो गयी, तो उस बेबी के बिना बरन नि दशा वही नहीं हुई, जो उसकी कभी शोभी के बिना हुई थी। शोभी ने वाभाविक रूप से प्रेम की सब मन्जिलों को तैकर बरन हृदय में स्थान मनाया था। उसके चिन्ह उसके हृदय में अमिट थे। सालों उस पर तहे जमायी गयी, किन्तु वे तहे जैसे ही हटी, वे चिन्ह आप ही प्रगट हो गये। बूमरंग की तरह बरन के हृदय की आज फिर वही हालत हो गयी थी, सालों बाद वह फिर आज अपनी जगह पर आ गया था। राख में दबे शोले, राख हट जाने पर फिर भडक उठे थे। वह अब उसी में जल रहा था, तड़प रहा था।

शोभी उसके पीछे साये की तरह रहती थी। गङ्गा-स्नान के समय उसके पीछे-पीछे जाती थी। उसकी बाड़ी के आस-पास ही पागल भिखारिन की तरह चक्कर लगाया करती थी। कभी २ रात में उसके हाथ से बाहर चबूतरे के नाचे खडी हो प्रसाद भी ले आती थी। पर बरन ने एक बार भी उसकी ओर ध्यान से न देखा। शोभी सोचती थी, कि एक न एक दिन वह उसे पहचान लेगा, पर बरन ऐसा न कर सका। दिन २ यह अवस्था शोभी के लिये असह्य हो उठने लगी। पर उसकी नारी सदा सहमी ही रहती, बरी ही रहती कि कही बरन ने सचमुच ही उसे न पहचाना, तो ?

जाड़े की रात बैठ कर खत्म हो जाने पर साय-साय करने लगी। हवा ठिठुर रही थी। नीरवता गल रही था। वातावरण जैसे ठंड से सिकुड कर, कांपता निर्जीव सा पड़ा हुआ था। कही भी जिन्दगी की गर्मी का कोई चिन्ह तक दृष्टिगोचर न हो रहा था।

बरन अपने हाल से बेहाल आगन में टहल रहा था। हृदय की

नीरवता पर दर्द अपना पंख फड़फड़ा रहा था। घबराहट गले को जैसे दबाये जा रही थी। आंगन में टहलते बरन की आंखें ठाकुर के चरणों में जलते दीप पर ही टिकी रहतीं, जैसे वही जीवन का कुछ प्रकाश हो, जिसे देख कर उसकी झन्धी आंखों को कुछ साहस मिल रहा हो। वह जी बहलाने की हर तरह चेष्टा कर रहा था। दुखदायी यादों को परे हटाने के लिये कुछ और सोचने की चेष्टा करता, मन को कहीं और उलझाने की कोशिश करता। कभी यों ही बेबात ही पागल की तरह हँसता। कभी कहीं पढ़े शेरों को यों ही गुनगुनाता —

कंसी गलती शबाब कर बँठा

जो तेरा इन्तखाब कर बँठा।

यह समझ कर कि ज़िन्दगी तू है,

जिन्दगानी खराब कर बँठा।...

पर जैसे उसकी हर कोशिश, हर विचार, हर बहलाव, हर हंसी, हर गुनगुनाहट में भी उसके हृदय का दर्द उभर पड़ता। आखिर विवश हो वह सदा की तरह ठाकुर के चरणों में गिर तडपने लगा।

कई दिन असह्य ठंड खा-खा कर शोभी सुन्न हो गयी। उसके शरीर का रक्त जैसे पानी हो गया था। उसमें जैसे बर्फ जम रही थी। वह मुर्दे की तरह इधर दिन-रात पीपल के पेड़ के नीचे पड़ी रहती। मक्खियां उसके ऊपर भिनभिनाया करती। पर जैसे उसमें इतनी शक्ति न थी, कि वह उन्हें उड़ाये। इधर वह बरन की बाड़ी की ओर भी कई दिनों से न जा सकी थी।

आज रात को पड़े-पड़े उसे लगा, कि आज वह जरूर गल जायगी। उसे अपने गल-मर जाने की चिन्ता न थी। पर उसके मन में आज यह इच्छा प्रबल हो रही थी, कि मरने के वक्त वह क्यों न बरन के पास जाय। पहचान लेगा, तो ठीक। न भी पहचाने, तो अब क्या? उसे एक नज़र मरते समय वह देख तो लेगी।

किसी तरह ठिठुरते पैरों को समेट वह धीरे-धीरे अपने कांपते शरीर को काबू में ला कर उठी और थाह-थाह कर लकड़ी हुए पैरों को उठाने लगी। हर कदम पर उसे ऐसा लगता कि वहीं गिर जायगी। पर अन्दर से बल एकत्रित कर, वह संभल कर, एक कदम और आगे बढ़ जाती। सिर का आंचल बेसुध हो जमीन पर गिर कर लसरा रहा था। सूखे हुए बाल चेहरे और आंखों पर बिखर गये थे। आंखें सीमे की तरह मैली, भारी और ज्योतिहीन हो गयी थीं। हाथों में जैसे चिगुरा लग रहा था।

डूबते प्राणों के जोर ने आखिरी बार उसका पुग-पूरा साथ दिया। आखिर वह मंजिल पर पहुंच गयी। दरवाजा बन्द था। उसे भटभडाने या प्रकारने की ताव शोभी में न रह गयी थी। और अब इसकी जरूरत भी न थी। बाड़ी के चरगो में वह पहुंच गयी थी। इसी बाड़ी में तो रहता है उसका प्रीतम। जीते जी वह न मिल सकी उससे तो क्या? अब तो ...और वह दरवाजे पर भहरा कर गिर पड़ी।

बेहाल बरन के कानों में दरवाजे पर की आवाज सुनायी पड़ी। उसे लगा कि जैसे कोई उसे उसके अकेलेपन की यातना से मुक्त करने दरवाजे पर आ गया हो। वह आंखें पोंछ उधर लपका।

दरवाजा खोला, तो किसी का सिर चौखट से लटक उसके चरगों पर आ गिरा। व्यस्त-सा हो बरन ने भुंक कर उसे उठाना चाहा, तो उस के मुंह से अस्फुट-सी ध्वनि निकली—“ब र न...

बरन के मस्तिष्क और हृदय में वह ध्वनि जैमे हजारों शंखों की ध्वनि-सी गूज उठी। फिर वह ऐसे प्रतिध्वनित हुई, जैमे वह उसके हृदय से ही निकल रही हो, उसके हृदय से, जहां बैठी शोभी सदा पुकारती रहती है — ‘बरन ! बरन ! बरन !’

वह उसे अपनी गोद में उठा अन्दर ले गया। उस समय की उसकी अवस्था अबाधनीय थी। उसकी अंधेरी आत्मा में जैसे हजारों चांदों की मधुर, स्निग्ध, उज्ज्वल, कोमल चांदनी फैल गयी हो ! और शोभी

